प्रकाशक
विद्यार्थी ग्रन्थागार
प्रयाग।

मूल्य
६·००

मुद्रक
माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद।

लेखक की अन्य रचनाएँ

नया हिन्दी साहित्य—एक भूमिका ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य ।

हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा ।

साहित्य-धारा ।

रेखाचित्र ।

पुरानी स्मृतियाँ ।

विशाख ।

अनुवाद

A Handful of Wheat and other stories : Prem Chand.

निसा (रूसी उपन्यास)

अँग्रेजी में

Studies and Sketches.

The English Novelists.

The Art of Galsworthy and other Studies.

हमारे नये प्रकाशन

१—जौनसार-देहरादून लेखक राहुल सांकृत्यायन मू० १०)

२—मनोहर कहानियाँ भाग–१ लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा मू० १)

३—मनोहर कहानियाँ भाग–२ „ „ मू० १)

४—राँबिसन क्रूसो „ „ मू० ।।।)

५—गुलीवर की अद्भुत यात्रायें „ „ मु० ।।।)

6—The Art of Galsworthy & other studies—by P. C. Gupta

Price Rs. 6/-

भूमिका

इस संग्रह मे अब तक लिखे मेरे सभी स्केच और रेखाचित्र एक स्थान पर एकत्रित हैं। सब से अन्तिम "रेखाचित्र" १६४० में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए थे। "पुरानी स्मृतियाँ" और "नए स्केच" १६४७ में पुस्तक रूप में छपे थे। "कुमायूँ के अंचल मे" और "स्केच" इस प्रकार के मेरे नवीनतम प्रयास हैं और पहली बार ही पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहे हैं। यह स्केच सन् १६४७ के बाद लिखे गए थे और इनमें से कुछ ही इधर-उधर पत्र-पत्रिकाओं मे छपे हैं।

इस सर्वथा नई साहित्यिक विधा के यह प्रयोग हिन्दी पाठक के लिए शायद रोचक हों, इस आशा से लेखक इन्हे आपके सामने रख रहा है।

प्रकाशचन्द्र गुप्त

विषय-सूची

कुमायूँ के अंचल में

(१)

वन

कालिका के 'टोलबार' पर शेरसिंह की दूकान पर बैठे-बैठे हम चाय पी रहे थे। गरम गिलासो मे छै पैसे वाली 'चहा', जिसको पीने मे एक आनन्द आता है, जो बढ़िया रेस्ट्रॉ़ंा मे भी नही मिलता। इस चाय में पहाड़ो का, चीड़ के वनों का अन्तरग कुछ है, जो 'बार्नेट' की चाय से सर्वथा भिन्न है। यह चाय आपको हिमालय के अन्तर्देश का स्मरण दिलाती है, दुर्गम वन और पर्वतो का, जहाँ मनुष्य का भक्षण करने वाली पूंजी-वादी सभ्यता अपने पैर अभी तक नही फैला पाई है।

कालिका का सौन्दर्य भी मानो हम चाय के इन घूँटो के साथ पीने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस अकथनीय सौन्दर्य को शब्दो मे बाँधने का यत्न व्यर्थ है। इस दृश्य में ऐसा कुछ विराट, शान्त और शालीन है, जो शब्दो और रेखाओ के जाल को निरन्तर तोड़ कर भाग निकलता है।

ठीक 'टोल बार' के सामने एक गहरा वन सांयें-सायें करता है। इस वन से शाम के समय कभी-कभी हमने कॉकड़ का तीखा स्वर वायु के पर्दे को तीर के समान चीर कर आगे बढता हुआ सुना है। हमारे अनुभवी मित्र कहते है, 'लकड़बग्घा कही आस-पास ही है। जब कॉकड़ बोलता है, तो लकड़बग्घे को पास ही समझिए!'

लकड़बग्घे की बात होने लगती है। शाम होते ही वह निकलता है। जिम कौरबैट भी अपनी पुस्तक मे ऐसा ही लिखते है। आदमी को

वह नही छेड़ता। यदि वह नर-भक्षक हो गया हो, तो इसके समान क्रूर और कुटिल कोई भी पशु नही होता। बकरी, कुत्ते, मुर्गी—यही उसका भोजन है। कालिका उसका सुपरिचित अड्डा है। पिछली रात वह शाह जी का कुत्ता उठा ले गया था। नित्य प्रति यह बूढा कुत्ता हमारे घर एक चक्कर काटता था। सात बार उसकी मुठभेड़ लकड़बग्घे से हो चुकी थी। तीन बार तो वही स्वय बाघ से बच कर भाग आया था; चार बार शाह जी ने उसे बचाया था। इन सघर्षो के चिह्न उसके बदन पर थे, और उसकी एक आँख फूट चुकी थी। किन्तु नित्य की भाँति जब बूढा सैनिक 'लकी' सुबह हमारे यहाँ न पहुँचा, तब हमने पता लगाया। हमे मालूम हुआ कि 'लकी' रात मे बाघ का भोजन हो गया। रात मे यह संघर्ष काफी चुपचाप हुआ था; 'लकी' कुछ भी न बोल पाया था, किन्तु उसके सघर्ष के चिह्न रास्ते मे थे। उसके बालो और रक्त की एक रेखा पगडडी पर थी।

काँकड़ का स्वर सुन कर हम सभी पल भर के लिए सहम गए। एक अज्ञात भय हमे क्षण भर के लिए कँपा गया। वन की गहनता मे इस युगो के सघर्ष के बावजूद भी मानो कुछ छिपा हो, जो अभी अपराजित है, और हमारे पौरुष को चुनौती दे रहा है। लेकिन हम जानते हैं कि हमारा यह आदिम युगो का भय निरर्थक है। इस वन के बहुत अन्दर तक जाकर हमने देखा है कि बाघ दिन भर झाड़ियो मे छिपा पड़ा रहता है। हर जगह मनुष्य की पदचाप ने पहाड़ की पीठ पर अपने चिह्न छोड़ दिए है। दिन भर बन मे लकड़हारे लकड़ी काटते हैं, घासवाली घास काटती है, लीसा वाले चीड़ के पेड मे घाव कर के बूंद-बूंद उसका रक्त-स्राव सचित करते है। किन्तु बाघ अपने बिल में, झाड़ियो के बीच किसी ठढी जगह, लुका-छिपा रहता है, और साँस तक नही लेता। जब शाम होती है, तभी वह अपनी तन्द्रा त्याग कर उठता है, और कभी-कभी रात को हम बन मे उसकी हुंकार सुनते है।

पहाड़ मे बाघ के साथ सघर्षो की अनेक वीरतापूर्ण कहानियाँ हैं।

जान पर खेल कर मनुष्य ने बार-बार इस हिंसक पशु पर विजय पाई है। दो-चार दिन पहले ही रानीखेत मे किसी गाँव वाले ने अपने हाथो से ही लकड़बग्घे के जबड़े पकड कर चीर दिए थे। उस दिन रानीखेत के बाजार में दिन भर यही चर्चा रही थी।

वन मे कांकड का स्वर सुन कर अनायास ही एक सिहरन शरीर में दौड गई थी। वन अपना सिर धुन रहा था। और सॉय-सॉय कर रहा था। ऐसा स्वर तो हमने कभी सुना ही न था। यह मानों हिन्द महासागर का गर्जन था, या नायग्रा जल-प्रपात का। यह कालिदास के मेघदूत का स्वर था, जो यक्ष-प्रिया को सदेश लेकर जा रहा था, और इस पर्वत-देश को अपने आगमन की सूचना दे रहा था! बहुत दूर पर यह स्वर चीड़ के वन मे भर रहा था; धीमे-धीमे यह तीव्रतम हो उठा, फिर अंधड का तुमुल नाद उसने धारण किया। सपूर्ण वन मानो किसी विराट भैरव सगीत से निनादित हो उठा हो।

जब वन शान्त रहता है, तो अगणित लघु स्वर उससे फूट कर निकलते हैं। जब धूप तेज होती है, चतुर्दिक् सन्नाटा रहता है, वायु में धूप की तेजी के कारण भँवर-से पृथ्वी के ऊपर उठने लगते है, तब चिन्न-चिन्न करके टिड्डे के स्वर से कोई कीड़ा निरन्तर बोलता रहता है। रात को चाँदनी मे दर्जनो चकोर मानो पागल होकर 'चहो-चहो' करके बोलने लगते हैं। उनके स्वर से अनेक किम्वदतियाँ स्मृति मे हरी हो जाती हैं, और हम सोचते है कि विरही चकोर व्याकुल होकर क्रन्दन कर रहा है और यह कोमल आलोक उसका मन असह्य पीड़ा से भर रहा है।

और भी अनेक स्वर वन के साम्राज्य से ऊपर उठते है, बाज का तीखा स्वर, रंग-बिरंगे तीतर का कर्ण-कटु चीत्कार, हिमालय के उक़ाब की रण-भेरी, और पहाड़ी कौवो का सुपरिचित कर्कश रौरव।

जितने स्वर इस वन मे हम सुनते है, उतने ही रग-बिरगे जीव-जन्तु पशु और पक्षी भी हम देखते हैं। वन की शान्ति मे सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याघात पड़ते ही अनेक विरोधी स्वर उठने लगते हैं, और आकाश रंग-बिरंगे

पंखो से भर जाता है। पैर का जरा सा खुटका होते ही, पत्तो या लकड़ी की कोई टहनी चटखते ही सपूर्ण वन को चेतावनी मिल जाती है कि इस जंगल की दुनिया का कोई वैरी नजदीक है!

कालिका के सौन्दर्य को कोई कुशल चितेरा ही चित्रित कर सकता है। इसके एक ओर अखण्ड वन है, दूसरी ओर हिमालय का साम्राज्य। सामने ही गगास की घाटी है, उसके पार भटकोट का शिखर, और फिर हिम-शिखर हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ, कामथ, त्रिशूल, द्रोणागिरि, नन्दाकोट, पचचूली—जब आसमान साफ होता है, इस संपूर्ण शिखर-माला को हम देख सकते है। ऊपर आकाश मे टँगे यह हिम-शिखर विश्वकर्मा द्वारा बनाए हिम के गढ ऐसे लगते है, जिन्हे अभी तक कोई विजय नही कर पाया। किन्तु इन सभी गिरि-शृगों पर मनुष्य का पुत्र अपनी विजय-पताका फहरा चुका है।

सामने ही हम सर्प-रेखा के समान एक पतली पगडंडी देखते हैं, जो द्वाराहाट होती हुई दूनागिरि के मंदिर तक गई है। दूसरी ओर गढवाल के वीरान लाल पहाड आकाश मे अपना सिर ऊँचा किए खड़े है। और हम कल्पना करते है कि इन्ही पहाड़ो के पार कही तिब्बत है, जहाँ क्रान्ति की आँधी वहाँ की जीर्ण-शीर्ण सामन्ती सामाजिक व्यवस्था को झकझोर रही है! इस आँधी के स्वर से सामाजिक हिंसक पशु, साम्राज्यवादियों का कलेजा काँप उठता है, किन्तु जनता का मन अनन्त आशा और उल्लास से भर जाता है।

धूल मैदानो की लू के साथ उठती है और इस पर्वत-देश पर छा जाती है। इन पर्वत-शिखरो की रेखाएँ धूमिल और कोमल हो जाती है। हिम-शृंग आँख से ओझल हो जाते है। देव-वन का कोमल शिखर हम देखते हैं, और हस-शावको अथवा तरुण युवती के उरोजो के समान वह दो शिखर, जिनके नाम हमे बताने मे सभी असमर्थ है।

वर्षा होने पर आकाश धुल जाता है और सभी पर्वत-मालाएँ शुभ्र और स्वच्छ हो जाती हैं। डूबते सूर्य की किरणे आकाश मे उन्नत त्रिशूल

और नन्दा देवी के शिखरो पर पडती हैं। सोने के गढ से, रावण की जलती लंका के समान वे लगते हैं। फिर एक हल्का गुलाबी रंग उन पर छा जाता है। अँधेरा होने पर केवल श्यामल रेखाएँ क्षितिज पर रह जाती है। इतने कोमल और सुकुमार यह रग और इनकी रेखाएँ है कि हिमालय की महान गरिमा भूल कर हम सोचते है, गुलाब का एक बडा फूल फूला और फिर मुर्झा गया! किन्तु फिर हम सोचते है, कितनी छोटी उपमा है यह? इन स्वर्ण-शृंगो को अल्कापुरी के गढ ही कहना चाहिए, जो कालिदास कह ही गए हैं।

(२)

शेरसिंह की दुकान

शेर सिंह की दूकान पर बैठे हम गरम गिलासो मे चाय पी रहे है। यह स्थान एक तरह से पर्वत-मार्ग का चौराहा है। यहाँ निरन्तर आते-जाते यात्रियो का जमघट रहता है। नीचे गाँवो से तरह-तरह के व्यक्ति यहाँ आते है, और पल भर बैठ कर विश्राम करते हैं, चाय पीते हैं और फिर बढ़ जाते हैं। दिन भर आती-जाती मोटरो की भन्-भन् से कान गूँजा करते हैं। रानीखेत, नैनीताल या काठगोदाम से आती मोटरे यहाँ टोल-बार पर रुकती है, और पल भर के लिए मानो यह बन गुलजार हो उठता हैं। मोटर मे बैठे फैशनेबिल यात्री उत्सुकता या उदासीनता-भरे नेत्रो से बाहर देखते है, क्षण भर के लिए मानो उनकी थकी आत्मा पर पडा पर्दा हटता है, और फिर गिर जाता है। टोल पर ताल के बँधे पानी मे पल भर के लिए गति आती है, और एक बार फिर वह स्थिर हो जाता है। टोल का रुपया देकर, या पास लेकर मोटरें आगे बढ़ जाती है, और फिर हम अकेले रह जाते है। क्षण भर के लिए ताल मे पड़े

कंकड़ ने जो तरंगें उत्पन्न की थी, वह विलीन हो जाती है, और फिर वन अपना आधिपत्य जमा लेता है।

दिन भर मोटरें इधर से उधर जाती है, और हम उन्हें बैठे-बैठे देखा करते है। काठगोदाम से अल्मोड़ा और अल्मोड़ा से काठगोदाम। गरुड़ से भी गाड़ियाँ आती है, किन्तु इनमे अधिकतर लीसा रहता है, आदमी कम। जो आदमी आते है वे सीधे-सादे, भोले-भाले। वे हमारे साथ बैठ कर गरम गिलासो मे चाय पीते हैं, और मूंगफली खाते है। वे हमे उपेक्षा की दृष्टि से नही देखते। और न हम उन्हे उपेक्षा की दृष्टि से देखते है। वे हमारे रँगे-रँगाये यात्रियो से सर्वथा भिन्न है। वे हमारी पृथ्वी के सुत है, और उसका धन है।

दूकान के सामने सतरियो के समान खड़े ऊँचे-ऊँचे सीधे चीड़ के पेड़ हैं। यहाँ मार्ग ढालू है, इसलिए मोटर से उतरते ही 'क्लीनर' पहले पत्थर का एक बड़ा सा ढोका पहिए के नीचे लगाता है। सड़क तेजी से नीचे उतर कर फिर टेढ़ी-मेढ़ी होकर गोल्फ लिंक्स के सुन्दर मैदान के बीच होकर गुजरती है। दूर पर बराबर हम बर्फ की चोटियाँ देखते हैं, और उन्हे देख कर एक अकथनीय आह्लाद से मन भर जाता है।

शेर सिंह की दूकान आस-पास की बस्ती का अड्डा है। फ़ुर्सत के समय सभी वहाँ आकर जमते है। शेर सिंह जी की दूकान सिर्फ चाय की दूकान ही नही है, बल्कि जरूरत पड़ने पर छोटी-मोटी सभी चीजे यहाँ मिल सकती हैं, दूध, घी, आटा, दाल, आलू, प्याज, गुड़, मूंगफली, साबुन, पान, आदि। राह चलते लोग यहाँ क्षण भर विश्राम करते है, चाय-पानी पीते है, और फिर अपना रास्ता पकड़ते है।

शेर सिंह की दूकान कालिका की वाइटवे-लेडला कम्पनी है। बस्ती की सभी जरूरते वह पूरा करती है। लेकिन शेर सिंह जी पोस्ट-मास्टर भी है। दिन का कुछ वक्त सुबह-शाम वह डाकघर के काम को देते है।

कुछ वर्ष पूर्व शेरसिंह मिस्र और मध्य-पूर्व के अन्य देशो मे महायुद्ध के सिलसिले मे रहे थे। वह मशीन-गन की टुकड़ी मे थे। बहुत रुक-रुक कर और बड़ी अनिच्छा-से वह उस काल की बात करते है। हम पूछते है, 'आप सोलूम की लड़ाई मे थे!'

'जी हाँ, हम बैन्गाज़ी तक गए थे।'

'वह तो बहुत भारी लड़ाई थी।'

'जी हाँ, बहुत भारी थी।'

'और आप कहाँ-कहाँ गए?'

'हम बहुत जगह गए, पैलेस्टाइन, लैबनन, ईराक, बर्मा, मलाया।'

हम सिर हिलाते है : 'वाह, खूब दुनिया देखी है आपने!'

शेरसिंह गर्व से हमे सन्दूकची से निकाल कर अपने सर्विस मैडल दिखाते हैं।

दूकान के नीचे एक लम्बा-तड़गा जवान टोकरी मे रक्खे काफल बेच रहा है। हम उसकी शलवार की ओर उत्सुकता से देखते हुए पूछते हैं : 'यह तुम्हे कहाँ मिली!'

वह बताता है : 'रावलपिन्डी मे!'

'तब तुम भी बहुत घूमे हो!'

शेरसिंह बताते है . 'जहाँ-जहाँ मैं गया था, यह सब जगह हो आया है।'

कैसी विचित्र आँधी थी, जो पहाड़ की गोद से इन मिट्टी के कणों को बेन्गाज़ी, तोबरुख, और न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा ले गई। और भी आश्चर्य तो यह है कि आँधी निकल जाने पर वह सब जहाँ-के-तहाँ अपने स्थान पर बदस्तूर कायम है!

अनायास ही दूकान पर राजनीति की चर्चा होने लगती है। बूढे शाह जी, जो इस सब बस्ती के मकानो के मालिक है, और एक समय रानीखेत के सबसे बड़े ठेकेदार थे, आर्थिक सकट के शिकार बन गए हैं। अब न तो मकान किराए पर उठते है, न वह पुराने ठेके है, चारो ओर

मुर्दनी छाई है। शाह जी बताते है कि एक आने का नमक लेने के लिए पर्मिट लेना पड़ता है; फिर क्यू में घंटो खडे होइए, तब कही आपको आध-सेर नमक मिलेगा। बडे व्यग से वे कहते हैं : 'स्वदेशी सरकार है अब!'

सब सिर हिलाते हैं, मानो मूक स्वीकृति से उनकी बात का समर्थन करते हो।

नमक का अकाल हमको महात्मा गाँधी की दाँडी यात्रा का स्मरण दिलाता है। इसी नमक को सस्ता करने के लिए गान्धी बाबा ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती दी थी। उन्होने कहा था, 'नमक कर हटाना होगा। भारत बड़ा गरीब देश है, यहाँ असख्य लोग सिर्फ़ नमक से रोटी खाकर जीते हैं। नमक उन्हें बिना कर मिलना चाहिए।' कांग्रेसी सरकार ने नमक-कर हटा दिया, लेकिन नमक की कीमत बढ गई। अब घंटो आप क्यू मे खडे होकर एक आने का नमक खरीदिए, या चोर बाजार मे आंठ आना सेर नमक खरीदिए। सरकार की आमदनी मे इतने करोड घाटा व्यर्थ ही हुआ!

हम सोचते है, ऐसा क्यों होता है। मीडास जो चीज छूता था, वह सोना हो जाती थी। हमारी सरकार जिस चीज को छूती है, वह मिट्टी हो जाती है, मँहगी हो जाती है, अदृश्य हो जाती है, चोर बाजार मे गायब हो जाती है।

यह क्यो होता है, दूकान पर बैठे व्यक्तियो मे से कोई न समझता था, लेकिन सभी सोच रहे थे, 'ऐसा क्यो होता है?' शायद हमारे देशवासी ही इतने अयोग्य थे।

जो प्रश्न बडे-बडे शहरो मे, बिहार के गाँवो मे, दिल्ली और कलकत्ता की सडको पर उठ रहे थे, और भारत की असंख्य जनता को विचलित कर रहे थे, उनकी प्रतिध्वनि हम यहाँ भी, पहाड की गोद मे इस उजाड-खण्ड मे भी सुन रहे थे।

(२)

खाली

पहाड़ो और जगलों को पार करके हम खाली जा रहे हैं। स्नो-व्यू, जहाँ प्रसिद्ध कलाकार बूस्टर् रहते है; काली माटी, जहाँ डेनिश सन्यासी सोरेनसेन रहते हैं, और जिन्हे देख कर मन मे प्रश्न उठता है कि यह पुरुष है अथवा स्त्री; कपार देवी, जहाँ बाबा रामदास रहते है। इन पहाड़ो को पार करके हम आगे बढते है। हर पहाड की चोटी पर, कैलाश पर शिव की भाँति, एक-एक साधू समाधि लगाए जमा हुआ है। जगत से मुँह मोड कर वे अपनी व्यक्तिगत् मोक्ष की खोज मे लीन है। एक हिमालय के चित्र बनाता है, दूसरा गेरूआ पहने कुत्ते पर अपना सम्पूर्ण, सचित, उमड़ता स्नेह बरसाता है; तीसरा योग-साधना मे लीन अपनी शक्तियों को विकसित करने का प्रयास कर रहा है। ससार के सभी प्रयासों से अलग ये यक्ष प्रकृति की अनुपम अल्कापुरी मे बसे है।

जहाँ पहाड के मार्ग चारो दिशाओ मे खुलते है, हम दीनापानी की ओर घूम जाते है। कपार देवी इधर सबसे ऊँचा पहाड है, यहाँ से बर्फ की चोटियों का सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है, और बिरला जी ने देवी के मन्दिर का पुनरुद्धार करा दिया हैं। दीनापानी का मार्ग कपडखान तक बराबर नीचे उतरता है। यहाँ पेड बहुत कम है, डाक बँगले और जगलात के बँगलों के चतुर्दिक् पेडों के झुरमुट पहाड़ की चोटी पर हरे मुकुट के समान लगते है। कपडखान मे पैदल रास्ता और मोटर का रास्ता मिलता है। मोटर की सडक अनेक चक्कर काट कर, साँप की तरह बल खाती हुई चलती है। इसे अकाली सडक कहते है। जब बीस वर्ष पहले अकाल पडा था, आसिफ़ुद्दौला के इमामबाडे की तरह अकाल-पीडितो को काम देने के लिए यह सडक बनाई गई थी। अब इस सडक पर किसी भयानक वन-पशु की तरह हुँकार करती, फुफकारती, कभी-कभी कोई मोटर चीड के गोद-भरे पीपो से लदी चलती है।

कपडखान से सीधी पगडडी खाली और विन्दसर के लिए उठती है। यह कठिन चढाई है। स्वर्ग की सीढी के समान यह लगभग सीधी खडी है। यह पगडडी चारो ओर चीड के वनो से घिरी है। इन जगलों से चीड का गोद पीपो मे भर कर मोटर की सडक से देश जाता है, जहाँ इससे तारपीन का तेल निकलता है।

इस कठिन चढाई को पार करके हम खाली पहुँचते है, और थक कर घास पर लेट जाते है। खाली जगल के बीचोवीच विन्दसर से नीचे मिसेज पडित का खरीदा स्टेट है। सुनते है, राजदूत होने के बाद उन्होंने इसे बेच दिया है। खाली कश्मीर के समान पृथ्वी पर स्वर्ग है। यहाँ खेत, खलिहान, फलो के वाग, चीड और देवदार के घने बन सभी कुछ हैं। यहाँ घास पर लोट कर मनुष्य सोचता है, यदि पृथ्वी पर कही स्वर्ग है, तो यही है! यही है! यही है!

हरिपुरा कॉंग्रेस से लौट कर प० जवाहर लाल नेहरू इस घास पर लेटकर कल्पना करते थे कि यह पहाड़ पृथ्वी के उरोज है, वैसे ही कोमल और सुन्दर! यहाँ पंडित नेहरू मैदानो की भीड, पसीने और धूल से भाग कर बचने के लिए आते थे। यहाँ वे राजनीति और सघर्ष को क्षण भर के लिए भूल जाते थे।

खाली के स्टेट का सौन्दर्य-शिखर यहाँ का बँगला 'ऋतु-सहार' है। इसका नामकरण स्वर्गीय रणजीत पडित ने किया होगा, जो संस्कृत के विद्वान थे। सचमुच ही खाली मे ऋतुओ का सहार हुआ है। और यहाँ मानो सदा बहार है। फूलो से लदे लता-द्रुम, पानी का नल, बिजली, फ्लश लगे गुसलखाने—विश्वकर्मा ने भारत के ऐश्वर्यवानो के लिए भोग-विलास के सभी साधन यहाँ जुटाए है। चारो ओर इतनी ग़रीबी, इतनी पीडा, सघर्ष—प्रकृति से सतत युद्ध मे जूझता मानव; और दूसरी ओर, यह ऐश्वर्य किस के बल पर? यही कुली इन श्रीमानों के लिए भोग के सब साधन इन जंगलो मे जुटाते है, और ठोकर खाते है।

अनायास ही हम सोचते है, प० नेहरू यहाँ लार्ड माउन्टबैटन का

स्वागत कर सकते थे। आधुनिक भारत का शाही खानदान, इस प्रकार पश्चिम के शाही खानदान से युगो की पीड़ा के पार हाथ मिलाता है।

... ...

'अब खाली स्टेट उजडा पडा है। किसी सेठ ने उसे खरीद लिया है।' हमे प्यास लगी है; पानी की खोज मे हम चक्कर काटते है। हमारी आवाज पत्थरो से टकरा कर शून्य मे गूँजने लगती है। रसोई-घर के किवाड टूटे पडे है। खलिहान मे लंगूरो की एक पाँत चुपचाप बैठ कर योगियों की मुद्रा मे हमारी हरकतें देखती है। हम कहते है, 'हुश!' और वे अपनी लम्बी, गोल-गोल दुमे ऊपर उठाए भागते है। बाग मे हमे एक माली मिलता है; पास ही बन्दूक रक्खे वह सो रहा है। बन्दूक देख कर हम चौकते हैं। माली आँख मल कर उठता है, हमारा सवाल सुन कर बिन्दसर की ओर हाथ वह उठाता है पानी बिन्दसर की सड़क पर मिलेगा!

हम निराश लौटते हैं। रास्ते मे हमारे दिमाग मे खाली का उजडा यौवन और सौन्दर्य चक्कर काटता है। फूलों से लदे वे लता-द्रुम, चीड़ और देवदार के कुंज, 'ऋतु-संहार', फ्लश, नल और बिजली, और दूसरी ओर वह लंगूर और बन्दूक और आदमी की प्यास मिटाने को बूँद नही! हमारी कल्पना मे इतिहास के अनेक वीरान खँडहर घूम जाते है, जहाँ किसी जमाने मे सगीत और नृत्य की ध्वनि गूँजती थी, लेकिन जहाँ आज केवल मृत साम्राज्यों की प्रेतात्माएँ मँडराती है! टैगोर की कहानी का शीर्षक हमारे मस्तिष्क मे बरबस ही चक्कर काटने लगता है और मानो कोई बार-बार दुहराता हो, 'क्षुधित पाषाण!'.

(४)

चीड़ का वन

अल्मोड़े के चारो ओर चीड के घने जगल है, जहाँ सेहत की खोज मे टी० वी० के मरीज गर्मियो मे आ बसते है। अल्मोडा पहाड की चोटी पर बसा है, और रोज शाम होते-होते तेज हवाएँ इन जंगलों मे सायँ-सायँ करके चलने लगती हैं। मानो मध्य एशिया और तिब्बत के पठारों को पार करके यह हवा के झोके लम्बी यात्रा करके आते हों और इस प्रसिद्ध पहाडी नगर की आत्मा को झकझोर जाते हों।

नरायन तेवाडी देवालय के पास भी ऐसा ही एक घना चीड का वन फैला हुआ है। हवा से क्षुब्ध होकर यह वन अपना सिर धुनने लगता है, असीम जीवन उसके तृण-पात मे भर जाता है और उसे मुखरित कर देता है, मानो सागर मे ज्वार उठ रहा हो, या दूर किसी जल-प्रपात का निर्निमेष स्वर सुन पड़ रहा हो। इस स्वर से मनुष्य के प्राणो मे भी अनन्त उल्लास भर जाता है और उसका कायाकल्प होता है।

जब हवा शान्त रहती है, तो यह चीड के पेड आसमान में अपने ऊँचे सिर उठाए हिमालय की निधि की रक्षा करते हुए सतरियों के समान लगते है। जब वन मे हवा भरती है, तो उद्दाम जीवन से यह वन आकुल हो उठता है, मानो क्रान्ति की वाहक अगणित सेनाएँ शत्रु के हृदय को रौंदती हुई आगे बढ रही हो।

यह वह प्रदेश है जहाँ लगभग तीन देशो की सीमाएँ छूती है। यहाँ साम्राज्यवाद के श्राप से मुक्त जनता क्षण भर के लिए मानो विजयी, स्वाधीन सोवियत और चीनी जनता से हाथ मिलाती है।

इन पहाड़ो की पाँतो के पीछे तिब्बत है, जहाँ से भेडो और बैलो के कारवाँ भारत की मण्डियों मे सामान पहुँचाने के लिए चलते हैं, और भयानक चोटियो और दर्रों को पार करते है। इस तिब्बत की सरहद

पर लामाओ के शोषण से मुक्त जनता खड़ी है, जो सदियो की दासता को मिटा रही है और पलक मारते आदिम युग और मध्य युग के गहन कुहासे को दूर कर देगी।

इस चीड के जंगल के साये मे कितने प्राणी आधुनिक युग के आलोक की प्रतीक्षा मे आँख गड़ाए पड़े है। वे टी० बी० के रोगी जो छोटे-छोटे कमरो मे पडे निर्निमेप जीवन की अन्तिम घडियाँ गिन रहे है, वे कुली जो पहाड़ के समान भारी बोझ मीलो ढोते है और किसी दूसरे जीवन की कल्पना भी नही करते; इन गाँवो के किसान, नरायन तेवाडी देवालय के दूकानदार, यहाँ के छोटे-छोटे चायखाने जो मध्य एशिया के चायखानो का स्मरण दिलाते है; यह सभी तो उस आधुनिक आलोक की प्रतीक्षा मे है, जो क्रान्ति के साथ आयगा और नया जीवन तृण-कृत तक मे भर देगा।

चीड के वन मे आँधी उठ रही है, हर शाख को वह मथे डालती है। क्षुब्ध सागर के समान भयावह स्वर बन मे भर गया है। सुदूर साइ-बेरिया के जगलो से यह आँधी उठी है, चीन और तिब्बत के रेतीले, ऊसर पठार पार करके यह आ रही है, अनेक वन, नगर और बस्तियाँ इस आँधी के तले आए है। जहाँ-जहाँ यह क्रान्ति की आँधी बही है, वहाँ नव-जीवन पल्लवित हो रहा है। पुरातन का ध्वस और नव-निर्माण इस आँधी के डगो मे भरा है। आज अल्मोडे को भी यह आँधी झकझोर रही है; जब यह शान्त होगी, तब नव-प्राण और जीवन यहाँ के तृण-तृण मे भर जायगा; उस शान्ति को भग करने की सामर्थ्य किसी बर्बर साम्राज्यवाद और पूँजीवाद मे न होगी। तभी अखण्ड काल के लिए सच्ची शान्ति और अहिंसा दुनिया मे आ सकेगी।

(५)

नैन त्याड़ी दि्वाल

नन त्याडी देवाल वास्तव मे नारायण तिवारी देवालय का अपभ्रंश है। नरायन तिवारी ने गिमतोला की छाया में अपना देवालय बनाया था; अब देवालय मे शरणार्थी रहते है, और उसके इर्द-गिर्द अच्छा खासा बाजार बस गया है। यह बस्ती मानो पहाड के ऊपर उठी 'दिवाल' है, जो अल्मोडे को और पहाडो से काट कर अलग करती है; चीन की बडी दीवार के समान मानो यह अल्मोडे की दीवार है।

अल्मोडे के हवाखोर यहाँ एक गिलास चाय पीने के लिए रुकते हैं। अन्तर्देश मे जाते हुए लोग पल भर के लिए यहाँ साँस लेते हैं। पहाड़ की चोटी पर बसा यह दर्रा गिमतोला और काली माटी के बीच एक चौकी के समान है। इस बस्ती के चारों ओर घने चीड़ के जंगल है, जहाँ क्षयके रोगी स्वास्थ्य की खोज मे आकर रहते हैं।

देवालय के बाजार मे अजनबी आदमी को पहाडो के अन्दर बसे अन्तर्देश का भान होता है। छोटे-छोटे नीची छतों वाले घर, नक्काशी किए लकडी के दरवाजे और खिड़कियाँ, पतली, तिरछी आँखो वाले पुरुष, लकडी के बोझे लिए चपटे मुँह और नाक वाली स्त्रियाँ, निरन्तर चूल्हो पर चढ़ी चाय की केटली, असख्य चायखाने, लगभग हर दूकान पर गिलासो मे चाय पीते राही—मध्य एशिया के दुर्गम पहाड़ो के बीचोबीच बसी किसी बस्ती का स्मरण दिलाते है।

अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी हैं; इन रास्तो से समरकन्द और बोखारा के कारवाँ चल चुके हैं, अगणित लुटेरे सम्राटो की सेनाएँ इधर से निकली हैं; इन रास्तो की धूल मे बडे-बड़े सैनिको की हड्डियाँ घुल-मिल गई हैं। आज भी दस शताब्दी पहले का दृश्य हम यहाँ देखते हैं; गोश्त और सब्जी की दूकानें, सरो पर भारी-भारी बोझे लादे पुरुप और

स्त्री, रास्तो के बीच टहलते कुत्ते, बकरी, मुर्ग़ियाँ, और दूकान के ऊपर के खण्ड मे खिडकी से झाँकता हुआ सब नक्शो मे परिपूर्ण एक मगोल मुख, जिसमे और सम्राट् बाबर के मुख मे असाधारण समानता है—वही लम्बा, तिकोना मुँह का ढाँचा, पतली, तिरछी आँखें, वही हल्की, महीन डाढी और मूछे! अनेक सदियो बाद फिर वही इस प्रदेश के आदिम निवासी पूर्वजो का प्रतिबिम्ब!

चीड के वन, दूर क्षितिज तक ऊँचे-ऊँचे सर उठाए पहाड, सदियो से अपरिवर्त्तित वही नर नारी, जीविका-उपार्जन के वही साधन। मानों प्रकृति और मनुष्य का वेश यहाँ पल भर के लिए भी बदला न हो, जड पृथ्वी और चचल आकाश—यही सदियों का इतिहास मानो यहाँ रहा हो।

लेकिन इस जड सामन्ती भूमि पर भी धीमे-धीमे पूँजीवाद की छाया पडने लगी है, और इन चीड के वनो और पहाडो को पार कर समाजवाद की आँधी के झोंके इधर आ रहे है।

प० पदम सिंह दूध वाले की दूकान पर आप बिरला जी का हिन्दी का मुख-पत्र देख सकते है। दो-चार लोग निरन्तर उस अखबार पर बाज़ार की मक्खियो की तरह भिनभिनाया करते है। 'दिवाल' से नीचे उतर कर आप साम्राज्यवाद के साथ आए पूँजीवाद का फल "हैलट रिजर्वॉयर" देख सकते है। कई लाख के खर्चे से यह तालाब बना है, लेकिन अभी भी अल्मोड़े मे पानी की समस्या हल नही हुई। फिर अगर शाम को आप हवाखोरो के जमघट की बातें सुन सकें, तो रूस, चीन, तिब्बत, कम्यूनिज्म आदि शब्द सुनेगे। स्पष्ट ही तिब्बत के रास्ते रूस के एजेन्ट इस पर्वत-देश मे भी पहुँच चुके हैं। यह हवा और पानी के रास्ते चलते है, साँस लेते नाक और दिमाग मे घुसते हैं, इन्हे रोकना दुर्निवार है!

'दिवाल' का खोल तो सदियो से अपरिवर्तित चला आया है, लेकिन अन्दर ही अन्दर उसके मन और प्राण मे भारी उथल-पुथल मच रही है। उसका जीवन बर्फीली नदी के समान है, जिसकी सतह की बर्फ़

तो अभी टूटी नही है, लेकिन अन्दर पानी की अविराम धार बह रही है।

(६)

पर्वत मार्ग

लाल कुआँ से ट्रेन आगे बढते ही वायु मे पहाड़ो की गंध समा जाती है। यहाँ हम चाय पीते हैं, मुँह-हाथ धोते हैं; ट्रेन में यहाँ दो एंजिन लगते हैं। लाइन के दोनो ओर घना वन है, और दूर-दूर तक केवल दो ही रंग नयनों मे भरते हैं, घास और पेड़ों का घना, हरा रग, और आसमान का नीला रंग। एक अदम्य उल्लास यात्री के मन मे भर जाता है। जलती धरती और लू के प्रदेश से कुछ अरसे के लिये उसे मुक्ति मिली। हम सोचते है, नई समाज-व्यवस्था मे इन पहाड़ो पर जनता के लिये स्वास्थ्य-स्थल बनाने होगे; बड़े पैमाने पर मैदानो में वायु का अनुशासन कर ठंडे घर और नगर बनाने होगे; बड़े-बडे जगल लगाकर और बनावटी वर्षा कर जलवायु बदलनी होगी। अभी तो वर्ष का लगभग आधा भाग काफी शारीरिक कष्ट मे बीतता है, और जमकर कोई भी काम करना कठिन होता है।

पहले लाइन की पूर्व दिशा मे और बाद मे पश्चिम मे हम पर्वतो की धूमिल, अस्पष्ट छाया देखते है। क्रमश. हम इन रेखाओ को विराट भूधर बनते देखते है। सब सिर खिड़कियो के बाहर निकल जाते हैं।

इसके बाद हल्द्वानी और फिर काठगोदाम—काव्य-लोक का गद्य-द्वार। टीन का शेड, बर्मा-शेल का विशाल टैंक, लाइन, सिगनल, भीड़-भड़क्का, मोटर, यात्री, शोरगुल। धुआँ, घुटन और किसी प्रकार इस क्षुब्ध वातावरण से मुक्ति पाकर बाहर निकल भागने की छटपटाहट।

इन पहाड़ो और वनों के बीच से एक टेढी-मेढ़ी, सर्प-रेखा के समान पगदडी ऊपर चढ़ती है; चीड, देवदार, पाँगड और बाँझ के पेड़ों के बीच से वह गुजरती है। शीतल वायु प्राणो का स्पर्श कर नवजीवन उनमे भर देती है। यह महाभारत के यक्ष, किरात और गंधर्वो का देश है; इसी दिशा मे पाण्डव अपना राज-पाट त्याग कर बढ़े थे। इन्ही वृक्षों की महिमा का वर्णन कालिदास ने किया है। इसी मार्ग का अनुसरण मेघदूत ने अलका जाते समय किया था।

मोटरो की अविराम भन्-भन् के बीच पर्वत-मार्ग ऊपर उठता जाता है। पहाड़ो के पार्श्व मे, उनके बाजू काट-काट कर मानव-विश्वकर्मा ने यह पथ बनाये है। आधुनिक विज्ञान के यह अद्‌भुत् चमत्कार हैं। अनेक दुर्गम पर्वतो को काटकर मोटर-पथ और रेल-पथ बनाए गए हैं, और मानो पलक मारते हम उन्हे पार कर निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचते हैं।

किसी भीमकाय अजगर की भाति यह भारी-भरकम तारकोल से पुती, काली सड़क गोल-मोल होकर पहाड़ के हृदय पर लेटी है। कुन्डली मारे शेषनाग की मानो यह प्रतिमूर्ति है।

भुवाली पर्वत-पथो का चौराहा है। यहाँ से चारो दिशाओं को रास्ते खुलते हैं। एक झीलो के सुन्दर प्रदेश भीमताल को जाता है, किन्तु अभी तक इसे अपना 'वर्ड्सवर्थ' नही नसीब हुआ। एक रास्ता फलों के प्रदेश रामगढ़ को जाता है। यहाँ अन्धाधुन्ध सेब और अन्य फल खोबानी, आड़ू, 'प्लम' आदि होते हैं, किन्तु इन्हे दूर प्रदेशो के निवासी ही खा सकते है। एक रास्ता फ़ैशन के जमघट नैनीताल को जाता है, एक रानीखेत और अल्मोड़ा को और एक काठगोदाम को। यह सभी मार्ग क्षय-रोगियों के केन्द्र भुवाली मे मिलते है। इसे आप आधुनिक भारत का एक रूपक भी समझ सकते है। इन मार्गो से बड़ा वाणिज्य और व्यापार गुजरता है। तिब्बत की ऊन, कालीन, सोहागा, माला और मूंगे इस मार्ग से मैदानों मे पहुँचते हैं, और सस्ते, छपे कपड़े, नमक और गुड़ वापस आते हैं। पहाड़ो के घोर अन्तर्देश से इन पदार्थों के विनिमय के लिए असाध्य कष्ट

सहकर भी लोग आते-जाते है। पहाड़ो की पीठ पर, उनके क्रोड़ मे हल्के पतले डोरे के समान महीन पथों पर चलकर मनुष्य और खच्चर यह माल इधर-से-उधर लाते और ले जाते है। इस अन्तर्देश मे पहुँच कर हम अनुभव करते हैं कि यक्ष, गन्धर्व और किरातो के देश की सब-माया आज का साम्राज्यवादी रावण हर चुका है, और इस देवलोक के वासी भी पथ के भिखारी बन चुके हैं। यहाँ आदिम युगो के अंधकार की छाया लम्बी होकर पृथ्वी पर लेटी है। न यहाँ पानी है, न बिजली, न सड़के। यहाँ नवीन और पुरातन के सभी अभिशाप मौजूद है, और वरदान एक का भी नही। यहीं प्रकृति इतनी सुन्दर है और मनुष्य इतना दीन-हीन!

अनेक पर्वत-मार्ग हमारे सुपरिचित है। इनकी स्मृति-मात्र मन को अकथनीय भावनाओ से भर देती है। एक के बाद एक, दूर क्षितिज तक फैलती पर्वत-मालायें—मानो किसी प्रलयकर भूकम्प ने पृथ्वी को सागर की जल-राशि की भाँति मथ दिया हो, मानो पृथ्वी मे यह गगनचुबी लहरे किसी अज्ञात प्रेरणा से उठी हो, और फिर उसी प्रकार स्थिर हो गई हो, मानो किसी आधुनिक कोणवादी चित्रकार की यह रचनाएँ हो। यह लाल और हरे पर्वत, जो दूरी पर आकाश के समान नीलाभ लगते है, पृथ्वी के उद्गार है। इनका सौन्दर्य कवियो और शिल्पियो ने निरतर शब्दों और रेखाओ के जाल मे बाँधने का असफल प्रयास किया है।

हमें याद आती है, शिकिम की सीमा पर स्थित पर्वत-शिखरों की; सर्प-रेखा के समान पगडडी की, जिसका अनुसरण करते हुए अनेक बार एवरेस्ट पर विजय पाने के आकाक्षी यात्री आगे बढ़े है; और वुलर झील से १२००० फीट ऊपर उठते आकाश-मार्ग की, जो लदाख को जाता है, और जिसका अनुसरण करते हुए नगा पर्वत पर विजय पाने के इच्छुक जर्मन यात्री बर्फ के तूफान मे नष्ट हुए थे। हमे याद आती है पर्वतो के बीच स्थित लका की प्राचीन राजधानी कैंडी की, जहाँ से रेल आपको न्युवरेलिय के सुन्दर शीत-नगर तक ले जाती है; और दार्जिलिंग तक 'छुक-छुक' कर पहुँचती शिशु-रेल की, जहाँ चारों ओर बादल छाये

रहते है, और मानो मातालि द्वारा हाँके इन्द्र के रथ पर आप व्योम में विहार करते हैं।

यह सब पर्वत-मार्ग हमारे सुपरिचित हैं। यहाँ हिमालय का अखण्ड वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु हम उस युग की प्रतीक्षा मे हैं, जब मानव-पुत्र यक्षो की समता करते हुए इन हिम-शृंगो पर अपनी अलकापुरी बसायेगा।

(७)

अलकापुरी

कोसी से ऊपर बस भारी हुंकार करके चढने लगी, तभी किसी ने बस की खिड़की से बाहर झाँकते हुए कहा : "यह अल्मोड़ा है!" अनेक सिर बस से बाहर निकल कर पहाड़ की गोद मे बसी चन्द राजाओ की इस राजधानी को देखने लगे। दूर-दूर तक पहाड़ के कक्ष मे फैली इस पर्वतपुरी की शोभा अनुपम थी। पहाड़ो के अन्तर्देश मे बसी यह नगरी मानो अपने प्राचीन शत्रुओ को चुनौती दे रही थी। यह क़िले की प्राचीर थी, यह गढ़ी के ध्वसावशेष थे, यह महल थे, जो आजकल जेल का काम देते है। यहाँ लकड़ी पर अद्भुत कारीगरी के मक़ान है, यहाँ शिल्पकार है, ताँबें के सुन्दर कलश और बर्तन बनाने वाले है। क्षितिज पर नगर के विस्तार से हमारे नेत्र चौंधिया गए।

वास्तव मे अल्मोड़ा ही अपने अधिकार से पर्वत-नगर है। यह न गर्मियो मे बसता है, न जाड़ो मे उजड़ता है। अन्य पर्वत-नगर खाना-बदोशो की सराय हैं। वहाँ झुंड के झुंड यात्री ऋतु-परिवर्तन के समय पक्षी-समूहों की भाँति आते है, और चले जाते हैं। दो दिन के लिए वह नगर गुलजार होते है, फिर मुर्झा जाते हैं। किन्तु अल्मोड़ा आवागमन की इन समस्याओ के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन है। तिब्बत के व्यापार के

लिए यहाँ से मार्ग खुलता है; सोमेश्वर की घाटी के लिए, पिथौरागढ़ और चम्पावत के लिए इधर से रास्ते गए है :- चारो ओर पुराने मन्दिर और तीर्थ बिखरे पड़े है। पूरे कुमायूँ प्रदेश के जीवन का यह- केन्द्र है, उसका हृदय है।

अल्मोड़े के माथे पर हिमालय का रत्न-जटित स्वर्ण किरीट है। उसके गले मे चीड और देवदार के वनो का हरा उत्तरीय है। उसके चरणों को कोसी अपने स्वच्छ, निर्मल जल से निरन्तर धोती है। अल्मोडे के गर्भ मे अद्‌भुत् प्रतिभा के रत्न है। यहाँ के पर्वतो, नदियों और वनो मे कुबेर की अनन्य धन-राशि छिपी पड़ी है। किसी दिन समाजवाद के जादू की छड़ी इस प्रदेश की मिट्टी को सोने में परिणित करेगी, यद्यपि आज की दुर्व्यवस्था इसके सोने को भी मिट्टी बना रही है।

नरायण तेवारी देवाल से 'ब्राइट-एन्ड कौर्नर' तक अविराम इसके प्राण स्पदित है। इन टेढ़ी-मेढ़ी, सर्पाकार, कृष्णकाय सड़को पर तरुणो और तरुणियो के झुंड के झुंड घूमते हैं, कला और राजनीति की समस्याओं पर निरन्तर बहस करते है, गीत गाते है, कविता गुनगुनाते है। हम देखते है, नलो पर पानी के कनस्तरों और भरने वालों की भीड़; सिरों पर भारी-भरकम बोझे लटकाए ढोटियाल; मोटरो की भन्-भन्, धन्-धन्; यात्रियो के निरन्तर आते-जाते कारवाँ। देवाल पर, धिमतौला और धितौली के शिखरों पर, चीड़ के घने वन जिनमें निरन्तर वायु अस्फुट संगीत के स्वर भरा करती है; नन्दा देवी का मंदिर जहाँ से अर्चना की घंटियाँ यदा-कदा बज उठती हैं; चाय की दूकानें, बिलियर्ड के हॉल, सिनेमा-गृह, जहाँ अल्मोड़े का तरुण जीवन प्रवाहित होता है, और स्वप्न दिग्-दिगन्त की ओर उठते है; लाला बाजार, मक्खियो का अक्षय भंडार, जो टेढ़ा-मेढ़ा, रेंगता हुआ केचुए के समान अल्मोड़ा के हृदय पर लोटा है। यही अल्मोडे के व्यापार का श्रोत है; यही अल्मोड़े के रक्त की धमनियाँ है। यहाँ पुराने मकान है, पुराने मार्ग है, पुराने

व्यापारी और पडित है, जो अल्मोड़े को सदियो की सामन्ती निद्रा से जागते हुए नही देखना चाहते।

विचित्र नगर है यह। यहाँ जिसे देखिए, वही कोई महाग्रन्थ रचे और छिपाए बैठा है। जो अल्मोड़ा छोड़ कर बाहर चले गए, उनकी प्रतिभा का सौरभ तो दिशाओ मे व्याप गया, किन्तु अनेक प्रतिभाएँ यहाँ दबी-ढँकी पडी रहती हैं, और अवसर की अपेक्षा मे कुठित रह जाती है। यहाँ किसी के पास उपन्यासो की पाडुलिपियाँ पड़ी है, जिनसे कभी दीमक और चूहो का विराट भोज होगा; किसी ने पुराणो और महाभारत के आधार पर कुमायूँ का प्राचीन इतिहास और भूगोल लिख कर रख छोड़ा है। रचनाओ के इन्होने अंबार लगा रक्खे है। कविता, कहानी और नाटक की अद्भुत प्रतिभाएँ कुमायूँ ने अपने हृदय मे छिपा रक्खी है।

आज नई आँधियाँ और तूफान अल्मोड़े के प्राणो को झकझोर रहे हैं। तिब्बत से, दूर चीन देश से तेज हवाएँ चलती है, और इन चीड़ और देवदार के वनो मे भैरव संगीत बन कर गूँजती है। मैदानो और खेतो, फैक्ट्रियों से यह अंधड उठता है और दिशि-विदिशाओ मे भर जाता है। इस अधड़ का स्रोत कुमायूँ के वीरान खेत, यहाँ के डोटियाल, गरीब कमकर, शिल्पकार और तरुण छात्र हैं, जिनके हृदय मे क्रान्ति की धधकती ज्वाला है, और नेत्रो मे भविष्य के आशामय स्वप्नो की ज्योति है।

किसी ने बस की खिड़की से सिर निकालते हुए कहा : "यह अल्मोड़ा है!" सभी सिर खिडकियो के बाहर निकल पडे। हमने क्षितिज पर अल्मोड़ा के शुभ्र प्रासाद और भवनो का प्रसार देखा, और यथार्थ को विस्मृत करती हुई हमारी कल्पना ने कहा, "यही यक्षपुरी अलका है!" यहाँ प्राचीन भवन और मन्दिर है। यहाँ हिमालय के स्वर्ण-शृग आकाश मे उत्तुंग अट्टालिकाओ की भाँति गर्वीले सिर उठाए खडे रहते है। प्रकृति ने इस नगरी का अपनी सम्पूर्ण शिल्प-चातुरी से शृगार किया है!

(८)

हमारा घर

जिस घर में हम रहते है, वह रामनगर के रईस सेठ राधाकृष्ण जी की सम्पत्ति है। अल्मोडा के मोटर-स्टेन्ड से मानो कई मील ऊपर पिन्डारी के मार्ग पर यह घर बसा है। जब पहली बार यात्री इधर आता है, तो यह चढाई उसे खल जाती है। किन्तु अभ्यस्त हो जाने पर फिर वह उसे कुछ भी नही गिनता। निरन्तर हम ऊपर चढते जाते है, और लगता है कि इस यात्रा का कोई अन्त ही नही। जब हम थकान से चूर लक्ष्य पर पहुँचते हैं, तो यहाँ के स्निग्ध, शान्त वातावरण से मन अकथनीय आनन्द से भर जाता है। यह वन, पर्वत, मग, एकाध इधर-उधर आते-जाते पथिक और चतुर्दिक् अविराम, अनवरत नीरवता। नगरो के कोलाहल और सघर्षों से यहाँ हम मानो कट कर अलग हो गए हों, किन्तु यहाँ भी हम उनकी प्रतिध्वनि सुन सकते है।

इस स्थान को विशेष रूप से साधुओ ने अपना केन्द्र बनाया है। चारो ओर हम गेरुआ देखते है, जिसमें विदेशी साधुओ की गिनती भी कम नही। जो जीवन यात्रा से थक चुके है, अस्त्र डाल चुके है, उनका अड्डा प्रकृति का यह सुन्दर स्थल बना है। इनमे कुछ प्राकृतिक सौन्दर्य के सच्चे उपासक भी है, जैसे कलाकार ब्रुस्टर, जिन्होने अनेक वर्ष पर्यन्त, वर्षा, आतप और शीतकाल मे यहाँ रह कर हिमालय के रजत शिखरों की साधना की है, रंग-बिरंगी रेखाओ मे इस रूप-राशि को सँजोया है, और हिमाद्रि के असख्य अमर कलाकारो की सूची मे अपना नाम दृढ तूलिका से जोडा है।

जिस कमरे में हम रहते है, उसमें पहले बाबा रामदास रहते थे। किस प्रकार सेठो का बँगला बाबा रामदास की कुटी बना, इसका इतिहास है। सेठ सपरिवार इसी बँगले मे ग्रीष्म काल व्यतीत करते थे, किन्तु

उनके एकमात्र तरुण-पुत्र की यहाँ मृत्यु हो गई। तभी से सेठ जी ने इस बँगले को त्याग दिया और अब वे धर्मार्थ ही इसका प्रयोग करते है। बँगले का चौकीदार इसे 'सराय' कहता है, जहाँ कोई भी भूला-भटका आकर क्षण भर के लिए शरण पाता है। हमे भी यहाँ शरण ही मिली है, क्योंकि हमारे मित्र भट्ट जी ने, जो रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर हैं और सेठ जी के भी मित्र हैं, हमारे लिए एक सिफ़ारशी पत्र लिख दिया था! अकसर यहाँ साधू उतर आते है, और पूछते है कि "साधू की कुटिया कहाँ है?" किन्तु जब उन्हे पता चलता है कि पानी एक-डेढ मील नीचे खड्ड से आएगा, तब उनकी हिम्मत टूट जाती है।

हमारे यहाँ आने पर बाबा रामदास और भी घोर निर्जन मे कषार देवी चले गए। वहाँ वे न जाने किस तपस्या मे लीन रहते है, और बड़े-बडे गिरगिटो और पत्थरो के बीच अपना जीवन एक शिष्य के साथ काटते हैं। किसी समय वे दिल्ली मे पहले "हिन्दुस्तान टाइम्स" और फिर "डॉन" के उप-सम्पादक थे। आतकवादी संस्थाओ से उनका सबंध था, किन्तु इस सब व्यापार से विमुख होकर, न जाने किस शौक में आकर वे साधू हो गए, और शायद स्वयं भी न जानते हो कि अब किस खोज मे लगे है! फिर भी मानवी सभ्यता से अपना संपर्क वे पूर्णतयः नही काट सके है। दिन मे एक बार अवश्य वे राशन, मिट्टी का तेल, चीनी आदि लेने शहर का चक्कर काटते हैं, और बिना समाचार-पत्रों के भी जीवित नही रह सकते। जब उन्होने हमारा कुछ क्रान्तिवादी साहित्य उधार लिया, तो हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। हमने उनसे कहा . "ना जाने केहि रूप मे नारायन मिल जाहिं"! साधू के वेश में छिपा क्रान्ति का आकाक्षी हृदय पाने की आशा कैसे कोई कर सकता था? साधू का हृदय तो भस्म हो चुका है, वह तो जगत के व्यापारों के प्रति उदासीन है, वह तो मानव जीवन के इस 'क्षण', इस 'पल' से विमुख हो चुका है! किन्तु हमे पता चला कि कभी-कभी भस्म मे दबी चिनगारी भी रह जाती है।

जब हमने अपने कमरे में बिस्तर जमाया, तो सामने पद्म के वृक्ष पर हमने चमकीले पखो वाला बाज का एक जोडा देखा। इन्होंने अत्यन्त कर्कश स्वर मे अपने आवास-स्थान मे अपरिचित जनों के डेरे डालने का तीव्र विरोध किया। हमने देखा कि बँगले की चोटी पर टीन के नीचे इन्होंने अपना घोंसला बना रक्खा था, इसी कारण वे इतनी आशका से चीं-ची करके अपना विरोध प्रकट कर रहे थे! उनकी तेज आँखें चमक रही थी, और उनकी चोंच कुटिल-क्रूर मालूम होती थी। फिर पद्म के पेड़ से वह आकाश मे कूदे और अपने तीखे स्वर की रेखाएँ शून्य मे बनाते हुए दूर उड गए।

अनेक स्वर हमारे बाग के पेडो में से निकलते रहते हैं। हम शान्ति के प्रतीक कपोत का गम्भीर, गहरा स्वर दिन-रात सुनते हैं। यह वायु को काट कर पर्वत, घाटियो और वनों में फैल जाता है। इतना गहरा यह स्वर है कि इसकी दूर तक फैलती लहरें नगर और बस्तियो तक पहुँचती हैं। कोयल की कुहू-कुहू भी बडे आश्चर्य से हम इस पर्वत-खण्ड मे सुनते हैं। इस स्वर को सुन कर हमे लू से झुलसे नगरों और अमराइयो की याद आती है, और रीतिकालीन कवियो की पंक्तियाँ स्मृति मे घूम जाती हैं। हम गल-गल का कर्कश, कर्ण-कटु शब्द सुनते है, जिसने अपना घोंसला ऊपर के खण्ड मे बना रक्खा है, और जिसकी नोक-झोंक बाज के जोड़े से चला करती है। दोपहर मे जब बन्दरो की टोली खेतो और बागो मे किसी पिन्डारी दल के समान घुसती है, तब भारी कोलाहल से वातावरण भर जाता है। कुत्ते भूँकते हैं, माली और चौकीदार चीखते हैं, और जब इन आतताई छापामारो को भगा दिया जाता है, तब फिर नीरवता यहाँ छा जाती है।

हमारे घर के एक ओर झिमतौला और 'स्नो-व्यू' हैं, दूसरी ओर पाताल देवी। दूर पर कोसी की झिलमिल रेखा दिखाई पडती है। और भी अनेक पर्वत-शिखर आकाश मे अपने उन्नत शिखर चतुर्दिक् उठाए खड़े हैं: बिन्दसर, मुक्तेश्वर, चीना पीक, शाही देवी, और सामने ही

खुरदुरे बालो के किसी भीमकाय वन-पशु के समान आकार वाली शितौली की पहाड़ी।

जब बादल आते है और चारों ओर धुन्ध छा जाता है, तो हम मानो संपूर्ण जग से कट जाते है। कुहासा हमे इस प्रकार घेर लेता है, मानो हम अधर में लटके हो और हमारा घर किसी ऊँचे पेड अथवा पर्वत पर टिका, डगमग, चील या बाज का घोंसला हो। ऐसे अवसर पर अपने प्रिय नगरों और मैदानो के लिए, सदियों से पोषित मानवी सभ्यता के लिए, हमारा मन छटपटाने लगता है, और किसी भारी, अव्यक्त, दबी व्यथा के भार से हमारा मन व्याकुल हो उठता है।

(९)

'मालजू'

हमारे घर के चौकीदार पंडित शिवदत्त को सभी 'मालजू' कहते हैं। इसका कारण यही है कि न केवल वह इस घर की देख-भाल करते हैं, वरन् बगीचे की भी। कम-से-कम गर्मी मे वे इसे सीचते तो हैं ही। हर पत्ती और पौधे की बडे यत्न से वह चिन्ता रखते है, हर चीज की वह बडी सतर्कता से रखवाली करते हैं।

'मालजू' एक विशेष व्यक्तित्व रखते है। वह अखरोट अथवा बादाम की भाँति है, ऊपर से कठोर और अनाकर्षक, किन्तु अन्यथा अत्यन्त कोमल। उनकी कठोरता शायद रक्षा के कवच के समान है। अकेले ही वह इस निर्जन मे रहते हैं। उनके साथी-सगी केवल दो बाज पक्षी है। सभी जानते है कि सेठ जी उदासी हो रहे है। यदि 'मालजू' निरन्तर भूँक-भूँक कर लोगो को भयभीत न करे, तो शायद यहाँ एक भी कंकड-पत्थर न बचे। 'मालजू' बडे स्वामि-भक्त है, वह किसी को अपने मालिक की एक पत्ती तक भी छूने नही देते।

तिमंजिले पर, बाज के घोंसले से भी ऊपर, मालगाड़ी के डिब्बों के समान टीन की बनी कोठरियों में, 'मालजू' रहते हैं। दोपहर को, जब बन्दरो का खेतो और बागो पर हमला होता है, अपनी अगली कोठरी के आगे छत पर बैठ कर 'मालजू' हुक्का पीते है, और चारों ओर कड़ी, सशक, सतर्क दृष्टि रखते है। उस समय यही मालूम होता है कि अपने ऊँचे मचान से वह पिंडारियो के आक्रमण की आशंका से गाँव की रक्षा के लिए आसमान पर इतनी कड़ी दृष्टि रक्खे हुए है। बन्दरों के आते ही एक भारी तहलका मच जाता है, चतुर्दिक् खेती मे कोहराम मचता है, और अनेक कठोर, कर्कश स्वर वन की शान्ति को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं।

'मालजू' हमेशा ही ऊँचे स्वर से बोलते है। वह कुछ कम सुनते है। जब हमने पहली बार उनकी बातचीत सुनी, हमारी तबीयत हुई कि वापस लौट जायँ। हम सामान लदवा कर यहाँ पहुँचे; बड़ी भारी चढाई करके हम आए थे। कुलियो को हमने एक-एक रुपया दिया; वह दो-दो रुपया माँग रहे थे। बड़े संघर्ष के बाद डेढ-डेढ रुपया देकर उन्हें विदा किया। 'मालजू' नीचे पानी लेने चले गए थे। हम सामान एक ओर रख कर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। जब वे घंटे भर बाद लौटे, तो बोले, "मुझे तो कोई खबर नही है।" हमने सेठ जी का पत्र उन्हे दिया। तब उन्होने कमरा खोला। फिर उन्होने हमे पानी, लालटेन और मिट्टी का तेल आदि दिया। किन्तु उनके स्वर मे ऐसा कुछ कठोर और कर्कश था कि हम वापस लौट जाने की सोचने लगे। किन्तु यह भी उतना आसान न था!

हमने 'मालजू' से कहा भी : "मन नही लगेगा, तो दो-एक दिन में लौट जायँगे!" इस बात से शायद वह कुछ परेशान भी हुए थे। हम समझते हैं कि अधिकतर ऐसे स्थानो पर दूसरी ही कोटि के लोग आते है, जो निरन्तर लड़ते और झगड़ते है, किन्तु हम तो सब अस्त्र डाल कर एक ओर खड़े थे।

'मालजू' बोले, "यह तो सराय है। यहाँ लोग आते-जाते रहते है। मुझे किसी बात का लोभ नही है। मैं तो साधू-सन्तो की सेवा करना चाहता हूँ।"

'मालजू' को यह पसन्द न आया कि साधू के कमरे मे 'असाधु' को ठहरावे! किन्तु क्या करते? मालिक का हुक्म था।

लोभ उन्हे सचमुच रत्ती भर न था। मिट्टी के तेल के पैसे भी उन्होने हमसे न लिए। बोले, "जब तुम्हें मिल जाय, तेल ही लौटा देना।"

विचित्र ही व्यक्ति 'मालजू' थे। जितना ही अधिक हमने उन्हें पहिचाना, उतना ही उनके प्रति मन मे आदर बढा। मनुष्यो से वह हीरा थे। अनेक कष्टो को झेलते हुए, सतत् ईमानदारी से, उच्च आदर्शों का पालन करते हुएं, वे जीवन बिता रहे थे। उनका वेतन केवल १५ रुपए था। ९ रुपए पर किसी जमाने में उनकी नियुक्ति हुई थी। वह कभी-कभी कहते थे कि कैसे इतने कम वेतन से काम चले? राशन वह अपने गाँव से ले आते थे, नही तो जीना असम्भव था। फिर भी अनवरत कर्त्तव्य-पालन करते हुए और जीवन को साधना बना कर 'मालजू' समय काट रहे थे। उनका हृदय इतना विशाल था कि जब वे गाँव गए, तो हमारे लिए चावल आदि लाए। बोले, "इस चावल को खाकर देखो, कितना मीठा है?"

'मालजू' को अकसर अपने गाँव और खेतो की याद आती थी। लगभग दो बरस पहले वह उधर गए थे। वहाँ उनकी पत्नी थी, बच्चे थे। वही सब खेती-बारी सम्हालते थे, लेकिन उससे गुजर चलना दूभर हो गया था। तभी 'मालजू' नौकरी की तलाश मे निकले थे। बडा लड़का तो खेत देखता है; छोटा पढ रहा है। अब वह पाँचवी कक्षा में पहुँचा है। मालजू उसे अपने पास रख कर आगे पढाना चाहते है। गाँव मे पढाई भी और आगे नही हो सकती। फिर उनका मन 'लक्खी' कुत्ते के अतिरिक्त भी किसी का साथ चाहता है। 'सराय' मे आते-जाते मुसाफिरो को छोड़ बरसो उन्हे मनुष्य का सपर्क नही मिलता। यह सच

है कि पास-पड़ोस के सभी लोग उन्हे जानते है, उनका आदर करते हैं, दवा-दारू की आवश्यकता होने पर उन्हे ही हमेशा याद करते है। फिर भी 'मालजू' उदासी होने के बावजूद भी शायद कभी-कभी अपने अधिक समीप किसी को देखना चाहते होगे।

हमने अकसर सुना है, लोग कहते है : "इस देश का कोई भविष्य नही। यहाँ चोरी और बेईमानी हर व्यक्ति की नस-नस मे व्याप गई है !" हम सोचते हैं, यह भूमि सोना उगलती है, लेकिन यहाँ की व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि उसके स्पर्श से सोना भी मिट्टी हो जाता है !

हम तो कभी इतने वर्ष पर्यन्त इस बँगले की ऊँची छत पर बैठ कर दूसरे के माल की रखवाली करते हुए व्यतीत न कर सकते थे। हम मोह के बन्धन नही तोड सके है, और न शायद तोड सकें। हमारा जीवन-दर्शन हमे मोह के बन्धन बढाना सिखाता है, यहाँ तक कि पूरा विश्व ही इस पाश मे समा जाये !

फिर भी हमे स्वीकार करना पडता है कि यद्यपि हमने जीवन मे अनेक उच्च कोटि के विचारक, कवि, शिल्पी और शिक्षक देखे है, 'मालजू' ऐसा व्यक्तित्व हमने कम ही पाया है। किन्तु हमारे इस वशाल देश मे अगणित 'मालजू' चतुर्दिक् अनादृत, अज्ञात पडे है।

(१०)

चाय की दूकान

नरायन तिवारी देवाल की एक दूकान पर हम चाय पीने के लिए रुकते है। यहाँ लगभग हर दूसरी दूकान चाय की दुकान है। चाहे वह सब्जी की दुकान हो, चाहे आटे-दाल और मसालो की, एक ओर भट्टी पर भारी-भरकम काली, कुरूप कोयल-सी चाय की केटली यहाँ जरूर

खौलती रहती है। यद्यपि वह काली और कुरूप है, उसका सगीत मन को मोहता है! यहाँ हर व्यक्ति पल भर विश्राम करने के लिए रुकता है, और चाय पीकर अपनी प्यास बुझाता है। चाहे वह कुली हो, चाहे लकडी, सब्जी या काफल बेचने वाला। यहाँ का अधिकाश पुरुषत्व युद्ध के दावानल मे जल कर भस्म हो चुका है, और जो शेष है, वह अनेक नए रीति-रग अपना चुका है।

पहाड़ मे आपको पग-पग पर चाय की दूकाने मिलती है। यहाँ मैदानों की तरह हालत नही है कि मीलो भटकिए, तब कही शायद ठडा पानी पीने को मिल जाए। यहाँ तो लगभग हर दूकान पर आप किसी-न-किसी को चाय का गिलास मुँह से लगाए पायेगे।

इस छोटे से बाजार और इन चाय की दूकानो से हमे लगता है कि न जाने कहाँ मध्य एशिया के अन्तर्देश मे हम पहुँच कर खो गए है। सीढी के समान ऊपर को चढता तग रास्ता, बीच सड़क पर टहलते और मटर-गश्ती करते बच्चे, मुर्गियाँ और कुत्ते, भारी बोझ से दोहरी कमर किए डोटियाल, काले लहँगे और ओढ़नियाँ पहने चपटी नाको और तिरछी आँखो वाली स्त्रियाँ, फटे, मलिन वस्त्र पहिने पुरुष।

इन दूकानो, मनुष्यो, पगडंडियो, बन और पर्वतों को देख कर हमे लगता है कि विज्ञान के जादू ने हमे पहाड़ों के किसी गहन अन्तर्प्रदेश मे उड़ा कर पहुँचा दिया है, जो तिब्बत के बीहड़ पठारो, लदाख की घाटियो, भूटान और शिकिम के धागे के समान पतले, भयानक रास्तो के अधिक निकट है, और जिस भारत को हमने सदा से गगा-यमुना के कछारो में देखा है, उससे सर्वथा भिन्न है! किन्तु हमने अपने देश का अभी देखा ही क्या है? कितनी चित्र-विचित्रित, बहुमुखी सस्कृति हमारे इस महान देश की है? इसके भाल पर हिमालय का शुभ्र, श्वेत किरीट है; इसके माथे पर काश्मीर का केसर, कुकुम तिलक है; इसकी गोद में अनेक नदियाँ अठखेलियाँ करती हैं, जिनके किनारे कितनी जातियो और संस्कृतियो का उदय और अवसान हुआ। इसके चरणों

मे हिन्द महासागर लोटता है और अनवरत अपनी अर्चना अर्पण करता है। यहाँ भी अनेक जातियों और संस्कृतियों के सगम इतिहास देख चुका है; इन्होंने दूर-दूर देशो तक सागर को मथ कर भारतीय सस्कृति का संदेश पहुँचाया था; रोम, ईरान, सुवर्ण और यव द्वीप, चीन और काम्बोज तक इन्होने अपने देश की धवल कीर्ति-पताका फहराई थी।

चाय की दूकान पर वैठे-वैठे और चाय के घूंट भरते हुए यही विचार हमारे मस्तिष्क मे चक्कर काट रहे थे। यह निर्जन वन-प्रदेश, जहाँ जीवन की इतनी धीमी गति है, हमारे भारत के उत्तरीय का ही एक छोर है। यह छोर भेड़ों के ऊन से, अनेक रग-विरगे तागों से वुना है, और इसमे हमारे लिए अकथनीय आकर्षण है।

यह चाय भी, जो हम पी रहे थे, कुछ विचित्र स्वाद रखती है। इस चाय मे बैरीनाग के पर्वत का प्राण-रस सचित है, और मानो हर घूंट हमे सूचित करता है कि यह पर्वत देश है, यहाँ चीड़ और देवदार के उन्नत तरु-शिखर सतरियो के समान तुम्हारी रक्षा करते हैं; यही वह भूमि है, जहाँ पाण्डवो ने अपनी अन्तिम यात्रा की थी, इसी आकाश-मार्ग से मातलि अर्जुन को इन्द्रलोक ले गए थे।

हम चाय की दूकान के पिछले खण्ड में वैठे शिमतोला का शिखर देख रहे थे। यही उदय शकर अपना सस्कृति-केन्द्र खोलना चाहते थे, किन्तु धन के अभाव से लाचार थे। शिमतोला की चोटी से आप अनन्त, अनादि हिम-राशि के शृग देख सकते है।

दूकान मे हम तीन व्यक्ति थे। एक हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, दूसरे अल्मोडे के एक वडे, कॉंग्रेसी वकील, और तीसरे हम। हमे कुछ आश्चर्य हुआ, जव वे लोग इस दूकान मे चाय पीने के लिए रुके। वकील साहव ने कहा, "इस दूकान की चाय अच्छी होती है!" उपन्यासकार वोले · "यह चाय मुझे वहुत अच्छी लगती है। इसमे कुछ विशेप रस मिलता है!" चाय के अनुरूप ही उन्होने अपना मोटा सिगार न जला कर, वकील साहव से एक वीड़ी मांग कर सुलगाई। फिर चाय वाले

से आलुओं की माँग हुई। हमने चाय के गिलास को रूमाल से लपेटा, किन्तु हमारे उपन्यासकार बन्धु ने अपना अधिक गहरा अनुभव प्रकट करते हुए एक दूसरा खाली गिलास माँगा, और उसके अन्दर गरम गिलास को रख कर चाय पीने लगे।

हम सभी ने फिर एक बार सिर हिला कर इस चाय की दाद दी : "अवश्य ही इस चाय मे कुछ है, जो हमे कही अन्यत्र नही मिलता!"

यह विचित्र कुछ था—हमारी भ्रमण की आकाक्षा, नए नगर और प्रदेश देखने की दुर्दमनीय लालसा, नएँ जीवन के अनुभव का आग्रह। शायद यही सब चाय के उन घूँटों के साथ हम अनजाने मे ही पी रहे थे।

(११)

हमारे पड़ोसी

हमारे अनेक पड़ोसी हैं। वनवासी लकड़ी और काफल बीनने वाले, जो अथक परिश्रम करके दो-चार आने की कमाई करने के लिए शहर की ओर अपने बोझे ले जाते है, सब्जी और फल वाले जो नित्य-प्रति हमारे घर के सामने से निकलते है; क्षय रोग के रोगी, जो चुगी द्वारा बनवाए घरों मे स्वास्थ्य-लाभ की लालसा से रहते है, और स्वास्थ्य-लाभ करते भी हैं; अनेक दूकानदार जिन्हे हम अच्छी तरह से पहचान गए है; 'पधान जू' जिनकी दूध और दही की प्रसिद्ध दूकान है; अम्बादत्त जी जो पोस्टमास्टर भी है, और जिनकी घी, आटे-दाल आदि की बस्ती मे सबसे बडी दूकान है, अकेले इन्होने ही अभी तक नरायन तिवारी देवालय पर अपनी दूकान पर बिजली लगवाई है; रात को 'पधानजू' की दूकान का गैस का लैम्प इनकी बिजली की सफल प्रतिद्वद्विता करता है, और घाटी की अनेक जुगनू के समान टिमटिम करती बस्तियों के बीच यह दोनों किन्ही जुड़वाँ नक्षत्रो सी जगमग करती हैं!

हमारे पडोसी सुप्रसिद्ध कलाकार ब्रुस्टर भी है। यह 'स्नो-व्यू' नाम की पहाडी पर रहते हैं, और उन्होने अनेक अद्‌भुत् चित्रो मे हिमालय का सौन्दर्य अकित किया है। इन्होने सभी ऋतुओ मे हिमालय का रूप-शृगार देखा है, और विचित्र रगों में उसे चित्रित किया है। यह मानव समाज से कट कर अलग ही कला-साधना कर रहे हैं, और जिस रूपमयी प्रकृति का अकन वह अपने चित्रो में करते है, वह मानव के सघर्षो के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन है। किन्तु बातचीत मे ब्रुस्टर यह प्रकट करते है कि जो समाज उनकी यह एकान्त-साधना संभव करता है, उसके सघर्षो के प्रति वह पूर्ण रूप से उदासीन नही है!

अनेक साधू भी हमारे पडोस मे रहते है, और लगभग नित्य-प्रति ही नगर को आते-जाते हमे उनके दर्शन होते है। इनमे विशेष उल्लेखनीय बाबा रामदास और सौरेनसेन है। बाबा रामदास पजाब विश्वविद्यालय के एम० ए० है और किसी समय पहले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और बाद मे 'डॉन' के उप-सम्पादक थे। आतकवादी सस्थाओ से भी आपका संबंध रहा था। अब आप जीवन से विमुख होकर कषार देवी की कुटी मे रहते है, किन्तु अब भी समाचार-पत्र आदि पढ़ते रहते है, जिससे यह स्पष्ट है कि जीवन के व्यापारो के प्रति अब भी आप कुछ-न-कुछ उत्सुकता रखते हैं।

सोरेनसेन डच हैं और किसी समय इजिनियर थे। अब आप हिन्दू सन्यासी हो गए हैं, गेरुआ पहनते हैं और नगे पैर रहते हैं। आप भी काली माटी पहाड़ पर कषार देवी के निकट रहते है। इन्होने अपने सपूर्ण असफल जीवन का स्नेह एक कुत्ते पर सचित किया है, जिसे चूमते-चाटते हुए आप बाजार आते-जाते है। इसी से हम समझते है कि साधु सोरेनसेन जीवन के प्रति सपूर्ण रूप से उदासी नही हुए है। उन्होने मानव को तज कर पशु को अपना सगी बनाया है, जिसमे यदि मनुष्य की प्रतिभा और चतुरता नही है, तो मनुष्य के समान स्नेह रखने की क्षमता अवश्य है!

हमारे सबसे विचित्र पड़ोसी मेजर रामदास है। शायद यह कभी I. N. A. में रहे थे, किन्तु इसका विश्वास करना कठिन है। आपकी मूँछे पतली और तराशी हुई है, जो सेना के अफ़सरो और सिनेमा के अभिनेताओ का आपको स्मरण दिलाती है। आप सिर पर एक फैल्ट हैट जमाए और हाथ मे बैग लिए बड़ी फुर्ती से इधर-उधर आते-जाते दिखाई पड़ते हैं। किन्तु किस काम मे आप इतने व्यस्त है, यह कोई नही जानता। आप बड़े ऊँचे स्वर मे जोर-जोर से और बड़ी तेजी से बातें करते हैं, और किसी भी राहगीर को अपने अद्भुत कारनामे सुनाने के लिए तैयार रहते हैं। श्वेत रग के व्यक्तियो के सामने आप अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए विशेष उत्सुक रहते है।

आपकी बातो से मालूम होता है कि किसी समय कलकत्ता मे आप बड़े धन की शतरज मे खिलाड़ी रह चुके है। आपका नाम "Indian Law Reporter" मे दर्ज भी है। आप किसी फर्म के मैनेजर थे। उसका दिवाला निकलने के कुछ पूर्व ही आप अल्मोड़े मे आ जमे। यहाँ प्रचार हुआ कि बड़े हीरे-जवाहरात लेकर मेजर रामदास अल्मोड़ा आए हैं। यह भी मालूम हुआ कि आप सभी बड़े-बड़े सेठो की कोठियाँ खरीदने को तैयार हैं, किन्तु बहुत भटकने के बाद रामनगर के सेठो के इस बँगले के पड़ोस मे ही आपने एक उजाड़-खण्ड आठ हज़ार मे खरीद डाला, और दिन-रात बकरियो, गउओ और लकड़ी बीनने वालियों से उसकी रक्षा करने मे अपना जीवन व्यतीत करते है। अपनी बकरियों को सेठ के अहाते में हाँक आप बड़े ऊँचे स्वर मे अपने इलाक़े मे भूले-भटकों का गालियो से स्वागत करते हैं। आपके क्षेत्र मे एक सोता है। किसी जमाने में पास-पड़ोस के लोग इससे पानी लेते थे। पानी इसमे गर्मियों मे अवश्य कम हो जाता है, किन्तु इस सोते के द्वार पर ताला लगा कर आप सेठ के हाते से अपने नौकर को पानी लाने का आदेश देते है। कौन जाने, आप सोचते हो, इसी प्रकार आपका कुछ अधिकार सेठ के बँगले [illegible]र हो जाय।

आपने अल्मोड़ा आते ही बड़ा तेज प्रचार किया कि आपको पत्थरों को विशेष पहचान है, और कुमायूं के पहाड़ अनेक बहुमूल्य पदार्थो की खान हैं। पडित नेहरू का खाली जाते समय आपने स्वागत किया, उन्हे चाय पिलाई और अपने पत्थर दिखाए। पडित नेहरू ने यू० पी० सरकार को एक पत्र लिख दिया कि मेजर रामदास से वह कुमायूं के क्षेत्र का निरीक्षण करवाएँ और उसकी सम्भावनाओ की परीक्षा करवाएँ। इसके बाद मेजर साहब अनेक बार लखनऊ दौड़े, किन्तु यू० पी० सरकार के कान पर जूं न रेंगी। अब आप पथिकों को रास्ते में रोक कर अपने अनुभवो की रामकहानी सुनाया करते है, और सभी के प्रति आपकी कुछ-न-कुछ शिकायत है।

जब रिमझिम बरसात शुरू होती है, मेजर साहब का मन-मयूर नाच उठता है, और आप पैरो मे घुँघरू बाँध कर तबले पर थपकी दे अपने मन-रूपी मयूर का साथ देते है। ऊपर सड़क पर गाँवो से आते-जाते पथिको का जमघट हो जाता है, और उनमें से कुछ स्वयं भी नाच मे आपका साथ देते हैं। दर्शको के प्रदर्शन मे अन-नृत्य का प्रतिबिम्ब हम देखते है। मेजर साहब बताते हैं कि उदय शकर की पूरी टोली को आपने अकेले ही घूंसो की प्रतिद्वद्विता मे नीचा दिखाया था।

इस सब व्यापार मे यह समझ मे नही आता कि आप कब और कहाँ I. N. A. मे रहे और उसके मेजर बने। हम समझते हैं, शायद कलकत्ता मे व्यवसाय खत्म होने के बाद आपने I. N. A. से सम्पर्क जोड़ा और मेजरी का खिताब लेकर वापस देश को लौटे।

जो भी हो, इसमे सन्देह की गुंजाइश नही कि मेजर रामदास बड़े मेधावी और प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं, और आपकी प्रतिभा का कुछ-न-कुछ उपयोग कुमायूं प्रदेश अवश्य कर सकता है।

(१२)

स्वप्न और सत्य

नरेन्द्र ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से इतिहास में एम० ए० पास करके अल्मोड़े मे ही आसन जमाने की ठानी। उसके हृदय में देश-सेवा की उमंग थी, बड़े-बड़े मंसूबे थे। जब वह इलाहाबाद में पढ़ता था, अल्मोड़े का चित्र-विचित्रित जीवन उसकी कल्पना मे सदा घूमा करता था। Bright End Corner से नरायन तेवाड़ी देवाल, और देवाल से फिर Bright End Corner ! गर्मी के दिनो मे बसो की अविराम भन्-भन्, घुन्-घुन् और बस-स्टेशन पर भीषण कोहराम। सिरो पर भारी पत्थरों के बोझ लटकाए ढोटियाल। सर्वत्र ही गुड़, तेल, लीसा या अन्य पदार्थों के बोझे सिरो पर लादे ढोटियाल, मानो अल्मोड़ा ही ढोटी का एक विशाल प्रतिरूप बन गया हो! उसे याद आती थी हिमालय के उत्तुंग शिखरो की, जिन्हे उसने अकसर सर्किट हाउस से, शिमतौला से, कषार देवी से, और एकाध बार बिन्दसर से भी देखा था। उसे याद आती थी चाय की दूकानो की, जहाँ निरन्तर उनका अड्डा जमता था, और अपने घर के दाड़िम के पेड़ की, जिसमे छोटे-छोटे लाल फूल ग्रीष्म मे उगते थे। अपनी मा की, उसके श्रम-व्यस्त, स्नेह-सिक्त मुख की; न जाने कितना मोह इस माँ के हृदय मे अपनी सन्तान के प्रति छिपा पड़ा था, यद्यपि वह अकसर उनसे झुंझलाया ही करती थी। उसकी छोटी-छोटी बहिने सिर पर छोटे-छोटे बर्तनो मे पानी भर कर ले आती थी, ताकि उनके शिक्षित, परदेसी भाई को, जो दूर देश जाकर ज्ञान सचित कर रहा था, कोई कष्ट न हो। इन स्मृतियो का तीव्र वार तलवार की तरह उसके हृदय पर होता था, और उसकी पीड़ा से वह तड़प उठता था।

नरेन्द्र का अतीत जीवन भी एक विचित्र कहानी था। वह आतंक-

वादियो के साथ रहा था, कांग्रेस मे रहा था, जेल गया था। स्कूल के दिनो में वह और उसी के समान आधे दर्जन नवयुवक सहपाठी गुप्त सभाएँ किया करते, और कचहरी को उड़ाने की अथवा जिलाधीश के बँगले पर बम दागने की मन्त्रणा करते। उन्होने बम बनाने की क्रिया सीखने की कोशिश की और देश भर मे व्याप्त आतंकवादी आन्दोलन से संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। नरेन्द्र अल्मोड़े का प्रतिनिधि होकर कानपुर मे होने वाले एक सम्मेलन मे पहुँचा। वहाँ अजीब ही परिस्थिति हुई। नेताओ ने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए आतंकवाद के मार्ग को ही गलत बताया। उन्होने प्रतिनिधियो से अपील की कि वे देश के व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन से घनिष्ठ संबंध बनाएँ और उस पर अन्दर से प्रभाव डाल कर उसे क्रान्तिकारी दिशा देने की कोशिश करें। इस रिपोर्ट पर कई दिन तक गर्म बहसे हुई, जिनमे नरेन्द्र ने भी भाग लिया, किन्तु अन्त मे छोटे-मोटे संशोधनो के बाद रिपोर्ट स्वीकार हो गई। अल्मोड़ा लौट कर नरेन्द्र को वही संघर्ष अपने साथियो के साथ करना पड़ा, जिसमे वह स्वयं कानपुर मे हार चुका था। इस प्रकार अल्मोड़े का क्रान्तिकारी आन्दोलन कांग्रेस की धारा मे जाकर मिला और नरेन्द्र की पुलिस से सन् '४२ मे मुठभेड हुई और उसे कठिन कारावास दण्ड मिला।

इलाहाबाद पढ़ते हुए बचपन की यही सब स्मृतियाँ नरेन्द्र को विकल किया करती थी। उसने लौट कर अपने इसी पिछड़े, गरीब, श्रम और जीवन-संघर्ष से त्रस्त प्रदेश की सेवा करने की ठानी। यहाँ कितने वेग से क्रान्तिकारी आन्दोलन उठ सकता था। सबसे पिछड़ा और पिसा समाज का अंग यहाँ की स्त्रियाँ थी। पीसना, कूटना, पानी भरना और नीचे के वर्गो मे खेत जोतना, बोना, लकड़ी काटना, जंगल से घास-फूस लाना। पहाड़ के समान बोझा अपने सिर पर वे ढोती थी। इसके अतिरिक्त और भी वर्ग थे जिनका संगठन करना होगा—ढोटियाल, खेतिहर मजदूर, किसान, बिजलीघर के मजदूर, मेहतर, स्कूलो के शिक्षक, विद्यार्थी, क्लर्क, मोटर ड्राइवर, क्लीनर, आदि।

कितनी उमंग और उल्लास लेकर नरेन्द्र अल्मोड़ा लौटा था। वह इसी भूमि का कण था, इसी हाड़-मांस और रक्त से उसका जीवन बना था। यहाँ अभी तक अर्द्ध-सामन्ती व्यवस्था का साम्राज्य था। यहाँ ज्ञान और विज्ञान का आलोक भी कम ही फैला था। न यहाँ सड़कें थीं, न पानी। बीहड़ अन्तर्देश मे नर-भक्षक तक स्वच्छन्द विचरते थे, और मानो मैदानो की सभ्यता को यहाँ के चीड़ के बनो के रक्त-स्राव सचित करने के अतिरिक्त और कोई फुरसत ही नही थी।

घर का हाल ठीक न था। पिता बूढे हो चले थे। छोटे भाई-बहिन शिक्षा पा रहे थे। चारो ओर से जोर पड़ने लगा। कुछ नौकरी करो! किन्तु नौकरी मिलना आसान न था। सभी जगह उसके विरुद्ध रजिस्टर में रिमार्क लगा था।

नरेन्द्र ने देखा, अल्मोड़े का मध्य वर्ग भयानक गुट-बदियो मे फँसा है। यह जोशी हैं, वह खुल्बे-जोशी हैं। यह राजपूत हैं, वह शाह है। इनकी बहन की शादी नीचे के कुल मे हुई थी, उनकी विधवा लड़की ने दूसरा विवाह कर लिया था। माना कि वह लखनऊ मे नर्स थी, और उसने अपना कलंकित मुँह फिर कभी अल्मोड़े को नही दिखाया था, किन्तु क्या इन बातो को भुला देना कभी सभव है? किसी ने किसी की एक इच जमीन दबा ली थी, किसी ने दूसरे के पेड से लकड़ी चुरा ली थी, किसी ने घसियारिन से प्रेम किया था, किसी के घर की स्त्रियाँ पर्दा न करती थी। हजार बातें थी, जो मनो मे ग्रन्थियाँ बना चुकी थी। नरेन्द्र सोचता, क्या इन ग्रन्थियो को कभी खोला भी जा सकता है? इन्हे सुलझाना भागीरथ का काम था। इन ग्रन्थियो को तो क्रान्ति की तेज धार ही काट सकेगी।

अल्मोड़े के पेट मे बात नही पचती। कुछ भी हुआ हो, तुरन्त बन की आग की तरह बात पूरे अल्मोड़े मे फैल जाती है। यह अल्मोड़े की सुप्रसिद्ध फुसफुस और गपबाजी है। मान लीजिए, मेजर रामसिंह का कुत्ता पागल हो गया, तो क्रमश. इस समाचार का शाम तक कुछ ऐसा

विराट रूप हो जायगा : मेजर साहब को उनके पड़ोस के पागल कुत्ते ने काट खाया, उन्हे ही नही, उनकी पत्नी, बच्चो, बकरी और नौकर को भी। रास्ते मे वह कुत्ता सभी को काटता हुआ गया है। देवाल से से खत्याड़ी तक के सभी कुत्ते और आदमी उसके विष के शिकार हुए है !

इस गपबाजी का एक अड्डा अल्मोड़े का 'बार' भी है। अल्मोड़े के शिक्षित वर्ग का यह मुख्य केन्द्र है। व्यापार, सरकारी नौकरी, शिक्षा और वकालत—शिक्षित वर्ग इनमे सबसे अधिक अन्तिम पेशे मे ही केन्द्रित है। कह सकते हैं कि बेकारी का दूसरा नाम वकालत भी है। 'बार' मे अल्मोड़े के अनेक बेकार लोग जुडते है, और क्योकि वे अधिकतर प्रतिभावान भी है, उनके व्यग की चोट बड़ी तीखी होती है।

देवदा भी वकालत करते है। कभी-कभी तो जरूर ही। सेठ जी भी शौकिया कचहरी जाते हैं, उनका नाम 'बार' के रजिस्टर मे है। मेजर रामसिह भी अकसर वहाँ चक्कर काटते है, और वही अनेक बार मेजर साहब को 'बनाने' की बड़ी-बडी योजनाएँ बनी थी। तात्पर्य यह कि अल्मोडे के सार्वजनिक जीवन की धुरी यह 'बार' है। और अफ़वाहो का बाजार भी यही गर्म होता है।

नरेन्द्र ने अल्मोडा आकर छात्र-सघ मे काम करना शुरू किया। अल्मोडे के अनेक कर्मठ नवयुवक छात्र सघ के सदस्य थे और इनके नेताओ से नरेन्द्र का पूर्व-परिचय था। इन्होने मिल कर नाट्य सघ स्थापित किया और लेखको की गोष्ठी कायम की। अल्मोडे में अद्भुत् काव्य-प्रतिभा है। यहाँ मानो सभी नवयुवक कविता अथवा कहानी लिखते हैं, या नृत्य, सगीत अथवा चित्रकला का अभ्यास करते है। यदि इस प्रतिभा का प्रस्फुटन हो सके, तो देश भर मे इसका मकरन्द फैल जाय।

इसी प्रकार नरेन्द्र सोचता और काम करता था। उसे एक प्रगतिशील कांग्रेसी कार्यकर्त्ता के प्रेस मे नौकरी भी मिल गई थी। काम चल निकला था। उनके नृत्य-नाटको और जनवादी तत्व से भरे गीतो की सर्वत्र धूम

थी। शाम को माल रोड पर घूमते हुए युवक इन गीतो को गाते थे और चाय की दूकानों मे बैठे छात्र-वृन्द इन नाटको और नृत्यो की चर्चा करते थे। पुलिस सतर्क हो रही थी। खुफिया का कर्मचारी कुली का वेश बनाए इन नवयुवको के पीछे चलता और इनके गीत गुनगुनाता था। ऊँचे पदाधिकारी चिन्तित थे कि हिमालय पार करके भेडो की ऊन और कालीन के साथ कम्यूनिज्म तिब्बत से भारत की सीमाओ को पार करके न घुम आवे!

तभी न जाने किधर से हवा के पहले झोके की तरह अफवाह उठी कि नरेन्द्र अल्मोड़े के सुप्रसिद्ध वकील श्री गोविन्द जोशी की लडकी से विवाह करना चाहता है। चाहता भी होगा। यह दोनो परिवार पडोसी थे, और बचपन से ही सब एक-दूसरे को जानते थे। कठिनाई यह थी कि परम्परा के अनुकूल इन दो कुलो मे सबध न हो सकता था। यहाँ चाहे लडकी को कुएँ में धकेल दीजिए, या गाडी भर दहेज दीजिए, किन्तु कुल-मर्यादा भग न होनी चाहिए! अपने से नीचे स्तर में विवाह करने से कुल की नाक कट जाती है। नरेन्द्र ऐसा ही कुछ नकली ब्राह्मण था। जोशी जी अस्सी वर्ष के वृद्ध को कन्या की बाँह थमा सकते थे, बीस-तीस हजार खर्च करके अच्छा कुलीन लडका खरीद सकते थे, जिसे बाद मे विलायत भेज सकते थे, अथवा कांग्रेस को बडा चन्दा देकर अच्छी जगह दिलवा सकते थे। लेकिन यह जो योग्य वर उनके दरवाजे खटखटा रहा था, इसकी ओर देख भी न सकते थे।

अब अल्मोड़े का सपूर्ण सार्वजनिक जीवन इस बहस में लगा कि विवाह हो, या न हो। पुराने कुल इसके विरुद्ध थे। नवयुवक इसके पक्ष मे थे। एक प्रकार का गृह-युद्ध अल्मोडे के नागरिक जीवन मे चल पडा। दल बने, रण-नीति बनी। टुकडियाँ बनी, छापेमार दस्ते बने, कुछ मौखिक मुठभेड़ भी हुई।

नरेन्द्र ने सोचना शुरू किया, यह क्या हो रहा है? किस कार्य के लिए वह यहाँ आया था, क्या भविष्य होगा उसका? उसे लगा कि

आन्दोलन दिशा खो रहा है। उसने अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को आन्दोलन के हित में होम करने का निश्चय किया। उसने सोचा, अपने स्वप्नों की भस्म से ही वह अनेक स्वप्नों को यथार्थ करने वाला भविष्य रच सकेगा। इस प्रकार उसने प्रगतिशील आन्दोलन के विस्तार की दृढ़ नीव यहाँ की बहुसख्यक मध्यम वर्ग की सद्‌भावनाओं पर स्थिर की। उसके स्वप्नो के प्रासाद ढह गए, और मानो केवल यथार्थ का ककाल उसकी आँखो के सामने ताण्डव-नर्तन कर रहा था।

(१२)

ग्वालदम

हम ग्वालदम की ओर जाते हैं। यह कुमायूं और गढवाल के बीच की सीमा है। यही से नन्दा देवी और कामथ का मार्ग है, और त्रिशूल आकाश को अपने विराट शालीन आकार से मानो भर देता है। यहाँ भी तिब्वत के समान अनुभव होता है कि हम विश्व की छत पर बैठे हैं। नीचे पिंडर नदी का स्वच्छ, नीला और तीव्र प्रवाह है, ऊपर त्रिशूल और नन्दा देवी के उत्तु ग शिखर। यही से एक मार्ग तिब्वत की ओर गया है, जहाँ मंडियों मे भूटिया लोग लामाओं को बहुमूल्य कपड़े और नमक आदि अन्य पदार्थ सुहागे और ऊन के बदले देते है। यही मार्ग बद्रीनाथ और केदारनाथ को भी गया है। यहाँ आप बीहड़ पर्वतों के बीचोबीच अपने को पाते हैं। यहाँ रीछ और नर-भक्षक विचरते है और गहन जंगलो मे अकेले घूमना आपत्ति से खाली नही है। यहाँ हिमालय अपनी अनुपम रूप-राशि प्रकट करता है, और हम उसके अत्यन्त समीप अपने को पाते हैं।

सोमेश्वर की घाटी पार करके, कौसानी होते हुए हम कत्यूर के हृदय वैजनाथ पहुँचते है। सोमेश्वर के हरे, लहलहाते धान के खेत, पहाड़ियाँ, कोसी की अविकल धारा हमे वरवस काश्मीर की याद दिलाते

है। इसी घाटी को विकसित करके दूसरा स्विटजरलैण्ड हम बना सकते थे। कौसानी मे हम कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म-स्थान देखते हैं। यहाँ अब एक दर्जी की दूकान है, और दाडिम का एकाकी वृक्ष ही इस घर के कवि का जन्म-स्थान होने का एकमात्र चिह्न है। हम समझते हैं कि इस स्थान को राष्ट्र की सपत्ति बनना चाहिए और यहाँ कवि पन्त से सबंधित साहित्य का सग्रहालय होना चाहिए, जिसमे पन्त जी के पत्र, रचनाओ की प्रथम आवृत्ति, पाडुलिपि आदि हो।

कौसानी से हम कत्यूर की घाटी मे उतरते है। यह स्थान कत्यूरियों की प्राचीन राजधानी था। यहाँ अनेक टूटे प्राचीन मदिर और मूर्त्तियाँ है, जिनका काल कुशान और गुप्त सम्राटो या उनसे भी पहले का हो सकता है। बैजनाथ के मदिर तीन ओर से जल की धारा से घिरे है। उनकी स्थापत्य-कला अपूर्व और अनुपम है। यही कला हम सोमेश्वर और कटारमल के मदिरो मे भी देखते हैं, और इसी का अनुकरण सारनाथ के आधुनिक मन्दिर और नवीन भारतीय स्थापत्य-कला मे हो रहा है।

चतुर्दिक् पर्वत-मालाओं से घिरा यह कत्यूर का हृदय गरुड़ और बैजनाथ है। यही से पूर्वकाल मे इस सपूर्ण पर्वत-प्रदेश का शासन होता था। कहते हैं कि इन सम्राटो का वैभव अद्वितीय था। कौसानी से इनके लिए पीने का पानी आता था। जब इन्हे प्यास लगती थी, तुरन्त स्रोत से पानी हाथों-हाथ नर-रूपी सीढ़ी द्वारा आता था। यह शासक बाद मे इतने क्रूर और अनाचारी हो गए कि उन्होने अपनी डाँडी उठाने वालों के कधो मे छेद करवा दिए थे, ताकि डाँडी को वे फेंक न सकें। कहते है कि हताश होकर डाँडी-वाहक क्रूर, अनाचारी राजा और डाँडी सहित पहाड़ से नीचे कूद गए, और इस प्रकार कत्यूर को इस प्राचीन शासन-दुर्व्यवस्था से नजात मिली। सुना है कि कत्यूर के विकास के लिए अब अमरीकी पूँजी और अमरीकी अफसर यहाँ आयेंगे, और फिर एक बार कत्यूर धन-धान्य से भरा-पूरा होगा, फिर एक बार यहाँ पूर्व की भाँति ही घी और दूध की गगा बहेगी!

वैजनाथ के ध्वंसावशेषो को छोड कर हम ग्वालदम की चढाई शुरू करते है। वागेश्वर का मार्ग दाहिने हाथ छुट जाता है। चाय के वागों के वीच से हम गुज़रते हैं। इन्हे किसी समय अँग्रेजो ने लगाया था, लेकिन अव यह उजाड हो रहे है। इनमे विना और पूँजी लगाए और नए यन्त्र आदि का प्रयोग किए इनका विस्तार संभव नही। हाथ का काम वहुत मँहगा हो रहा है, और चाय भी अच्छी नही उग पाती। मार्ग मे हम इन चाय के पौधो के जंगल देखते है, जो अव विना देख-भाल के निष्फल हो रहे है। चतुर्दिक् हम अपने प्राचीन वैभव के ध्वसावशेष और आज की असहायता और विपन्नता के चिह्न देखते है!

अन्त मे कठिन दस मील की चढाई के वाद देवदार के वनो मे पर्वत-शिखर पर आरूढ ग्वालदम। यहाँ कुमायूँ और गढवाल गले मिलते है। ग्वाल्दम के एक ओर सोमेश्वर और कत्यूर की सुन्दर घाटियाँ हैं, दूसरी ओर गढवाल के वीरान ऊसर पहाड। इन पहाड़ो मे जहाँ-तहाँ वडे-वडे चरागाह हैं, जिनमें वर्षा-काल मे घोडे चरने के लिए छोड दिए जाते हैं। कई एकड़ के क्षेत्रफल मे इन घोडो के लिए घेरे वनाए जाते है, फिर महीनो यह उन्ही मे रहते है। यहाँ का पहनावा, वेश-भूषा सव कत्यूर से भिन्न है। पुरुष, स्त्री, वच्चे—सभी कम्वल का एक वस्त्र कन्धे से पैरो तक वदन मे लपेटे रहते है, और वर्ष भर, वर्षा, शीत, घाम, यही उनका पहनावा होता है। वडा गरीव यह इलाका है। कत्यूर मे व्यापार है, कृषि है, वहता जीवन है; यहाँ केवल चरागाह हैं, भेड, वकरी और टट्टू है। पिन्डर नदी मे स्वादिष्ट मछलियाँ है, प्रचुरता से पानी है, पर्वतो मे भी वहुमूल्य खनिज पदार्थ है। उनके विकास के लिए यदि कुछ अमरीकी पूंजी मिल जाय, तो शायद यहा भी "खुल जा समसम" कहने के समान अलिफलैला की अपूर्व धन-राशि प्राप्त हो सके।

कौसानी से पतले धागे के समान एक पगडडी हरे-भरे खेतो और वृक्षों के वीच से निकलती है। वैजनाथ से यह फैल कर एक हरित द्वीप वन जाती है, लाल, वजर पहाड़ो और नीले जल के वृत्त मे जड़े वहु-

मूल्य पन्ने के समान वह झलमल करती है। फिर एक बार सिमट कर वह महीन धागा बनती है, और पर्वतो के हृदय पर मानो किसी तेज धार के अस्त्र से लकीर-सी खीचती हुई खेतो और वनो को पार करती है, और अन्त मे ग्वालदम के शिखर पर देवदार के पेडो के बन मे खो जाती है। हम अपने पद-चिह्नो और सदियो से आते-जाते यात्रियो के पद-चिह्नो से बनी इस पतले धागे-सी पगडडी को देखते है, और अकथ भावनाओ से हमारा हृदय भर जाता है।

(१४)

चीन से रिपोर्ट

अल्मोड़ा "चाट हाउस" मे बैठे हम चाय पी रहे थे। देवेन्द्र ने कहा, "दुर्गादत्त जी करीब डेढ वर्ष चीन रह कर लौटे है।" हमने उत्सुकता से उस लम्बे-तगडे जवान के मुख की ओर देखा, जो समाजवादी दुनिया मे रह कर हाल मे ही वापस लौटा था। समाचार-पत्रो मे हमने पढा था कि नए चीन मे किसान और मजदूरो का राज कायम हो चुका है, वहाँ घूसखोरी और चोर-बाजारी बन्द हो गई है, उत्पादन बढ रहा है, और अमरीकी साम्राज्यवाद ने यहाँ इस शताब्दी की सबसे बडी चोट खाई है। हम उत्सुकतापूर्वक दुर्गादत्त जी का वर्णन सुनने लगे।

चाट हाउस के बाहर हवाखोरो का ताँता बँधा था—Bright End Corner से देवाल, फिर देवाल से Bright End Corner; बीच मे कही चाय पी लेना, देवाल पर पधान जी के यहाँ, "मानसरोवर" मे, या "ऋतु-संहार" मे, या अल्मोडा होटल मे सती साहब के साथ। चाय और घूमना, घूमना और चाय—यह अल्मोडा के युवा-जगत का सन्ध्या-जीवन है। इतनी अधिक चाय की दूकानो का एक यह फल भी था कि "चाट हाउस" मे हम दो ही व्यक्ति चाय पी रहे थे। दुर्गादत्त जी 'चाट हाउस' के पीर-बवर्ची-भिश्ती-खर थे, यानी वही सामान

खरीदने वाला ग्राहक अल्मोडे मे नही। जिनके पास धन है, उनकी आँखो मे कला का मूल्य नही; जिनके पास कला के प्रति अनुराग है, उनके पास धन नही। इसीलिए भारत मे कला की साधना इतनी कठोर है!

दुर्गादत्त जी कह रहे थे : "मेरे पास एक बहुत बढिया 'ब्रोकेड' है। वह मिसेज बूशी सेन के पास छोड आया हूँ। आपको दिखाऊँगा।"

हम : "जरूर दिखाइएगा। पास मे पैसा कम है। लेकिन सभव हुआ, तो कोई चीज जरूर लेंगे।"

हम सोच रहे थे, आजकल बड़े-बडे लोग चीन की प्रशंसा कर रहे है। यहाँ तक कि दक्षिण-पथी समाजवादी नेताओ को बुरा लगता है। वह कहते हैं कि भारत सरकार "पूजा के लिए एक नया मन्दिर बना रही है।" फिर भी, बडे लोग ऊपरी दृष्टि से ही यथार्थ को देखते हैं। दुर्गादत्त जी ने तो डेढ वर्ष चीनी जनता के अन्दर रह कर सब कुछ देखा है, और हमारी दृष्टि मे उनकी रिपोर्ट अमूल्य है। दुर्गादत्त जी को यथार्थ का अन्तरग ज्ञान है।

(१५)

नए मेघ

अब बरसात आ गई है। आकाश-मे बादल घिर रहे हैं। कल तक कठोर गर्मी पडी थी। चलने मे शरीर से पसीना छूटता था। टंकियों पर कनस्तरो और पानी भरने वालो की भीड लगी रहती थी, और निरन्तर झगडे होते थे। "मेरा कटर आगे था!" ; "तूने मेरा कटर हटा दिया!" आदि। हैलट रिजर्वौयॅर मे एक बूँद पानी न बचा था। कोसी से लारियो मे पानी लाद कर लाया जाता था और टंकियो मे उँडेला जाता था। बादल तो कई दिन से आ रहे थे, लेकिन वह ऊपर ही ऊपर निकल जाते थे। अब कल रात से पानी बराबर बरस रहा है।

अल्मोड़े के निवासी इस प्रथम वर्षा के स्वर से प्रसन्न हैं। मैदानों

में भी, जब पहली वर्षा झुलसी भूमि की प्यास को शान्त करती है, कितना आह्लाद चतुर्दिक् छा जाता है। मेले जुडते है, और रंग-बिरंगे वस्त्र पहिन कर स्त्रियाँ झूला झूलती है और गीत गाती है।

पहाड़ से जगह-जगह सोते फूट निकले हैं। हर दिशा में हम पानी बहने का मधुर स्वर सुनते हैं, जिसके लिए कान अधीर थे। अब पानी का अभाव वर्ष भर के लिए मिट जायगा।

आसमान मे बराबर बादल उमड़ रहे है। यह वर्षा के नए मेघ हैं, जिनका रंग अजन्ता की कृष्ण-वर्णा युवतियों के समान है, या नन्दलाल बोस की आदिवासी बालाओ के चित्रो की याद हरी करता है। पहाडो पर बादलो की छाया पड़ती है और उनका रग गहरा नीला हो जाता है, मानो किसी आधुनिक चित्रकार ने नीली स्याही से पहाड़ बनाए हो। रोरिक और अनागारिक गोविन्द के चित्रो के यह रग है।

आकाश निरन्तर रग बदलता है। काले, सघन मेघ सिर के ऊपर छा जाते है, गंभीर गर्जन करके वे बरसने लगते हैं। फिर आकाश में आलोक होता है, धुल कर आसमान स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। हरे पेड और लाल घर, जो दूर से गुडियों के छोटे-छोटे घरो से लगते हैं, निखर कर चमकने लगते हैं। फिर धुध चतुर्दिक् छा जाता है, मानो पहाड़ गहरे निश्वास ले रहा हो। यह धुध सभी कुछ ढक लेता है। पेड़ों और पहाडो को वह अपने अचल मे छिपा लेता है। धुंध मे लिपटे पेड़ प्रेत-आत्माओ से लगते है। धुध क्रमशः हट जाता है। फिर हम घर, बादल, पेड़, पहाड देख सकते है। सभी कुछ धुला, साफ, निर्मल लगता है।

पहाडों पर गहरी नीली छायाएँ सघन होती है। मेघ मृदु गर्जन करते है, हुकार भरते हैं। अजन्ता की आदिवासी कृष्ण-वर्णा तरुणियो के शरीर के समान काले-नीले यह बादल है। बिज्जु-छटा से अभिसारिकाओं का पथ आलोकित करते हुए वर्षा के यह नवल मेघ यक्ष-प्रिया के लिए सदेश लेकर उत्तर दिशा मे निरन्तर बढते जा रहे हैं। जिधर भी

बनाते थे, बेचते थे, और आवश्यकता पडने पर ग्राहकों को 'सर्व' भी करते थे। एक ओर मेज पर बैठे प्रोप्राइटर साहिब गृद्ध-दृष्टि से सब कार्यवाही देखते थे। इस समय अधिक 'कस्टम' न देख वह बाहर जाकर किसी से बातें करने लगे।

दुर्गादत्त जी जवान, चुस्त आदमी थे। उनकी मूछें ऊपर को उठी हुई सुई के समान बारीक नोक बना रही थी। हमने सोचा, यह दूसरे महायुद्ध मे सैनिक रहे होगे। पूरा कुमायूँ प्रदेश ही आर्थिक सकट के कारण सेना मे भर्ती हुआ था। कहते हैं, गाँवो मे मुर्दा उठाने के लिए पुरुष न रह गए थे। कोई घर ऐसा न था, जिसने युद्ध के देवता को बलि न दी हो!

हमने पूछा, "आप चीन रह कर आए है?"

दुर्गादत्त जी का मुख स्मित हास्य से खिल उठा। आजकल अनेक नवयुवक दूकान मे आ-आकर उनसे चीन के बारे मे पूछते है। बिक्री बढती है, इसलिए मालिक को भी कुछ आपत्ति नही होती। सच पूछिए, तो वह दुर्गादत्त जी पर टिकिट लगा सकता है : हर इन्टर्व्यू के चार आने! इससे उसकी आमदनी हो, और चीन का प्रचार भी बढ़े।

दुर्गादत्त जी बोले : "हम डेढ वर्ष चीन मे रहे। हमने बहुत देश देखे हैं। हम इगलैण्ड और फ्रान्स भी रह चुके है।"

देवेन्द्र : "आप मि० कौल के स्टाफ पर थे।"

दुर्गादत्त : "चीन की नई सरकार बडी अच्छी है। ग़रीबों के लिए वह बहुत अच्छी है। चीन मे कोई घूस नही ले सकता, चोर-बाजारी नही कर सकता। सरकार बडी कड़ी निगाह इन बातो पर रखती है। हर माल के लिए व्यापारी को 'बिल' रखना पडता है। सबसे वह बराबर पूछताछ करते है कि किसी को कोई शिकायत तो नही।

"जो चीनी मुलाजिम हमारी 'ऐमबैसी' मे थे, उनसे वह बराबर पूछते थे कि उनके साथ हमारा कैसा बर्ताव है। अन्य विदेशियो को वह चीनी मुलाजिम नही रखने देते। चीनियो के साथ उनका व्यवहार बडा खराब है।

"नई सरकार बडी लोकप्रिय है। चीनी जनता उससे बहुत खुश है। किसान ज़मीन मिलने से प्रसन्न है, मजदूरो की हालत बहुत अच्छी हो गई है। सिर्फ अमीर और पूंजीपति लोग खुश नही है।"

हम : "लेकिन चीन मे पूंजीपतियो के साथ सरकार का व्यवहार तो अच्छा है। पूंजी का वह राष्ट्रीयकरण तो नही कर रहे।"

दुर्गादत्त : "नही। सिर्फ़ वह पूंजीपतियो के मुनाफे पर रोक लगा रहे हैं। इतने से अधिक नफा कोई नही कर सकता।"

दुर्गादत्त जी चीन से कुछ चित्र आदि भी खरीद लाए थे। इनकी बिक्री करके वह कुछ अपना भी भला कर लेते है। दीवार पर दो चीनी 'स्क्रीन' टॅगी थी। यह सुई का बडा बारीक काम था, दूर से वह ब्रश द्वारा बनाए चित्र लगते थे।

हम : "यह चित्र कितने पुराने है?"

दुर्गादत्त : "यह हाल के ही है। नई सरकार आने से दो-एक वर्ष पहले के ही।"

हमने कल्पना की, पीकिंग मे क्रान्ति की। लाल सेनाएँ बढ रही है, घूसखोर नौकरशाह और चोरबाजारी करने वाले व्यापारियो मे खलबली मची है। पुराने ऐयाश और सामन्त, जैनरल जो डाकू है, जान छोड कर भागते हैं। पुराने चित्र, चीनी के फूलदान, कला-कृतियाँ मिट्टी के मूल्य बिकती है। जो जिस के हाथ लगता है, वह लेता है। लाल सेनाएँ शहर मे आकर शान्ति स्थापित करती है।

हमने चित्रों की ओर ध्यान से देखा, ध्यान-मग्ना युवती झुक कर कुछ देखती हुई, एकाध पेड़, पक्षी, घास, नीला आकाश, दो-चार रेखाओ मे बहुत कुछ व्यक्त करने का प्रयास। किन्ही सकट-ग्रस्त तरुणियो ने आँख फोड कर यह बारीक काम सुई से रेशम पर किया है। कौड़ी के मोल किसी अफीम के व्यापारी ने इसे खरीदा होगा। क्रान्ति की भगदड़ मे भारतीय दूतावास के एक मुलाज़िम ने इसे सस्ता ले लिया। अब यह चित्र अल्मोड़े मे तीस रुपए की दर से बिक रहे है, किन्तु इन्हे

खरीदने वाला ग्राहक अल्मोड़े मे नही। जिनके पास धन है, उनकी आँखों मे कला का मूल्य नही; जिनके पास कला के प्रति अनुराग है, उनके पास धन नही। इसीलिए भारत मे कला की साधना इतनी कठोर है!

दुर्गादत्त जी कह रहे थे : "मेरे पास एक बहुत बढ़िया 'ब्रोकेड' है। वह मिसेज बूशी सेन के पास छोड़ आया हूँ। आपको दिखाऊँगा।"

हम : "जरूर दिखाइएगा। पास मे पैसा कम है। लेकिन संभव हुआ, तो कोई चीज जरूर लेंगे।"

हम सोच रहे थे, आजकल बड़े-बडे लोग चीन की प्रशंसा कर रहे हैं। यहाँ तक कि दक्षिण-पथी समाजवादी नेताओं को बुरा लगता है। वह कहते है कि भारत सरकार "पूजा के लिए एक नया मन्दिर बना रही है!" फिर भी, बडे लोग ऊपरी दृष्टि से ही यथार्थ को देखते हैं। दुर्गादत्त जी ने तो डेढ वर्ष चीनी जनता के अन्दर रह कर सब कुछ देखा है, और हमारी दृष्टि मे उनकी रिपोर्ट अमूल्य है। दुर्गादत्त जी को यथार्थ का अन्तरग ज्ञान है।

(१५)

नए मेघ

अब बरसात आ गई है। आकाश मे बादल घिर रहे है। कल तक कठोर गर्मी पडी थी। चलने मे शरीर से पसीना छूटता था। टंकियों पर कनस्तरो और पानी भरने वालो की भीड लगी रहती थी, और निरन्तर झगडे होते थे। "मेरा कटर आगे था!" ; "तूने मेरा कटर हटा दिया!" आदि। हैल्ट रिजर्वॉयर में एक बूंद पानी न बचा था। कोसी मे लारियो मे पानी लाद कर लाया जाता था और टंकियो मे उँडेला जाता था। बादल तो कई दिन से आ रहे थे, लेकिन वह ऊपर ही ऊपर निकल जाते थे। अब कल रात से पानी बराबर बरस रहा है।

अल्मोड़े के निवासी इस प्रथम वर्षा के स्वर से प्रसन्न हैं। मैदानों

में भी, जब पहली वर्षा झुलसी भूमि की प्यास को शान्त करती है, कितना आह्लाद चतुर्दिक् छा जाता है। मेले जुडते है, और रंग-बिरगे वस्त्र पहिन कर स्त्रियाँ झूला झूलती है और गीत गाती हैं।

पहाड़ से जगह-जगह सोते फूट निकले हैं। हर दिशा मे हम पानी बहने का मधुर स्वर सुनते है, जिसके लिए कान अधीर थे। अब पानी का अभाव वर्ष भर के लिए मिट जायगा।

आसमान मे बराबर बादल उमड रहे है। यह वर्षा के नए मेघ है, जिनका रग अजन्ता की कृष्ण-वर्णा युवतियो के 'समान है, या नन्दलाल बोस की आदिवासी बालाओ के चित्रों की याद हरी करता है। पहाडो पर बादलो की छाया पडती है और उनका रग गहरा नीला हो जाता है, मानो किसी आधुनिक चित्रकार ने नीली स्याही से पहाड बनाए हो। रोरिक और अनागारिक गोविन्द के चित्रो के यह रग है।

आकाश निरन्तर रग बदलता है। काले, सघन मेघ सिर के ऊपर छा जाते है, गंभीर गर्जन करके वे बरसने लगते हैं। फिर आकाश में आलोक होता है, धुल कर आसमान स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। हरे पेड और लाल घर, जो दूर से गुडियों के छोटे-छोटे घरो से लगते हैं, निखर कर चमकने लगते हैं। फिर धुध चतुर्दिक् छा जाता है, मानो पहाड गहरे निश्वास ले रहा हो। यह धुध सभी कुछ ढक लेता है। पेडों और पहाड़ो को वह अपने अचल मे छिपा लेता है। धुध मे लिपटे पेड प्रेत-आत्माओ से लगते है। धुध क्रमश हट जाता है। फिर हम घर, बादल, पेड, पहाड देख सकते है। सभी कुछ धुला, साफ, निर्मल लगता है।

पहाडो पर गहरी नीली छायाएँ सघन होती है। मेघ मृदु गर्जन करते हैं, हुकार भरते हैं। अजन्ता की आदिवासी कृष्ण-वर्णा तरुणियो के शरीर के समान काले-नीले यह बादल हैं। विज्जु-छटा से अभिसारिकाओं का पथ आलोकित करते हुए वर्षा के यह नवल मेघ यक्ष-प्रिया के लिए सदेश लेकर उत्तर दिशा मे निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। जिधर भी

यह जा रहे हैं, जीवन, आशा और उल्लास का नव-संदेश वहाँ पहुँचा रहे हैं। अकाल और दुर्भिक्ष के विरुद्ध प्रकृति का दुर्निवार वार यह मेघ हैं।

पहाड़ों की गोद अब हरे धान के खेतों से भर जायगी। पेड़ धुल जायँगे और नए फलों से भर कर झुक जायँगे। खेतों और घरों से मलार की ध्वनि उठेगी। वर्षा के यह नए मेघ आकुल और पीड़ित पृथ्वी के लिए नव-जीवन का संदेश लाए हैं। इन मेघों को देख कर, इनके मृदु, गंभीर गर्जन को सुन कर मन अकथनीय आह्लाद से भर जाता है। कालिदास की, अजन्ता की, रीतिकाल के काव्य की याद यह बादल हमें दिलाते हैं; हम मन-ही-मन गुनगुनाते हैं, "उनए हैं नए घन सावन के"!

स्केच

१

विश्राम

(१)

पर्वत-मालाओं के असंख्य, अनन्त समूह; देवदार के वन जिन्हें निरन्तर स्वच्छ, शीतल वायु कसकर झकझोर जाती है, और उनमें किसी जल-प्रपात अथवा क्षुब्ध सागर-लहरी के समान सनसनाहट और गर्जन भर जाती है; आदिम युग के अज़दहो के समान कुंडली मारे, टेढ़ी-मेढ़ी, तह-लिपटी सड़कें; दूर क्षितिज पर अनादि, अनन्त हिम-राशि, जो सूर्य की किरणो मे चाँदी के समान चमका करती है। कितना शान्त, सुन्दर देश है यह, जहाँ मृतप्राय रोगी भी जी उठते है और स्वस्थ मानव नये प्राण की उमग से उद्वेलित हो उठता है! यह देवदार के वनो की सुगध-भरी वायु फेफड़ो में भरकर कायापलट करती है, नया जीवन और बल देती है। विश्वकर्मा ने यहाँ पत्थरो को काट-काटकर सड़क और मकान बनाये हैं, और देव उनका उपभोग करते है।

साम्राज्यवाद ने इस पर्वत-देश को पसन्द कर अपना सैनिक-अड्डा बनाया था। साल-भर के विश्राम से थके उसके सैनिक निहत्थो पर वार करने के लिए यहाँ नयी शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए आते थे। यहाँ उन्होने अपने विलास के सभी साधन जुटाये थे। दुर्गम पर्वत-चोटियों तक मोटर की सड़कें, नहाने के लिए ठंडे-गरम पानी का प्रबन्ध, अपने बच्चों के लिए स्कूल। किन्तु उन्होंने काले आदमी की छाया भी यहाँ अपने पास न फटकने दी। तहसील उन्होंने इसी कारण नीचे खड्ड मे बनायी, ताकि पहाड़ी गाँवो के कुली-कबाड़ी आपस मे नीचे-ही-नीचे निबट लें!

कुरु-पांचाल का यह प्राचीन देश इस प्रकार आधुनिक बर्बरता का

यही बड़ी वात हुई!" वृद्ध के स्वर मे कोई शिकायत न थी, वह सब कुछ भाग्य की लीला समझकर स्वीकार कर रहा था।

हमारे घर के ठीक ऊपर चकराते की अकेली मस्जिद है। हमारा मुहल्ला पहले 'पाकिस्तान' कहलाता था, किन्तु अब वीरान पड़ा है। यहाँ दर्जनो घरों और दूकानो पर सरकारी ताला पड़ा है और मुहर लगी है। अब इनमे से कुछ घर शरणार्थियो को मिल गये है और वच्चो के खेल और वड़ो द्वारा उनकी प्रतारणा का स्वर नीरवता को बेघता है। मस्जिद टूटी-फूटी पड़ी है। उसमें एक बच्चा सुबह से शाम तक भयानक एकरसता से "जीम, ज़बर, जे..." जैसा कुछ रटा करता है। इधर इक्के-दुक्के मुसलमान गूजर भी चकराता वापस आने लगे है, जो अगस्त की स्वाधीनता और मार-काट के वाद अपना सव-कुछ छोड़कर पहाड़ो मे भागे थे। मस्जिद से अब फिर पाँचो पहर अजाँ की दवी, काँपती आवाज ईश्वर को खोजती हुई उठने लगी है; यह आवाज़ इतनी क्षीण है, मानो कच्चे सूत के धागे के समान अब टूटी, अब टूटी!

कल सरहदी कुल के एक बच्चे ने ठीक मस्जिद के नीचे अपनी 'दीर्घ शंका' का निवारण किया। मस्जिद से मुल्ला पानी लाकर उसे बहाने लगा। वह पानी सीढियो से गिरकर सरहदी कुल के बर्तन-भाँड़ो तक पहुँचा। तब अनेक स्वरों का एक ऐसा तूफ़ान उठा, मानो सैकड़ो भेड़ो के प्राण संकट मे हो और उनकी रक्षा का प्रश्न बहुत ज़रूरी हो उठा हो! मुल्ला ने भागकर मस्जिद के अंदर शरण ली। भेड़ भी पश्तो नही समझती, परन्तु यह प्रतारणा का स्वर खूब समझती हैं!

सरहदी कुल कहता है—"मुल्क का बँटवारा क्या हुआ, हमारा सत्यानाश हो गया!" किन्तु इसे वह नियति मानकर चुप हो जाते है। शायद मस्जिद का मुल्ला और पहाड़ो मे छिपे गूजर भी इस बँटवारे को कोसते हैं, किन्तु नियति का खेल समझकर चुप रहते है।

घर उजड़े, गाँव और नगर उजड़े, लाखों परिवार वर्बाद हुए, पचास-पचास लाख के क़ाफिले पूर्व से पश्चिम को चले और पश्चिम से

पूर्व को चले, ऐसे लज्जाजनक काण्ड हुए जिनका वर्णन भी कठिन है, और देश बर्बरता के गढ़े मे गिरा? गाँधी के प्राणो की आहुति पाकर यह आग कुछ मन्द पड़ी है, किन्तु इसका कुछ ठिकाना नही कि कहाँ और कब फिर भडक उठेगी!

इस छोटी-सी बस्ती मे सब कोई सब को जानता है। यहाँ आपके पड़ोसी हर वक्त आपकी मदद के लिए तैयार रहते है। निरन्तर वह हाथ बाँधकर पूछते है—"मेरे योग्य सेवा?" यहाँ आपके जीवन का कोई भी रहस्य अधिक दिन छिपा नही रह सकता। बड़े नगरो की स्थूलता मे आप छिपकर खो जा सकते है, किन्तु यहाँ सुबह से रात तक, जन्म से मृत्यु तक आपके जीवन का पल-पल सहस्रो नयन निर्ममता से देखा करते है और मन-ही-मन कठोरता से उस पर आलोचना करते है।

(३)

इस इलाके का आधुनिक नामकरण जौनसार-बावर है। दत-कथाओं के अनुसार यह कुरु-पांचाल देश है। आज भी यहाँ द्रौपदी की परम्परा पर स्त्रियाँ चलती है। उनका विवाह रीति-पूर्वक बडे भाई के साथ होता है, किन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार सभी भाइयो की पत्नी वह स्त्री होती है।

इस देश के निवासी गढवाल, टेहरी आदि के निवासियो से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज सभी अलग हैं। यहाँ मानो इतिहास की बीस सदियाँ बीती ही न हों, मानो जातियों का यह जीता-जागता अजायबघर हो। यहाँ की स्त्रियाँ रग-बिरगे कपड़े, भारी-भरकम गहने पहनना पसन्द करती हैं, उनके पग धीर-मंथर गति से पृथ्वी पर पडते है, मानो कोई चित्रित मूर्ति सजीव हो उठी हो! पुरुष लम्बे-लम्बे बाल रखते हैं, सिर पर पगड़ीनुमा टोपी पहनते है और लम्बे-चुस्त पायजामे और अँगरखे। स्पष्ट ही मगोल रक्त इस जाति की रगो मे है, उनके चपटे मुखो, पीले रग आदि से यह स्पष्ट है। किन्तु किंवदन्ती है कि यहाँ के निवासी कश्मीर से सबधित है। यहाँ

शिकार हुआ। इन प्राचीन जातियो के साथ वन-पर्वतो में अनेक अत्याचार और अनाचार हुए, किन्तु साम्राज्यवाद की छावनी यहाँ से हट जाने के वाद आज यहाँ भयानक शून्यता और सन्नाटा है। यह भी स्पष्ट है कि अधिक दिन जीवन और गति के नियम इस शून्य को बर्दाश्त न करेंगे!

चकराता के असख्य वैरक अव खाली पड़े है। सरकार के जनप्रिय मत्री यहाँ आते हैं, अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करते हैं और चले जाते हैं। देश के विकास के लिए योजनाएँ वनाने से उन्हें इतना अवकाश ही नही कि इस शून्य को भरने की वात भी सोच सके! यह उजड़ा नगर उनके शासन-बल और अभिमान को कोई चुनौती देने मे असमर्थ है!

सिनेमा-घर बद पडा है, उसकी छत का टूटा टीन हवा मे निरन्तर एक अवसादमय स्वर उँडेला करता है। रेस्ट्राँ खाली पड़े है। ऊपर वाजार मे, जहाँ साहव लोगो ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृष्णागो को कुछ दूकाने खोलने की आज्ञा दे दी थी, हवाइयाँ उड़ रही है। सव तरफ यही पुकार है, 'चकराता उजड़ गया! अव इसका क्या होगा'?

(२)

हम घूमने जाते है, यहाँ स्वास्थ्य के लिए घूमना चाहिए। हम छुट्टी मना रहे हैं। पल भर के लिए हम भारतीय शासन-चक्र की विडम्वना को भूलने का प्रयास करते है, पुलिस, गोली, जेल, दफा १४४, जन-रक्षा के नाम पर काला कानून, भारद्वाज की असमय मृत्यु, मजदूर की शक्ति पर पूंजीवादी व्यवस्था का भरपूर आक्रमण। किन्तु कभी कोई अपने से भी छुट्टी पा सका है? सभी जगह हम उसी कुशासन और अयोग्यता की प्रतिध्वनि सुनते है, उसी की छाया देखते है!

दूर देवदार के वनो की ओर हम निकल जाते है, वैरको का शून्य हमारा उपहास करता है। पर्वत-शिखरों पर आमोद के सभी सावन एकत्रित देखकर हम सोचते हैं, क्यों न इस उजड़े प्रदेश को जनता के

स्वास्थ्य-निवास में परिणत कर दे? किन्तु इस कल्पना को मूर्त रूप देने की सूझ अधिकारियो को हो, तब तो?

हम खड्ड के गाँवों में उतर जाते है। कितनी गरीबी, अशिक्षा और दयनीयता है यहाँ! दो-चार टूटे-फूटे घर, पहाड़ों की कोख मे कटे खेत; रोग और मृत्यु; आदिम युग का अन्धकार जहाँ साँय-साँय कर रहा है, जहाँ न पानी का प्रबन्ध है, न रोशनी का। इन प्रारम्भिक आवश्यकताओं के लिए गाँवो के मुखिया सरकार के दफ्तरो मे अर्ज़ी भेजते है, वहाँ शासन-भार से थके-माँदे अफसर और बाबू उन्हें फ़ाइलों मे नत्थी करके और भी थक जाते हैं।

क्योकि जीवन शून्यता को नही सहन कर सकता, चकराता के शून्य को भी शरणार्थियों की एक पतली धार भरने का प्रयत्न कर रही है। यह धार क्रमशः मोटी होकर यहाँ की नीरवता को भग भी करने लगी है। इन शरणार्थियो मे से अनेक सरहद से आये है। नीचे की गर्मी से व्याकुल होकर यह शीतल-देशवासी यहाँ भाग आये!

एक सरहदी कुल ठीक हमारे घर के नीचे बसा है। यह एक बहुसख्यक परिवार है, जिसमे बूढे है, बच्चे हैं, युवतियाँ है, जवान है और दो बकरियाँ भी हैं। इनका वेश देखकर इन्हे सरहदी मुसलमानों से अलग पहचानना भी कठिन है। इनकी तीखी भाषा और कर्णवेधी ध्वनियो से हमे दुर्गम पर्वत-वन-घाटियो और भेड़ो के चरागाहो का स्मरण हो आता है! मानों निरन्तर ही कोई पशुओ को हाँक रहा हो, "चक-चक!", "इधर नही, उधर नही!", "अरे, तू सुनती नही!" "तेरे कान नही!", "क्या तू मेरे प्राण लेकर ही रहेगी?" इत्यादि।

इनके वस्त्र पैराशूट के रेशम से बने है। यह इन्हे सरकार की तरफ से मिले है। एक वक्त का खाना भी सरकार की कृपा से मिलता है। बूढ़े ने अपनी करुण-कथा सुनाते हुए कहा—"हमारे पास सब-कुछ था, लेकिन सभी लुट गया! सिर्फ़ आदमी और इज़्ज़त बचकर आ गये!

यही बड़ी बात हुई!" वृद्ध के स्वर में कोई शिकायत न थी, वह सब कुछ भाग्य की लीला समझकर स्वीकार कर रहा था।

हमारे घर के ठीक ऊपर चकराते की अकेली मस्जिद है। हमारा मुहल्ला पहले 'पाकिस्तान' कहलाता था, किन्तु अब वीरान पड़ा है। यहाँ दर्जनो घरो और दूकानो पर सरकारी ताला पड़ा है और मुहर लगी है। अब इनमे से कुछ घर शरणार्थियो को मिल गये है और बच्चो के खेल और बड़ो द्वारा उनकी प्रतारणा का स्वर नीरवता को बेधता है। मस्जिद टूटी-फूटी पड़ी है। उसमे एक बच्चा सुबह से शाम तक भयानक एकरसता से "जीम, ज़बर, जे..." जैसा कुछ रटा करता है। इधर इक्के-दुक्के मुसलमान गूजर भी चकराता वापस आने लगे हैं, जो अगस्त की स्वाधीनता और मार-काट के बाद अपना सब-कुछ छोड़कर पहाड़ो मे भागे थे। मस्जिद से अब फिर पाँचो पहर अज़ाँ की दबी, काँपती आवाज़ ईश्वर को खोजती हुई उठने लगी है; यह आवाज़ इतनी क्षीण है, मानो कच्चे सूत के धागे के समान अब टूटी, अब टूटी!

कल सरहदी कुल के एक बच्चे ने ठीक मस्जिद के नीचे अपनी 'दीर्घ शंका' का निवारण किया। मस्जिद से मुल्ला पानी लाकर उसे बहाने लगा। वह पानी सीढ़ियो से गिरकर सरहदी कुल के बर्तन-भाँड़ों तक पहुँचा। तब अनेक स्वरों का एक ऐसा तूफ़ान उठा, मानों सैकड़ो भेड़ों के प्राण संकट मे हो और उनकी रक्षा का प्रश्न बहुत जरूरी हो उठा हो! मुल्ला ने भागकर मस्जिद के अंदर शरण ली। भेड़ भी पश्तो नहीं समझती, परन्तु यह प्रतारणा का स्वर खूब समझती हैं!

सरहदी कुल कहता है—"मुल्क का बँटवारा क्या हुआ, हमारा सत्यानाश हो गया!" किन्तु इसे वह नियति मानकर चुप हो जाते है। शायद मस्जिद का मुल्ला और पहाड़ो मे छिपे गूजर भी इस बँटवारे को कोसते हैं, किन्तु नियति का खेल समझकर चुप रहते है।

घर उजड़े, गाँव और नगर उजड़े, लाखों परिवार बर्बाद हुए, पचास-पचास लाख के क़ाफ़िले पूर्व से पश्चिम को चले और पश्चिम से

पूर्व को चले, ऐसे लज्जाजनक काण्ड हुए जिनका वर्णन भी कठिन है, और देश बर्बरता के गढे मे गिरा? गाँधी के प्राणो की आहुति पाकर यह आग कुछ मन्द पड़ी है, किन्तु इसका कुछ ठिकाना नही कि कहाँ और कब फिर भडक उठेगी!

इस छोटी-सी बस्ती मे सब कोई सब को जानता है। यहाँ आपके पडोसी हर वक्त आपकी मदद के लिए तैयार रहते हैं। निरन्तर वह हाथ बाँधकर पूछते है—"मेरे योग्य सेवा?" यहाँ आपके जीवन का कोई भी रहस्य अधिक दिन छिपा नही रह सकता। बड़े नगरो की स्थूलता में आप छिपकर खो जा सकते है, किन्तु यहाँ सुबह से रात तक, जन्म से मृत्यु तक आपके जीवन का पल-पल सहस्रो नयन निर्ममता से देखा करते है और मन-ही-मन कठोरता से उस पर आलोचना करते हैं।

(३)

इस इलाके का आधुनिक नामकरण जौनसार-बावर है। दंत-कथाओ के अनुसार यह कुरु-पांचाल देश है। आज भी यहाँ द्रौपदी की परम्परा पर स्त्रियाँ चलती है। उनका विवाह रीति-पूर्वक बड़े भाई के साथ होता है, किन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार सभी भाइयो की पत्नी वह स्त्री होती है।

इस देश के निवासी गढ़वाल, टेहरी आदि के निवासियो से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज सभी अलग है। यहाँ मानो इतिहास की बीस सदियाँ बीती ही न हो, मानो जातियो का यह जीता-जागता अजायबघर हो। यहाँ की स्त्रियाँ रग-बिरगे कपड़े, भारी-भरकम गहने पहनना पसन्द करती है, उनके पग धीर-मंथर गति से पृथ्वी पर पड़ते है, मानो कोई चित्रित मूर्ति सजीव हो उठी हो। पुरुष लम्बे-लम्बे बाल रखते हैं, सिर पर पगड़ीनुमा टोपी पहनते हैं और लम्बे-चुस्त पायजामे और अँगरखे। स्पष्ट ही मगोल रक्त इस जाति की रगो मे है, उनके चपटे मुखो, पीले रग आदि से यह स्पष्ट है। किन्तु किंवदन्ती है कि यहाँ के निवासी कश्मीर से सबधित है। यहाँ

आपको गोरे-चिट्टे सुन्दर मनुष्य भी मिलते हैं, और काले-कुरूप भी; किन्तु अवश्य ही इस कुरूपता का रहस्य यहाँ की विकट ग़रीवी है।

नीचे-से आये शासक कहते हैं, जौनसारी लोग वड़े आलसी होते हैं। वे खेत नही जोतते, नौकरी ही नही करते! थोडी वहुत कुलीगीरी कर लेते हैं। उन्हे खाने-भर को मिल जाय, इसी से वे सतुप्ट रहते है। इनका स्वभाव वड़ा कोमल होता है। वहुत कम इनमे आईन के जुर्म होते है; अविकतर यह अपने झगड़े पंचायत मे ही निवटा लेते है। स्पप्ट ही आधुनिक सभ्यता की भयकर तृष्णा और परस्पर की होड़ अभी तक यहाँ नही पहुँची। यह इनका दुर्भाग्य! कहते है कि स्त्री परिवार को एकता के सूत्र मे पिरोती है; उसी के कारण यहाँ के परिवार टूटकर विखर नही पाते!

किन्तु इन प्राचीन जातियों की हड्डियो तक मे रोग वस गया है, और उन्हे घुन की तरह अन्दर-ही-अन्दर खा रहा है। यहाँ जितने अधिक अस्पताल खुल सकें, उतनी ही इतिहास की रक्षा हो। वैरियर एलविन ने भी मध्य-प्रान्त की गोंड जातियो के संवव मे औपवि की वडी आवश्यकता वतायी है। उन्हे यह जानकर आश्चर्य हुआ था कि इन 'असभ्य' जातियो मे सभ्यता का चरम रोग, वी० डी०, इतनी प्रचुरता से है! 'सभ्यता' के और करिश्मे चाहे यहाँ न पहुँचे हो, किन्तु वी० डी० अवश्य अपनी भयकर मार लेकर पहुँच गया है!

पहला जौनसारी, जिससे हमारी भेट हुई, जगल-पचायत अफ़सर साहव का अर्दली 'जट्टी' है। जट्टी आदिम मानव है, साथ ही उसने अर्दली नाम के पशु के सभी गुण भी प्राप्त कर लिये है। वह अपनी खाकी वर्दी और लाल पगड़ी पहनकर वहुत प्रसन्न होता है; यह मानो अपनी प्रेयसी को मोहित करने के लिए वन के किसी पशु अथवा पक्षी ने शृगार किया हो। जट्टी इधर-से-उधर पूरे चकराते का भी निरन्तर ही चक्कर काटता है, लेकिन एटेची के सिवा और कोई वोझ उठाना वह अपनी शान के खिलाफ़ समझता है। उसके भाव साफ़ उसके मुंह पर झलक

आते है, वंदर के समान उसका चौड़ा जवड़ा खिल जाता है, उसके दाँत क्रोध की मुद्रा मे किटकिटा उठते है, और तब हमे तुरन्त स्मरण हो आता है कि मनुष्य की उत्पत्ति कहाँ से हुई है, और अपने पुरखो के समीप आज भी वह कितना अधिक है! जट्टी के सुन्दर, मगोल मुख पर क्रोध की मुद्रा मे स्पष्ट ही हमारे पूर्व-गुरुपो, सुग्रीव और बालि, की आकृति झलक जाती है!

दूसरा जौनसारी, जिसके लिए मेरे हृदय मे अपार सम्मान और संवेदना है, हमारे पडोस मे पहाड़ी होटल का 'बुला' है। यह छोटा-सा लडका सुवह-से शाम तक दौड़-दौड़कर काम करता है, किन्तु इसे आप हमेशा मुस्कराता ही देखेंगे। यह सुन्दर, हँसमुख लड़का कीच में ढका कमल है। किसी भी 'सभ्य' समाज-व्यवस्था मे इस बालक को वी० डी० के वजाय शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास के अवसर का प्रसाद मिलना चाहिए था; किन्तु निश्चय ही अगले दस वर्षों मे यह वड़ा होकर शरावी, रोगी, ढोर, कुली वनेगा, और हम सतोष की साँस लेकर कहेगे —"हमारे देश मे समता है, विकास का समान अवसर है, कुली के वच्चे के लिए भी, टाटा-विड़ला की सन्तान के लिए भी! जय हिन्द!!" और 'कल्याण' लिखेगा, "यह कर्म-फल है! भाग्य का चक्र है!"

और भी अनेक व्यक्ति हमे स्मरण आते है : पचायत अफ़सर साहव का क्लर्क, शिष्ट, सुशील नवयुवक जो मैट्रिक से आगे पढ़ना चाहता है, उसने हमे वताया कि मुखिया लोगो के—जिन्हे यहाँ 'सयानाजी' कहते है—कई लडके एक साथ मैट्रिक मे वैठे थे, लेकिन सब फेल हो गये; एक गरीव लड़का वैठा था, वह पास हो गया! तहसीलदार साहव का क्लर्क, जो पजाव के इटर की तैयारी कर रहा है, और नित्य नियम से मुझसे अँग्रेजी पढ़ जाता है; वहुत ही नम्र और दयालु व्यक्ति, जो शिक्षा की अमिट भूख मन मे रक्खे, जीविका के हेतु नौकरी की गाडी चलाये जा रहा है!

आपको गोरे-चिट्टे सुन्दर मनुष्य भी मिलते है, और काले-कुरूप भी; किन्तु अवश्य ही इस कुरूपता का रहस्य यहाँ की विकट गरीवी है।

नीचे-से आये शासक कहते है, जौनसारी लोग वड़े आलसी होते है। वे खेत नही जोतते, नौकरी ही नही करते! थोड़ी वहुत कुलीगीरी कर लेते है। उन्हे खाने-भर को मिल जाय, इसी से वे सतुष्ट रहते है। इनका स्वभाव वडा कोमल होता है। वहुत कम इनमे आईन के जुर्म होते है; अधिकतर यह अपने झगड़े पचायत मे ही निवटा लेते है। स्पष्ट ही आधुनिक सभ्यता की भयकर तृष्णा और परस्पर की होड़ अभी तक यहाँ नही पहुँची। यह इनका दुर्भाग्य! कहते है कि स्त्री परिवार को एकता के सूत्र मे पिरोती है; उसी के कारण यहाँ के परिवार टूटकर विखर नही पाते!

किन्तु इन प्राचीन जातियो की हड्डियों तक में रोग वस गया है, और उन्हे घुन की तरह अन्दर-ही-अन्दर खा रहा है। यहाँ जितने अधिक अस्पताल खुल सकें, उतनी ही इतिहास की रक्षा हो। वैरियर एलविन ने भी मध्य-प्रान्त की गौड जातियो के संवध मे औपधि की वडी आवश्यकता वतायी है। उन्हे यह जानकर आश्चर्य हुआ था कि इन 'असभ्य' जातियो मे सभ्यता का चरम रोग, वी० डी०, इतनी प्रचुरता से है! 'सभ्यता' के और करिश्मे चाहे यहाँ न पहुँचे हो, किन्तु वी० डी० अवश्य अपनी भयकर मार लेकर पहुँच गया है!

पहला जौनसारी, जिससे हमारी भेंट हुई, जगल-पचायत अफसर साहव का अर्दली 'जट्टी' है। जट्टी आदिम मानव है, साथ ही उसने अर्दली नाम के पशु के सभी गुण भी प्राप्त कर लिये है। वह अपनी खाकी वर्दी और लाल पगडी पहनकर वहुत प्रसन्न होता है; यह मानो अपनी प्रेयसी को मोहित करने के लिए वन के किसी पशु अथवा पक्षी ने शृगार किया हो। जट्टी इधर-से-उधर पूरे चकराते का भी निरन्तर ही चक्कर काटता है, लेकिन एटेची के सिवा और कोई वोझ उठाना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। उसके भाव साफ उसके मुँह पर झलक

विश्राम की अवधि खत्म हुई। हम अधीरता से कोलाहल और जन-रव से भरे नगरो की ओर मुडते हैं, जहाँ यह शीतलता, यह अतुल सौन्दर्य-वैभव तो नही है, किन्तु जहाँ संघर्ष है, आगे बढने की आतुरता है। हम आदिम युग से—राम-राज्य से, कुरु-पाचाल से—वर्तमान कुव्यवस्थित राज्य की ओर मुडते है, जहाँ मानव ने प्रकृति के बल को रावण के समान शृखलाओ मे बाँध लिया है। सूर्य और चन्द्र बिड़ला के प्रासदों मे आलोक करते हैं, पवन वहाँ झाड़ू लगाता है और इन्द्र स्फटिक के फर्श धोते हैं। वह दिन भी दूर नही, जब विश्वकर्मा का स्वयं इस शक्ति पर अधिकार होगा। विश्राम की अवधि समाप्त कर इसी सघर्ष मे कूदने की आतुरता से हम वापस लौटते हैं।

(२)

बघाड़ा

हमारा ग्वाला बडे बघाडा मे रहता है। यह बस्ती ग्वालो, मजदूरों और दूसरे मेहनतकशो की है, जो बडे तडके ही उठकर काम पर चले जाते है, और बडी रात गये लौटते है।

ठीक गगा के किनारे बड़ा बघाडा बसा है। गगा की गहर गभीर धार मानो निरन्तर ही इस बस्ती को काटती है और पीछे ठेलती है। जब बाढ़ आती है, तो यहाँ त्राहि-त्राहि मच जाती है। खेत पानी मे डूब जाते हैं, पौहो का चारा बह जाता है; और कई-कई दिन जानवर पानी मे खड़े रहते है। झोपड़ियाँ गिरने लगती है और मानो प्रलय-सी आ जाती है।

फाफामऊ से गगा की धार बडी धीर, मथर गति से चलती है, यद्यपि बरसात मे यही गति तूफानी वेग धारण कर लेती है। शिव-कुटी के प्रशान्त विश्राम-गृहो के पास से चक्कर काटती, रसूलाबाद होती हुई गगा की धार बघाडा को छूती हुई बाँध के सहारे-सहारे दारागंज जा पहुँचती है। और कुछ आगे बढ़कर वह किले के पास जमुना से गले

मैदानों के विराट नगरो से अलग कटे, अशिक्षा के अन्धकार में डूबे यह द्वीप-पुंज ज्ञान के आलोक की कितनी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं। कैसे और कब यह अमिट भूख मिटेगी?

चकराता ठडी जगह है; अतएव गर्मियो मे घूमने के लिए यहाँ वड़े-वड़े मत्री और अफसर आते हैं। विकास-मंत्री, कमिश्नर साहब, कलक्टर साहव आये और दौरा कर गये। गाँवो के प्रतिनिधियों ने कहा —"पानी विना वड़ा कष्ट है, पानी का प्रवन्ध कर दीजिए!" अर्ज़ी फ़ाइल में नत्थी हो गयी और फिर वही चिरकाल से चला आता सरकारी यन्त्र का क्रम। अशिक्षा, रोग और अन्धकार का हाहाकार करता सागर जो पल-पल पर मानों इस टापू को लील लेगा; साँय-साँय करता और सिर धुनता देवदार का वन; और अनन्त काल से मनुष्य के इस क्षुद्र व्यापार को चिर-उदासीनता से देखती आ रही धवल हिम-राशि जो सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोने-चाँदी-सी विखर जाती है, और मानो मनुष्य से कहती है, "कितनी सम्पत्ति है पृथ्वी पर, और कितना दीन मानव है!!"

कहते हैं, जानवुल ने अपनी छावनी के काम के लिए किसी ठेकेदार को सौ-सवा सौ खच्चरो का ठेका दिया था। चकराते की सड़के घूम-घाम-कर जिस स्थान से निकलती है, वही आ मिलती है। ये वृत्ताकार सड़कें पहाड़ियो के चतुर्दिक् वनी है। ठेकेदार ने तीस-चालीस खच्चरो को वृत्ताकार सड़क पर घुमाना शुरू किया और साहिव लोगो से पूरी ठेकेदारी वसूल की। तभी से इस स्थान का नाम 'चकराता' अर्थात 'चक्कर आता' पड़ा!

यह घटना साहवों की मोटी अक्ल, भारतीय जनता के पैसे के प्रति उनकी शाहखर्ची और उनकी शासन-व्यवस्था की चोरी और लूटमार पर प्रकाश डालती है। उसी शासन-यंत्र की विरासत के वल पर नयी सरकार भारतीय दीन-हीन को उसके दुःख मिटाने का वचन दे रही है।

यह अन्धेर नगरी है, जहाँ रुपये सेर भाजी और रुपये ही सेर खाजा है!

अगर मैं चित्र-कला जानता, तो इस ग्वाले का पेन्सिल स्केच बनाता। वह छोटे कद का, गठे बदन का, गैंडा-सा आदमी है, भारी-भारी उसकी मूँछ है और उसकी आवाज मे गंगा के स्वर के समान गहर-गंभीर-सा कुछ है, जो मानो आँधी-पानी और तूफान के ऊपर उठकर आपको गुहार रहा हो।

जब राशन की कठिनाई के दिनो में मैं और हिन्दी के एक प्रसिद्ध कहानी-लेखक मेरे मित्र बघाडा गये थे, और पूछ-ताछ कर रहे थे कि सब को कार्ड मिले या नही, तब पहिली बार हमने अपने ग्वाले का घर देखा था। बड़ी ऊँची कगार पर, बघाड़ा के एक सिरे पर उसका घर था। नीचे गगा की धार तिरछी-सी होकर बह रही थी। लगता था अब यह कगार टूटी और गगा की धार मे समायी। हम बड़े ऊँचे, सातवें आसमान पर खड़े मालूम होते थे। वह जानवरो को पानी दे रहा था।

'कैसे आये बाबू जी इधर? दूध पीजिए!' उसने कहा। हम लोग चाय पीना ही जानते है, अतएव इन्कार कर दिया।

'तुम्हारे गाँव मे सब को कार्ड मिल गये?'

'कहाँ बाबू जी? कितनो को नही मिले। जाते है, घटो खडे रहते हैं। बड़ी बुरी तरह पेश आते है बाबू लोग!' फिर वह अपनी पूरी दास्ताँ हमे सुनाने लगा : 'कुछ कार्ड बाबू लोगो ने ऐसे बनाये है, जिनका पता-ठिकाना कुछ नही। उनका राशन चोर-बाजार मे पहुँच जाता है। हम लोग दिन-दिन भर दूकान पर खडे होकर लौट आते है। कह देते है, 'नाज खत्म हो गया; फिर आना।' हम काम-धन्धे वाले कैसे रोज-रोज दौड़ा करें?' बड़े रज से उसने कहा : 'इतनी तकलीफ कभी न उठायी थी, बाबू जी। खाने कपड़े की ऐसी तकलीफ तो पिछली लडाई मे भी न हुई थी। आप लोग ही दूध के लिए तकलीफ उठाते हैं, पर हम लाचार है। चारे के दाम आसमान छू रहे है। सरकारी डेरी

मिलती है। इसके किनारे अनेक कोठियाँ, वगीचे, खेत और खँडहर हैं, लेकिन वघाड़ा ग्वालो की वस्ती है, और यहाँ गगा माई गरीवो के घर होकर गुजरती है।

वड़े शान्त उजाड खण्ड मे वघाड़ा वसा है। ऊँची-नीची, पथरीली भूमि, काँटो के पेड़ और झाऊ के वन पार कर आप वघाड़ा पहुँचते है। यहाँ दो-चार पक्के घर भी है, लेकिन ज्यादातर गरीवो की कोठरियाँ और झोपड़ियाँ हैं। शहर के थके प्राणों को इस उजाड़ ग्राम-देश मे एक अजव स्निग्ध, शान्त, वातावरण मिलता है, लेकिन यहाँ भी निरन्तर प्रकृति से सघर्ष चला करता है। गगा वघाड़ा की कगारो को अपनी धार की तेज तलवार से निरन्तर काटा करती है, और वस्ती को पीछे ठेलती रहती है। यहाँ के टूटे-फूटे घर और तट के खँडहर इस अनवरत संघर्ष के साक्षी है।

हमारा ग्वाला भी वघाड़े मे रहता है। वडे मुँह-अँधेरे ही साइकिल पर दूध की दो टकी लादकर वह चल पड़ता है, और जाडे की जिस्म को छुरे-सी काटने वाली हवा, मेह-आँधी आदि का सामना करते हुए, पूरे शहर का चक्कर काट डालता है। वड़े तड़के ही वह हमारे घर हाँक लगाता है : 'दूध वाला-मा-आ जी।' वडी जल्दी-जल्दी मे दूध देकर वह आगे वढ़ जाता है। लगभग दोपहर को दूसरे ग्वालो के साथ फुरसत मे हल्के वोझ वह अपने गाँव वापस लौटता है। वड़े जोर-जोर से वात करता हुआ वह जाता है : 'डेरी वाले सव दूध हमसे ले लेते है! गाहको को क्या दें? चारा क्या खिलाये जानवरो को? दूध के दाम वढाते हैं, तो गाहक नाराज होते हैं।'

छै-सात साल से यही ग्वाला हमारे यहाँ दूध देता है। दूध के दाम सन् ४१ से तीन सेर, ढाई सेर, सवा दो सेर, दो सेर, डेढ़ सेर आदि होकर अव मानो पल-भर के लिए रुके है। इसी वीच मे नाज की रफ्तार भी इसी तरह डेढ सेर पर रुकी है। आलू भी रुपये के डेढ सेर हैं। यह भी अजव देश है, जहाँ सभी चीज डेढ़ सेर है। सचमुच ही

चाहिए। जिन्हे कार्ड नही मिले हैं, उन्हे कार्ड दिलवाए जायँ। गाँव-वालो को अपनी शक्ति का एहसास हो रहा था। वे सोच रहे थे, सब मिलकर एक हो जाएँ, तो धरती को हिला दे, हिमाचल को डिगा दे।

बघाड़ा के ग्राम-देश पर चाँदनी छिटकी हुई थी। दूर, धीर, मथर गति से प्रौढ़ा नायिका की भाँति गगा अभिसार के लिए मानो चली जा रही थी। हम उस ऊँची-नीची, पथरीली भूमि से, काँटो के पेड़ो और झाऊ के वन के बीच से वापस लौट रहे थे। कितना शीतल, शान्त, स्निग्ध वातावरण था यह! यहाँ मानो संसार से विरक्त ऋषि-मुनियो के रहने का स्थान हो। लेकिन हम जानते थे कि बघाड़ा बरफ से ढँका ज्वालामुखी है। इस शान्ति के पीछे भयानक असतोष, पीडा, और दुःसह दुर्निवार व्यथा है। यह आग अन्दर-ही-अन्दर सुलग रही है और जब फूटकर निकलेगी, तो शासक वर्ग की लाखो-लाखो कोशिशो से भी बुझाए न बुझेगी।

(३)

बाँध

प्रयाग का बाँध अकबर बादशाह ने बनवाया था। वह प्रयाग स्टेशन के निकट छोटे बघाड़े से शुरू होकर, नाग-वासुकि और दारागंज होता हुआ, संगम पर स्थित किले से मिल जमुना के पुल तक चला गया है। यदि अकबर ने कुछ और अपने राज्य-काल मे न किया होता, तो भी यह बाँध उसकी कीर्त्ति अक्षय और अजर-अमर बनाने के लिये काफी होता। जब गगा मे बाढ आती है, और सावन-भादो के महीनो मे नगर त्रस्त होकर हाहाकार कर उठता है, तब यही बाँध वज्र के समान कठिन होकर, उस क्षुब्ध सागर-सी हिलोर मारती गगा को रोकता है, और प्रयाग के नर-नारियो को उसके रोष से बचा लेता है! इसीलिए इस बांध की गिनती पिरामिड और ताज के समान अद्‌भुत् वस्तुओ मे होनी चाहिये। अन्तर केवल इतना है, कि पिरामिड और ताज तो मृतो के स्मारक है,

वाले कन्ट्रोल के दाम पर हमारा दूध छीन लेते है। मना करें, तो दड भोगे। हमारा दूध तो लेते हैं, लेकिन हमे खाना-कपड़ा कुछ नही मिलता!'

उसके स्वर मे तीखापन आ गया था। मानो राख मे दबी चिनगारी भड़क उठी हो। और भी उसके आस-पास के लोग वहाँ इकट्ठे हो गये थे। सब उसके साथ सिर हिला रहे थे। वह कहता गया :

'हम दूध सरकार को न देंगे; चाहे हम उसे गगा जी को चढा दे। हम कहेंगे, 'दूध लो, खाना-कपड़ा दो।' हमे यह कागज का रुपया न चाहिए। शहर मे दगा होता है, हम मारे जाते है। हमारी भी कोई सुनता है? बम्बई मे ग्वालो ने सड़को पर दूध बहा दिया था, पर सरकार को नही दिया। हम बच्चो को दूध मुफ्त बाँट देंगे, पर इन कागजी घोड़ो से हमारा कुछ काम नही बनता!'

बघाड़े में जाहिरी तौर पर शान्ति थी, सौन्दर्य था, गंगा की धारा थी। लेकिन इस प्रकृति की छटा के पीछे छिपा कितना दुर्दमनीय दु.ख था। यहाँ बच्चे सूखे हड्डी के ढाँचा मात्र थे। उनके बदन दुबले, हड्डियाँ निकली हुई और पेट बडे फूले हुए थे। स्त्रियाँ फटे चिथड़े पहने घूमती थी। उनमे अनेक की यह हालत थी कि घरो के बाहर न निकल सकती थी। जवानो के गाल गढ़ो मे धँसे हुए थे; उनके मुँह पस्त थे, और मुर्दनी-सी उनके ऊपर छाई थी। बूढे जर्जर, हड्डी के पिंजर-मात्र थे।

बघाड़ा मे दूध की नदी बहती थी, लेकिन यहाँ के लोग दुर्बल और अशक्त थे। यह दूध की नदी बघाडा के लोगो के लिए न बहती थी। इसका उपभोग दूसरे ही करते थे।

ग्वाले की बात सुनकर यहाँ सभी के मुँह तमतमा उठे थे।

बडी रात गये हम लोग बघाडा से लौटे थे। मिट्टी के तेल की एक लालटेन पूरी बस्ती मे थी। उसी की रोशनी मे हम लोगो ने अर्जियाँ लिखी। तय हुआ कि कलेक्टर साहब के बँगले पर प्रदर्शन हो। राशन की दूकान बघाडा मे खुलवाई जाय और मिट्टी का तेल भी यही मिलना

चाहिए। जिन्हे कार्ड नही मिले है, उन्हे कार्ड दिलवाए जायँ। गॉव-वालो को अपनी शक्ति का एहसास हो रहा था। वे सोच रहे थे, सब मिलकर एक हो जाएँ, तो धरती को हिला दें, हिमाचल को डिगा दे।

बघाड़ा के ग्राम-देश पर चाँदनी छिटकी हुई थी। दूर, धीर, मथर गति से प्रौढ़ा नायिका की भाँति गगा अभिसार के लिए मानो चली जा रही थी। हम उस ऊँची-नीची, पथरीली भूमि से, कॉटो के पेड़ो और झाऊ के वन के वीच से वापस लौट रहे थे। कितना शीतल, शान्त, स्निग्ध वातावरण था यह! यहाँ मानो संसार से विरक्त ऋषि-मुनियो के रहने का स्थान हो। लेकिन हम जानते थे कि वघाडा वरफ से ढँका ज्वालामुखी है। इस शान्ति के पीछे भयानक असतोष, पीडा, और दुःसह दुर्निवार व्यथा है। यह आग अन्दर-ही-अन्दर सुलग रही है और जव फूटकर निकलेगी, तो शासक वर्ग की लाखो-लाखो कोशिशों से भी वुझाए न वुझेगी।

(३)

बाँध

प्रयाग का बाँध अकवर बादशाह ने बनवाया था। वह प्रयाग स्टेशन के निकट छोटे वघाड़े से शुरू होकर, नाग-वासुकि और दारागंज होता हुआ, सगम पर स्थित किले से मिल जमुना के पुल तक चला गया है। यदि अकवर ने कुछ और अपने राज्य-काल में न किया होता, तो भी यह बाँध उसकी कीर्त्ति अक्षय और अजर-अमर बनाने के लिये काफी होता। जव गगा मे बाढ आती है, और सावन-भादो के महीनो मे नगर त्रस्त होकर हाहाकार कर उठता है, तव यही बाँध वज्र के समान कठिन होकर, उस क्षुब्ध सागर-सी हिलोर मारती गगा को रोकता है, और प्रयाग के नर-नारियो को उसके रोष से बचा लेता है! इसीलिए इस बांध की गिनती पिरामिड और ताज के समान अद्भुत् वस्तुओ मे होनी चाहिये। अन्तर केवल इतना है, कि पिरामिड और ताज तो मृतो के स्मारक है,

दिलाती थी। लतीफ मियाँ बड़े गभीर, शिष्ट और मीठा बोलने वाले थे। वे हसन निजामी की कहानियों का स्मरण दिलाते थे। ज़रूर ही वे किसी शाही खान्दान के राजकुमार थे, जिन्होंने दुर्दिनों मे पड़कर किताब सीने का पेशा अपनाया था।

इसी गाँव मे काले खाँ भी रहता था। उसकी छोटी-सी डाढी और उदास, अफीमी आँखें आपको हुमायूँ बादशाह की याद दिलाती थी। काले खाँ यूनिवर्सिटी में चपरासी था; जब इलाहाबाद मे भारी दगे हुए थे, उन्ही मे वह मारा गया था। यहाँ गाँव वालो में बहस कभी-कभी होती थी, लेकिन आपस मे कोई मनमुटाव न था। बात कुछ इस तरह से होती थी; हिन्दू कहते, गांधी जी ने हिन्दुस्तान को सुराज दिला दिया; मुसलमान कहते : अँग्रेज़ो ने दिल्ली की सल्तनत जवाहरलाल को दे दी! इसी तरह की बातचीत होती थी।

महावीर इडियन प्रेस मे काम करता था, वह काग्रेसी मत का था। लतीफ मियाँ लीगी थे। यूनिवर्सिटी के चपरासी लाल झडे की यूनियन मे सगठित थे; वे कहते, "फूट अँग्रेज़ कराते है; इनको मिलकर निकालना चाहिए। इसके बाद ही देश मे अमन-चैन हो सकता है।" इसे महावीर और लतीफ मियाँ भी स्वीकार करते।

इस गाँव मे दूर-दूर काम करने वाले मजदूर भी रहते थे। सीतल लीडर प्रेस मे काम करता था। तेग अली माया प्रेस में, शमशुद्दीन गवर्मेन्ट प्रेस मे।

कुछ लोग इक्के चलाते थे। जब दगो के सबब रोज़ शहर में करफ्यू लगा रहता, तो ये सब लोग बड़े परेशान हुए थे। रोज़गार बन्द हो गया; घोड़े भूखे मरने लगे। घर मे एक वक्त रोटी पकती थी। हर तरह से मुसीबत थी। काम पर जाने मे भी मुसीबत थी। हुसैनी को रामबाग मे किसी ने छुरा मार दिया; जब रात को उसकी लाश लेकर वे लोग कब्रिस्तान जा रहे थे, बगाली मुहल्ले में सनसनी मच गई कि "मुसलमान चढ़ आए" और भागकर इन लोगो को जान बचानी

पडी। इसी तरह सूरज को नखास-कोने पर एक भीड ने घेरकर मारा था। यह सब होते हुए भी गाँव के गरीबों मे भाई-चारा बना था। लडाई तो बाबू लोगो मे अँग्रेजी के अखबार पढ़कर होती थी। उन्ही की बातें सुनकर ये लोग भी दुनिया की खबरो से परिचित हो जाते थे।

(२)

नाग-वासुकी का मेला लगा था। इसकी भीड रेल के फाटक से दारागज तक फैली थी। बाँध पर बच्चों, औरतो, देहातियो की बाढ-सी उमड़ रही थी। पीपनी और साँप बेचने वालों की खूब बिक्री हो रही थी। कही चरख लगे थे जिन पर बच्चे झूल रहे थे; कही चाट और खोंचे वालो का बाजार गर्म था। तेल और गुड़ की मिठाइयो पर बच्चे मक्खियो की तरह टूट रहे थे।

ईद को छोडकर गाँव वालो के लिए यही साल भर का सबसे बड़ा मेला था। फर्क यह था कि यह मेला उनके दरवाज़े पर ही लगता था। बरसात मे यह मेला जुड़ता था, जब गर्मी भर का दबा उत्साह काले-नीले बादलो और रिमझिम गिरती मेह की बूंदों को देखकर उमड़ पड़ता था। बच्चे झूलों मे झूलते थे और लम्बी-लम्बी पेंग लेते थे, लड़कियाँ गुड़ियाँ लेकर गाँव के बाहर जातीं, जहाँ उनके भाई कमचियो से उन गुड़ियो को पीटते थे।

इस त्योहार मे हिन्दू, मुसलमान, गाँव के सभी लोग हिस्सा लेते थे। बच्चे साफ-साफ कपड़े पहनकर धेला-पैसा बडों से माँगकर निकल पडते और जब तक मेला रहता, उसी की धुन मे मस्त रहते। हुसैनी का लड़का लँगडा पैदा हुआ था। उसके दोनो पैर खराब थे। वह पेट के बल रेंगकर चलता था। वह भी मेले मे जाने के लिए जिद कर रहा था। उसकी माँ ने बहुत कहा, 'बेटा, तू कहाँ जायगा,' लेकिन वह न माना। आखिर को हुसैनी की एक लम्बी कमीज़ गले मे लटका कर वह भी कछुए की तरह पेट के बल रेंगकर मेले की तरफ़ चल दिया।

ऊपर नावे चलने लगती। चारो ओर हरियाली छा जाती, चरवाहे पेडों के नीचे लेट कर गाते। शाम को हवाखोर बॉध पर घूमने के लिए गोल बनाकर निकलते। गॉव की ओर पीठ मोड़कर वे आकाश के चटकीले रगो की, गगा की उमडती, हुँकार करती धारा कीं, वॉध के पार कब्रिस्तान की नीरवता और उदासी की तारीफ के पुल बॉधते। आसमान मे मँडराते काले, कुरूप गिद्धो को तेखकर भी न देखने की कोशिश करते। क़ब्रिस्तान के इर्द-गिर्द सड़ती, छितराई हड्डियो की दुर्गन्ध से वे नाक वंद करके जल्दी-जल्दी आगे वढ जाते। दूर आकाश पर नाग-वासुकि के मदिर पर दृष्टि जमाकर वे मन-ही-मन इस सौन्दर्य की प्रशसा करते। चित्रकार और कवि इसे मन मे वॉधकर घर ले जाते और वच्चों की चिल्ल-पों और पत्नी की कर्कशता को भूलकर शव्दो या रेखाओ मे व्यक्त करने का प्रयत्न करते।

गॉव रेल के क्रॉसिग से सटा ढालू रास्ते के दोनो ओर वसा था। यह रास्ता गॉव में जाता था, इसलिए कच्चा था; गर्मी में यहाँ मनो धूल उड़ती और रास्ते मे खेलते बच्चो, और काम पर आते-जाते युवाओ और बूढ़ो के फेफडो मे तह जमा कर वैठ जाती। फिर वे आजीवन सूखी, कर्कश खॉसी खाँस कर उसे वाहर निकालने की विफल चेष्टा करते थे। बरसात मे यही धूल कीचड़ वन जाती और अनेक सॉप-बिच्छू आदि इसकी शीतलता मे शरण लेते।

रात मे अगणित बिजली की बत्तियो से स्टेशन जगमग कर उठता। सिगनल की लाल, हरी बत्तियाँ जहॉ-तहाँ चमक उठती और रेल के फाटक पर मिट्टी के तेल की एक बड़ी भारी वत्ती गाँव का अंधेरा चीरने का विफल प्रयास करती। रेल से उतरते यात्री स्टेशन के उजाले से चकाचौध हो जाते और अँधेरे के हृदय मे वसे उस गॉव की कल्पना भी न कर सकते थे।

इस गॉव मे सभी तरह के लोग रहते थे। पक्की सड़क से सटे अच्छे मकानों में कुछ वावू लोग रहते थे। इनसे कुछ चुंगी के स्कूलो मे मास्टर थे, कुछ संघर्ष करते वकील थे; दो-एक आना, आधा आना

ज़मीन के मालिक थे—यानी ज़मीदार थे। इनमें कुछ मुसलमान भी थे। यह पढ़े-लिखे हिन्दू-मुसलमान एक साथ उठते-बैठते थे और बाक़ी बस्ती और इनके बीच मानों एक अदृश्य रेखा खिची थी। गाँव के मालिक हिन्दू थे और बस्ती अधिकतर मुसलमानो की थी। सफेद-पोशो और ग़रीबो को यह अदृश्य लकीर दो ससारो मे बॉटती थी।

लकीर के पार मानो आदिम युग का साम्राज्य था। जगल की पुरानी आबादियो की तरह एक हद तक यहॉ मनुष्य जन्मते, बड़े होते और मरते थे। एक ओर सभ्यता ने बन को धीरे-धीरे कुतरना शुरू कर दिया था, किन्तु दूसरी ओर बर्बरता का बन मानवता को फाड-खाने के लिए मुँह बाए आ रहा था।

गॉव में बीच रास्ते मे बैठकर बच्चे पेशाब और शौच करते थे। इन बच्चो मे अनेक रोगी थे; किसी की टाँग टूटी थी, किसी का हाथ। जब वे पैदा हुए थे, तब वे लकीर के पार वाले बच्चो के समान ही थे। लेकिन अब उधर के बच्चे तो साफ कपड़े पहनकर स्कूल आदि जाते थे, रोग, गरीबी, कुरूपता के खिलाफ सघर्ष कर रहे थे, लेकिन इधर ये नग-धड़ग, कुरूप, रोगी बच्चे घास-फूस की तरह बढते थे और नित्य सभ्यता की लड़ाई मे हार रहे थे।

गाँव के गरीबो मे अधिकतर शहर में नौकरी करते थे, कुछ खेती करते थे। साग-भाजी, खरबूजे, ककड़ी आदि वे आस-पास की जमीन मे उगाते और पास-पडोस मे बेच आते थे। बच्चे गोबर इकट्ठा करते और बाद में उसकी कडी बनकर बिकती। यह लोग सिरो पर टोकरी रखकर पौहों के पीछे चला करते; जैसे ही कोई जानवर गोबर करता, बच्चो की भीड़ उधर निकलती। इस सघर्ष मे अकसर मार-पीट भी हो जाती थी। इन अशिक्षित बच्चो के महाभारत का कारण विशुद्ध, भारतीय गोबर ही होता।

बड़ो में लतीफ़ मियाँ एक प्रेस में दफ्तरी थे; आप फूंस हो चुके थे। आपकी लम्बी, सफेद डाढ़ी पुराने यहूदी महापुरुषों की याद

ऊपर नावे चलने लगती। चारो ओर हरियाली छा जाती, चरवाहे पेड़ों के नीचे लेट कर गाते। शाम को हवाखोर वाँध पर घूमने के लिए ग़ोल वनाकर निकलते। गाँव की ओर पीठ मोड़कर वे आकाश के चटकीले रगो की, गगा की उमड़ती, हुँकार करती धारा की, वाँध के पार क़ब्रिस्तान की नीरवता और उदासी की तारीफ के पुल वाँधते। आसमान मे मँडराते काले, कुरूप गिद्धो को तेखकर भी न देखने की कोशिश करते। कब्रिस्तान के इर्द-गिर्द सड़ती, छितराई हड्डियों की दुर्गन्ध से वे नाक वद करके जल्दी-जल्दी आगे वढ़ जाते। दूर आकाश पर नाग-वासुकि के मदिर पर दृष्टि जमाकर वे मन-ही-मन इस सौन्दर्य की प्रशसा करते। चित्रकार और कवि इसे मन मे वाँधकर घर ले जाते और वच्चों की चिल्ल-पों और पत्नी की कर्कशता को भूलकर शव्दो या रेखाओं मे व्यक्त करने का प्रयत्न करते।

गाँव रेल के क्रॉसिग से सटा ढालू रास्ते के दोनो ओर वसा था। यह रास्ता गाँव मे जाता था, इसलिए कच्चा था; गर्मी मे यहाँ मनो धूल उड़ती और रास्ते मे खेलते वच्चों, और काम पर आते-जाते युवाओ और वूढो के फेफड़ों मे तह जमा कर वैठ जाती। फिर वे आजीवन सूखी, कर्कश खाँसी खाँस कर उसे वाहर निकालने की विफल चेष्टा करते थे। वरसात मे यही धूल कीचड़ वन जाती और अनेक साँप-विच्छू आदि इसकी शीतलता मे शरण लेते।

रात मे अगणित विजली की वत्तियों से स्टेशन जगमग कर उठता। सिगनल की लाल, हरी वत्तियाँ जहाँ-तहाँ चमक उठती और रेल के फाटक पर मिट्टी के तेल की एक वड़ी भारी वत्ती गाँव का अँधेरा चीरने का विफल प्रयास करती। रेल से उतरते यात्री स्टेशन के उजाले से चकाचौंध हो जाते और अँधेरे के हृदय मे वसे उस गाँव की कल्पना भी न कर सकते थे।

इस गाँव मे सभी तरह के लोग रहते थे। पक्की सड़क से सटे अच्छे मकानों मे कुछ वावू लोग रहते थे। इनमे कुछ चुंगी के स्कूलों मे मास्टर थे, कुछ सघर्प करते वकील थे; दो-एक आना, आधा आना

ज़मीन के मालिक थे—यानी जमीदार थे। इनमे कुछ मुसलमान भी थे। यह पढ़े-लिखे हिन्दू-मुसलमान एक साथ उठते-बैठते थे और बाकी बस्ती और इनके बीच मानों एक अदृश्य रेखा खिची थी। गाँव के मालिक हिन्दू थे और बस्ती अधिकतर मुसलमानो की थी। सफेद-पोशो और ग़रीबो को यह अदृश्य लकीर दो ससारो मे बाँटती थी।

लकीर के पार मानो आदिम युग का साम्राज्य था। जंगल की पुरानी आबादियों की तरह एक हद तक यहाँ मनुष्य जन्मते, बड़े होते और मरते थे। एक ओर सभ्यता ने बन को धीरे-धीरे कुतरना शुरू कर दिया था, किन्तु दूसरी ओर बर्बरता का बन मानवता को फाड-खाने के लिए मुँह बाए आ रहा था।

गाँव मे बीच रास्ते में बैठकर बच्चे पेशाब और शौच करते थे। इन बच्चो मे अनेक रोगी थे; किसी की टाँग टूटी थी, किसी का हाथ। जब वे पैदा हुए थे, तब वे लकीर के पार वाले बच्चो के समान ही थे। लेकिन अब उधर के बच्चे तो साफ कपड़े पहनकर स्कूल आदि जाते थे, रोग, गरीबी, कुरूपता के खिलाफ सघर्ष कर रहे थे; लेकिन इधर ये नग-धड़ग, कुरूप, रोगी बच्चे घास-फूस की तरह बढते थे और नित्य सभ्यता की लड़ाई मे हार रहे थे।

गाँव के गरीबो में अधिकतर शहर में नौकरी करते थे, कुछ खेती करते थे। साग-भाजी, खरबूजे, ककड़ी आदि वे आस-पास की ज़मीन मे उगाते और पास-पड़ोस में बेच आते थे। बच्चे गोबर इकट्ठा करते और बाद में उसकी कंडी बनकर बिकतीं। यह लोग सिरो पर टोकरी रखकर पौहों के पीछे चला करते; जैसे ही कोई जानवर गोबर करता, बच्चो की भीड़ उधर निकलती। इस सघर्ष मे अकसर मार-पीट भी हो जाती थी। इन अशिक्षित बच्चो के महाभारत का कारण विशुद्ध, भारतीय गोबर ही होता।

बड़ो में लतीफ़ मियाँ एक प्रेस में दफ्तरी थे, आप फूंस हो चुके थे। आपकी लम्बी, सफेद डाढ़ी पुराने यहूदी महापुरुषो की याद

दिलाती थी। लतीफ मियाँ बड़े गंभीर, शिष्ट और मीठा बोलने वाले थे। वे हसन निज़ामी की कहानियो का स्मरण दिलाते थे। ज़रूर ही वे किसी शाही ख़ान्दान के राजकुमार थे, जिन्होंने दुर्दिनों में पड़कर किताब सीने का पेशा अपनाया था।

इसी गाँव में काले ख़ाँ भी रहता था। उसकी छोटी-सी डाढ़ी और उदास, अफीमी आँखें आपको हुमायूँ बादशाह की याद दिलाती थी। काले ख़ाँ यूनिवर्सिटी में चपरासी था; जब इलाहाबाद में भारी दंगे हुए थे, उन्हीं मे वह मारा गया था। यहाँ गाँव वालों में बहस कभी-कभी होती थी, लेकिन आपस मे कोई मनमुटाव न था। बात कुछ इस तरह से होती थी; हिन्दू कहते, गांधी जी ने हिन्दुस्तान को सुराज दिला दिया; मुसलमान कहते : अँग्रेज़ो ने दिल्ली की सल्तनत जवाहरलाल को दे दी! इसी तरह की बातचीत होती थी।

महावीर इडियन प्रेस मे काम करता था, वह कांग्रेसी मत का था। लतीफ मियाँ लीगी थे। यूनिवर्सिटी के चपरासी लाल झडे की यूनियन मे सगठित थे, वे कहते, "फूट अँग्रेज़ कराते हैं; इनको मिलकर निकालना चाहिए। इसके बाद ही देश मे अमन-चैन हो सकता है।" इसे महावीर और लतीफ़ मियाँ भी स्वीकार करते।

इस गाँव मे दूर-दूर काम करने वाले मज़दूर भी रहते थे। सीतल लीडर प्रेस मे काम करता था। तेग अली माया प्रेस में, शमशुद्दीन गवर्मेन्ट प्रेस मे।

कुछ लोग इक्के चलाते थे। जब दगो के सबब रोज़ शहर में करफ्यू लगा रहता, तो ये सब लोग बड़े परेशान हुए थे। रोजगार बन्द हो गया; घोड़े भूखे मरने लगे। घर मे एक वक्त रोटी पकती थी। हर तरह से मुसीबत थी। काम पर जाने में भी मुसीबत थी। हुसैनी को रामबाग में किसी ने छुरा मार दिया; जब रात को उसकी लाश लेकर वे लोग कब्रिस्तान जा रहे थे, बगाली मुहल्ले में सनसनी मच गई कि "मुसलमान चढ़ आए" और भागकर इन लोगों को जान बचानी

पड़ी। इसी तरह सूरज को नख़ास-कोने पर एक भीड़ ने घेरकर मारा था। यह सब होते हुए भी गॉव के गरीवो में भाई-चारा बना था। लडाई तो बाबू लोगो मे अँग्रेज़ी के अखबार पढ़कर होती थी। उन्ही की बाते सुनकर ये लोग भी दुनिया की खबरो से परिचित हो जाते थे।

(२)

नाग-वासुकी का मेला लगा था। इसकी भीड रेल के फाटक से दारागज तक फैली थी। बाँध पर बच्चों, औरतो, देहातियो की बाढ-सी उमड़ रही थी। पीपनी और सॉप वेचने वालों की खूब बिक्री हो रही थी। कही चरख लगे थे जिन पर बच्चे झूल रहे थे, कही चाट और खोचे वालो का बाज़ार गर्म था। तेल और गुड़ की मिठाइयो पर बच्चे मक्खियो की तरह टूट रहे थे।

ईद को छोड़कर गॉव वालो के लिए यही साल भर का सबसे बड़ा मेला था। फर्क यह था कि यह मेला उनके दरवाज़े पर ही लगता था। बरसात मे यह मेला जुड़ता था, जब गर्मी भर का दबा उत्साह काले-नीले बादलो और रिमझिम गिरती मेंह की बूंदो को देखकर उमड़ पडता था। बच्चे झूलो मे झूलते थे और लम्बी-लम्बी पेग लेते थे, लड़कियाँ गुड़ियाँ लेकर गॉव के बाहर जाती, जहाँ उनके भाई कमचियो से उन गुड़ियों को पीटते थे।

इस त्योहार मे हिन्दू, मुसलमान, गाँव के सभी लोग हिस्सा लेते थे। बच्चे साफ-साफ कपड़े पहनकर धेला-पैसा बड़ों से माँगकर निकल पडते और जब तक मेला रहता, उसी की धुन मे मस्त रहते। हुसैनी का लडका लँगड़ा पैदा हुआ था। उसके दोनो पैर खराब थे। वह पेट के बल रेंगकर चलता था। वह भी मेले मे जाने के लिए ज़िद कर रहा था। उसकी माँ ने बहुत कहा, 'बेटा, तू कहाँ जायगा,' लेकिन वह न माना। आखिर को हुसैनी की एक लम्बी कमीज़ गले मे लटका कर वह भी कछुए की तरह पेट के बल रेंगकर मेले की तरफ चल दिया।

अगर रमज़ानी किसी अच्छे घर पैदा होता, तो किसी बड़े शहर मे अच्छे-अच्छे डाक्टर उसकी टाँगों में चीरा लगाकर ठीक कर देते। अगर वह किसी स्वतन्त्र देश अथवा समाजवादी संघ मे जन्म लेता, तो भी शायद किसी खैराती या सरकारी अस्पताल मे उसका इलाज हो गया होता। प्लेटो के जन-तन्त्र में इस कुरूपता का अन्त जन्म के समय ही हो जाता। लेकिन रमज़ानी ने गरीब, दास भारत मे जन्म लिया था, अतएव वह पगु अपनी कुरूपता और वेदना को समाज के सामने घोपित कर रहा था। वह मानों कह रहा था, "तुम्हारे देश मे हज़ारों-लाखो रमज़ानी हैं; उन्हें अपनी बस्ती मे देखो, मोहल्ले मे देखो ! इस विडम्बना का कुछ प्रतिकार सोचो, इसका अन्त करो !"

रमज़ानी को कछुए की तरह सरकते देख मेले में एक नई सनसनी मच गई। लड़के क्रूरता और कठोरता से चिल्लाने लगे, "कछुआ आया! कछुआ!" उसे अपनी पीपनी आदि दिखाकर ललचाने लगे और अन्त मे सटी आदि से कुरेदने भी लगे। रमज़ानी आनंदित होकर सड़क के एक ओर किसी भारी-भरकम जानवर की तरह पड़ रहा। कुम्भ मेले मे किसी साधू या बाजीगर के साथ आए किसी गोह अथवा प्रदर्शन के जन्तु की तरह रमज़ानी लग रहा था।

मेले में कुछ सफ़ेदपोश भी आ जाते थे। इनमें से एक झुंड ने रमज़ानी को देखा। वे ठिठककर रुक गए और बोले : "My God, is that human or animal?" यह लोग यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा पा रहे थे, साहित्य-सेवा करते थे, कविता-कहानी लिखते थे, यूनियन मे उच्च पदाधिकारी थे, राजनीतिक नेता थे, बढ़िया भापण देते थे।

रमज़ानी ने बड़े दयनीय भाव से सर उठाकर इनकी ओर देखा। मानव को पहचान कर कवि जी ने कहा : "ओफ़, दीन-कुरूप भारत, तुझे कितनी उन्नति करनी है! You are a museum piece."

रमजानी ने भी समझा कि उसके प्रति उपेक्षा और घृणा ही इस मेले में अधिक तीव्र थी। वह अपने उदास, 'पत्थर से मन को लेकर वापस रेंगता हुआ घर की ओर चल दिया।

(३)

आजकल गॉव मे शाम को अक्सर सभाएँ होती है। कभी-कभी हिन्दू नेता आते है और हिन्दुओ की सभा मे कहते है : "गीता मे कहा है, आततायी को मारना धर्म है। अहिंसा कमजोर का हथियार है। हम शस्त्र-बल से हिन्दुस्तान को एक करेंगे।" बाबू लोग ताली पीटते, लेकिन जनता इस भाषा को न समझती और उदासीन रहती।

मुसलमान नेता भी गॉव मे आते और ढोल पीटकर कहते : "मुट्ठी-भर मुसलमानो ने तलवार से हिन्दुस्तान को जीता था। अब एक बार फिर जेहाद होगी ! बोलो, अल्लाहो अकबर !"

लेकिन अक्सर इधर मज़दूर सभा और किसान सभा के नेता ही आते है। इनकी भाषा महावीर और तेगअली, रामहरख और लतीफ समझते है। इनके साथ अनेक हड़ताले मजदूर लड़ चुके थे और इन्हें पहचानते थे। अकाल के दिनों मे इन्ही नेताओ ने राशन कार्ड भी दिलाए थे। यह लोग कहते : "मजदूर और किसानो, तुम्हारे ही बल से धरती चलती है। तुम अन्न उपजाते हो, और कपड़े बनाते हो। लेकिन तुम्ही नगे-भूखे हो ! तुम्हारी हुकार से शासक कॉपते है। अपना सगठन बनाओ। सरमायादारी और जमीन्दारी का अन्त करो। अँग्रेज तो भाग रहा है। अब हिन्दुस्थान मे जनता का राज होगा। देश मे अन्न की कमी है, तुम्हारे चारो ओर जमीन खाली पड़ी है, इसे जोतो और जनता का पेट भरो। भाई-भाई की फूट बन्द करो; घर की आग बुझाओ !"

इन सभाओ ने गाँव पर बड़ा प्रभाव डाला। सफेदपोशो में खलबली मच गई। वे बोले, "गाँव मे बल्वा हो जायगा।" वकील साहब ने कहा : "नही, ये लोग मजहब के दुश्मन है।" मास्टर साहब ने कहा : "नही, ये लोग गरीबो के लिए जी तोड़कर लड़ते है। मास्टरों

की हड़ताल मे इन्होंने हमारी वड़ी मदद की थी!" जमीन्दार साहव ने पुलिस को खवर कर दी।

शाम को वडी जोरदार सभा हुई। पुलिस भी मौजूद थी। यूनियन के प्रसिद्ध नेता रामआसरे वोल रहे थे : "साथियो, अव गाँव की फिज़ा वदल चुकी है। अव लतीफ मियाँ और महावीर पुलिस को देखकर नहीं काँपते। सूवे मे जनता की सरकार है। अगर तुममे ताकत है, तो पुलिस तुमको दवा नही सकती। मुफलिस और मज़लूम के दिन अव फिरेंगे।" जोर से तालियाँ पिटने लगी और 'इन्किलाव ज़िन्दावाद' के नारो से आसमान गूंज उठा।

तभी अचभे से सव ने मुड़कर देखा, कछुए की तरह जमीन पर पड़ा रमज़ानी चिल्ला रहा था · "इन्किलाव जिन्दावाद!" यह दृश्य देख कर बूढे मुस्कुराए, सफेदपोश मुस्कुराए और अन्त मे पुलिसमैन भी मुस्कुरा उठे।

रमजानी ने और भी ऊँचा स्वर उठाकर कहा : "इंकिलाव जिन्दावाद!"

शायद उसकी कल्पना मे भी उसके लिए और गाँव के लिए किसी नए भविष्य का द्वार खुल रहा था।

५

जेठ की दुपहरी

उस समय ठीक दोपहर था। सड़को पर भयावह सन्नाटा छाया था। कभी कोई इक्का-दुक्का राहगीर सिर पर कपडा लपेटे गुनगुनाता निकल जाता था, या कभी किसी एकाकी इक्के की खड़खड़ और कुत्ते की रिरियाहट इस मौत-सरीखी शान्ति को भंग करती थी। कर्नलगज के दुकानदार अपनी दूकानो के सामने पर्दे डाले ऊँघ रहे थे। शायद ही कभी कोई रिक्शावाला नल के पास रुककर पानी पीता था, और फिर तेज़ी से आगे बढ़ जाता था।

यह स्थान प्रयाग के इतिहास में प्रसिद्ध है। यही भारद्वाज मुनि का आश्रम ऊँचे टीले पर बसा है। अनेक गरीब, भिखमंगे, विधवाएँ, यतीम यहाँ परलोक की आशा मे जमघट लगाये जमे रहते है, "प्रभु के द्वार" आने के अलावा उनके पास और चारा ही क्या है? इस भारद्वाज आश्रम के बारे मे अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कहते है, यहाँ धरती के नीचे बड़ी-बड़ी सुरगें है, जहाँ पडे तरुण विधवाओ को गायब कर देते है! लेकिन यह सब गप है। जब तक तरुण विधवाओ के लिए कोई सामाजिक उपचार नही होता, बिना सुरगों के भी वे गायब होती रहेगी!

इसी भारद्वाज-आश्रम को लेकर प्रकांड पडित, बगाल के बड़े लाट, डाक्टर काटजू और पडित शिवाधार पाण्डे के लम्बे-लम्बे निबध समाचार-पत्रो मे निकले है। एक मत है कि पूर्व काल मे इसी टीले के नीचे त्रिवेणी-सगम था; दूसरा मत है कि सगम कही और था, और भारद्वाज आश्रम भी रामायण-काल मे कही और था। इस विराट वितण्डावाद का यही तथ्य था!

बड़ी भीड़ सुबह-शाम इस भारद्वाज आश्रम पर जुड़ती है, पर इस भीषण ग्रीष्म की दोपहरी मे बड़े-बडे धर्मध्वजो का साहस भी डिग रहा था। और मौत के समान सन्नाटे मे भारद्वाज आश्रम लिपटा पड़ा था।

आसमान से अखण्ड ज्वाला बरस रही थी, मानो असंख्य 'आर्क' लैम्प किसी महान वैज्ञानिक ने एक साथ जला दिए हो! इस असीम आलोक के आगे आँख ठहरती न थी। बीच-बीच मे गरम हवा का एकाध झोका उठता और पेड़ो को झकझोर कर निकल जाता था। कुछ देर बाद यही हवा लू मे परिणत होकर श्मशान की आग के समान शरीर को धू-धू करके जलाने लगेगी। इससे बचने के लिए नर-नारी बूढ़े-बच्चे आदिम नर-पशुओं की तरह मानो गुफाओ और कन्दराओ की शरण खोजते फिरेंगे।

यहीं सामने पं० जवाहरलाल नेहरू का महल 'आनन्द-भवन' है। किसी जमाने में यह हँसी और विनोद से गुलजार रहता था, लेकिन जब

से दिल्ली की सल्तनत अँग्रेज़ पंडित नेहरू को देकर चले गए, तब से इस पाषाण-कंकाल की आत्मा इस दोपहरी और रात के सन्नाटे मे फिर से उस आमोद-प्रमोद की कल्पना रचती है, और टैगोर के क्षुधित पाषाण के समान पल भर के लिए पुनर्जीवित हो उठती है। इस महल के दरवाज़ों को पार करके गर्मी, धूप और लू कभी अन्दर न घुस पाती थी, ऐसी चतुराई से मानव-रूपी विश्वकर्मा ने इस प्रासाद को बनाया था। एक लम्बे अर्से के बाद दिन भर के लिए यह महल खुला था, जब नेहरू 'माउन्टबेटेन' का प्रयाग मे स्वागत कर रहे थे; उसके बाद फिर दीर्घ काल के लिए इस प्रासाद के पट बन्द हो गए।

भारद्वाज-आश्रम के समान ही 'आनन्द-भवन' के दर्शन के लिए भी यात्रियों का ताँता बँधा रहता है, लेकिन इस भीषण ज्वाला मे बाहर निकलने की किसी मे हिम्मत न थी।

भारद्वाज-आश्रम के सामने एक दूसरा ऊँचा टीला है, जहाँ सुबह-शाम लोग कसरत करते हैं, कुश्ती लड़ते है, ज़ोर आजमाते है, लेकिन इस वक्त उस अखाड़े मे दो-एक बकरियाँ नीम की पत्ती चर रही थीं और बीच-बीच मे मिमिया उठती थी।

अलिफ़लैला मे एक कहानी है, जहाँ कोई यात्री एक शहर मे पहुँचता है; इस शहर मे सब कोई किसी दैवी विपदा के कारण मृत्यु की अखण्ड निद्रा मे सोए मिलते हैं।

दोपहर मे मानो प्रयागराज भी ऐसी ही किसी विपत्ति का शिकार बन जाता है। सुबह-शाम इस मोह-निद्रा से वह जाग उठता है। असंख्य यातनाएँ सह कर भी वह फिर-फिर जी उठता है। लेकिन वह उस युग की कल्पना भी कर रहा है, जब मनुष्य प्रकृति को बदलेगा। तब 'प्रभु के द्वार' का आह्वान वह स्वीकार न करेगा, सभी पृथ्वी पर तब मनुष्य का अधिकार होगा! तब हिम, वर्षा और आतप मनुष्य को न सता सकेंगे। तभी आदिम युग का अन्त होगा और सभ्य इतिहास का आरम्भ!

६

स्वराज्य-भवन

स्वराज्य-भवन में आजकल गीदड़ रोते है। वह शान-शौकत और आन-बान जो प० मोतीलाल नेहरू के जमाने मे यहाँ कायम थी, और वह आदर-सम्मान जो कौम की निगाहो मे ए० आई० सी० सी० के दफ्तर के लिए हासिल था, अब मुगल सम्राटो और बिरला के साये मे पली दिल्ली पहुँच गया है। वही अब प० जवाहरलाल नेहरू ने आसन जमाया है, और कांग्रेस का दफ्तर भी सरकार की देख-रेख मे पलने के लिए वहाँ पहुँच गया है।

एक अजीब उदासी अब स्वराज्य-भवन पर छा गयी है। दीवारों और छतों से प्लास्टर झडा करता है, लॉन उजड रहे है, और वे बडे, भारी-भरकम कमरे, जहाँ किसी जमाने मे रईसो की हँसी गूँजती थी, नेताओ की गभीर बाते होती थी, अब मुगलो के आरामगाहो की तरह वीरान पड़े हैं। इस महल मे अब कस्तूर बा की यादगार मे कताई-बुनाई का काम शुरू होगा, और गाँवो की यतीम और विधवा औरते चमगादड़ो के साथ रहेगी!

किसी जमाने मे प० मोतीलाल नेहरू यहाँ शाही ठाठ-बाट से रहते थे। बड़े-बड़े लाट-गवर्नर आपके मेहमान होते थे। वह नरम दल की राजनीति का जमाना था। हिन्दुस्तान ने करवट बदली। राजनीति का दरवाजा खोलकर जनता अन्दर दाखिल हुई। गाधी का युग शुरू हुआ। बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हिन्दुस्तान के अवाम ने लड़ी। लेकिन कही आकर ये लड़ाइयाँ रुक जाती थी। वह थी गांधी जी की अहिसा: राजनीति पर मध्य युग की लगाम। लेकिन स्वराज्य-भवन की रूह भी बदली। हैट की जगह गाधी टोपी ने ली, विदेशी कपड़ो की खद्दर ने। नरम दल के नेता गर्म पड रहे थे! लेकिन जवाहरलाल नेहरू एक कदम और भी आगे बढ़े। उन्होंने हिन्दुस्तान की राजनीति मे समाजवाद का नारा बुलन्द किया!

यह सब स्वराज्य-भवन ने देखा, जो कि अभी तक आनन्द-भवन के नाम से मशहूर था। अब उसके पड़ोस मे उससे भी आलीशान एक महल बनकर खड़ा हो रहा था, जो आगे चलकर आनन्द-भवन कहलाया। इस तरह ज़माने की रफ्तार वह देख रहा था।

'आनन्द-भवन' से 'स्वराज्य-भवन' बनना इस इमारत की कायापलट थी। अब वह राष्ट्रीय कॉंग्रेस का सदर दफ़्तर बन गया था। अब वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का दिल बन गया था, जिसकी हर धड़कन देश की रग-रग मे महसूस होती थी। इस ज़माने मे बड़ी ऊँच-नीच स्वराज्य-भवन ने देखी। सन् ३० का आन्दोलन, जब पुलिस का यहाँ पहरा बैठा और सन् ३६ का ज़माना भी, जब कि एक ओर तो कॉंग्रेस वज़ारतो की बाग ले रही थी और स्वराज्य-भवन सरकारी सदर दफ्तरो का मुकाबला कर रहा था, और दूसरी ओर हिन्दुस्तान की अनगिनत मज़दूर-किसान जनता सदियों की नीद से आँख मलकर जाग रही थी और राजनीति मे एक नई ताकत, एक नई आग का ऐलान कर रही थी! यही ताकत समाजवाद की आवाज़ बनकर राजनीति, कला और साहित्य, यानी जीवन के हर पहलू मे ज़ाहिर हो रही थी!

इस दौर में स्वराज्य-भवन की अजीब हालत थी। एक ओर तो वह सूबो की सरकारो की आवाज़ सुनता था, और दूसरी ओर सदियो से कुचली, पिसी-मज़दूर किसान जनता की! बडी कशमकश और खींच-तान उसकी आत्मा मे रहती थी। कॉंग्रेस के सभापति, प० जवाहरलाल नेहरू, सेक्रेटरी आचार्य कृपलानी। एक तकरीरो से समाजवाद की नीव रखने की कोशिश मे था, दूसरा चर्ख़े का चक्र चलाकर पूंजीवादी निज़ाम कायम रखने की कोशिश में। इन दोनों के बीच बहुत से डाक्टर लोग तरह-तरह के महकमो की जिम्मेदारी सम्हाले हुए थे, लेकिन आचार्य ने जो जाला बुना, वह धीमे-धीमे सभी डाक्टरों और पडितो का सफाया करता गया और आखिरकार वह खुद भी उसमे फँसकर उसके शिकार बन गये।

स्वराज्य-भवन एक बड़ी भारी मकड़ी का जाला बन गया, जिसका शिकार हिन्दुस्तान की जनता बन रही थी। सन् ३९ आया। जनता आज़ादी की जग में कूदने के लिए बेचैन थी, लेकिन मकड़ी जाला बुनती रही। वक्त का दरिया बहता गया और हम किनारे पर खड़े-खड़े उसके बहाव को देखते रहे। फिर पूर्व और पश्चिम से फासिस्त बर्बरता जीभ लपलपाती आगे बढने लगी, और तब स्वराज्य-भवन ने अचानक मानो नीद से जाग कुछ घी और तेल के टीन वह आग बुझाने के लिए इकट्ठे किये !

फिर न जाने क्या-क्या हुआ ? दुनिया का नक्शा बदलता ही गया। सन् ४२; स्वराज्य-भवन पर फिर ताला और पुलिस का पहरा; दीमको का स्वराज्य-भवन पर हमला। गान्धी जी की भूख-हडताल। हिन्दू-मुस्लिम फूट की बढ़ती लपटे। नेताओ की रिहाई; दुश्मन से बातचीत, जनता के बड़े-बडे मोर्चे, आखिरकार नेताओं की दुश्मन से सुलह, मुल्क का बटवारा और फिर भयानक खूँरेज़ी। ऐसी बातें, जिनकी वजह से शर्म से सिर झुक जाता है !

सभी कुछ तो स्वराज्य भवन ने देखा। एक बार फिर वह सरकार का सदर दफ्तर बन रहा था, लेकिन अब तो दोनो सदर दफ्तर एक हो रहे थे, कॉंग्रेस सरकार बन गयी थी।

स्वराज्य-भवन उजड गया! आनन्द-भवन भी उजड़ गया। नेता दिल्ली पहुँच गये। लेकिन जनता तो भूखी, थकी-मॉंदी, रास्ते की भिखारी बन रही है। नेताओ को स्वराज्य मिल गया, लेकिन जनता स्वराज्य-भवन के इर्द-गिर्द अब भी मँडरा रही है। दिल्ली मे नौकरशाही ने टोप की जगह खद्दर की गान्धी टोपी लगा ली है, काउसिल-हाउस को नेता लोग स्वराज्य-भवन समझने लगे है, लेकिन असली स्वराज्य-भवन वीरान पडा है; वहॉं उल्लू बोलते है।

एक अजब उदासी और थकान आज स्वराज्य-भवन के चेहरे पर छा गयी है। नेता लोग अपना बोरिया-बिस्तर बॉंधकर अँग्रेज़ो के महलों

में चले गये है। यहाँ अभी कोई इक्का-दुक्का तीर्थ-यात्री आ जाता है, तो उसकी आवाज इस उजड़ी इमारत मे गूँजकर सन्नाटे को कँपा देती है। लेकिन बाहर सडक पर आप आज भी वही पुराना नज़्ज़ारा देखते हैं, भूख, बेकारी, महामारी का बोलबाला! फिर एक बार महलों को छोड़कर राजनीति सड़कों पर आ रही है; फिर एक बार जनता अपने शोषको से मोर्चा लेगी, पूंजीवादी और जागीरदारी निज़ाम को उलटेगी; और तब फिर एक बार स्वराज्य-भवन आबाद होगा। फिर जनता की आवाज इन उजडे, वीरान आरामगाहो मे गूंजेगी!

७

नंगे पैर

मैं स्कूल मे मास्टरी का पेशा करता हूँ। इस पेशे की किसी ज़माने मे बड़ी शान थी। कहते है कि हमारे पूर्व-पुरुष अपने गुरुओ से बडे काँपते थे। द्रोणाचार्य को कौरव और पाडव कितना मानते थे! हमारे उपनिषदों मे गुरु-भक्ति की कितनी कहानियाँ है? चेले से कहा, 'गुरु दक्षिणा में सफेद कान वाले सौ घोडे लेगे।' बस, पूरा राज्य इसी तलाश मे लग जाता था। लेकिन अब तो मामला काफी बदल चुका है। मास्टर लोग वज़ीर आज़म से कहते हैं, 'हुजूर, हमें वही तनख्वाह दीजिए, जो आप अपने चपरासियो को देते हैं।' वे नाराज होकर लाठियों और जूतों का इनाम देते हैं। इसी से तो मुझे जूतों वाली बात याद आई। क्या अच्छा हो अगर हमे सचमुच के एक जोडी जूते मिल जायें! मैं अँग्रेजी स्कूल मे पढाता हूँ और मुझे साबुत जूतों की सख्त जरूरत है। मैं घर मे मोटा-झोटा खा सकता हूँ। कपड़ो की भारी दिक्कत होती है, किसी तरह कुछ कर लेता हूँ। लेकिन जूतो की वजह से तो सख्त मुसीबत है। नगे पर आना बड़ी शर्म की बात है। मै अँग्रेजी स्कूल का मास्टर हूँ न? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मास्टर होता, तो नंगे पैर आने मे दोष न होता।

मेरे पास तो एक ही जोड़ी जूते है, वे लड़ाई से पहले नए थे।

सुसराल से मुझे वे शादी मे मिले थे। लेकिन अब तो उनका तपसी बाबा भी कायाकल्प नही कर सकते। अनेक बार उनकी मरम्मत हो चुकी है। और मरहम-पट्टी भी काफ़ी हुई है, लेकिन अब वे साँस खीचने से इन्कार करते है! एक बार 'बाटा' को डेढ रुपया देकर मैंने उनके तले बदलवाए थे; एक बार ऊपर का चमड़ा भी बदल चुका है। सच पूछिए, तो ये वह जूते ही नही है, जो मुझे शादी मे मिले थे। इनकी पूरी कायापलट हो चुकी है। थेकलियॉ भी इनमे अनेक लग चुकी है। कील चुभती है, उँगलियाँ दिखाई पड़ती है, लेकिन नंगे पैर स्कूल आने की लज्जा से तो बचा हूँ।

सच मानिए, मैं आज कल निरन्तर जूतो की ही बात सोचता हूँ। यह 'बाटा' वाले बीस-बीस और तीस-तीस रुपए जूतो की कीमत मॉगते है। हरिजन आश्रम का भी यही हाल है। मैं पचास रुपए का मास्टर कहाँ से लाऊँ इतने रुपए? बीबी है, दो बच्चे है, बूढी मॉ है। घर का किराया दूं, या नाज लाऊँ? दस रुपया महीना अपनी कोठरी का देता हूँ: सन् ४२ मे मिल गई थी। अब तो तीस तक लोग देने को तैयार हो जाते है! न मालूम कब इन मुसीबतो का अन्त होगा?

मेरी भी क्या आदत पड़ गई है? सड़क पर चलता हूँ, तो लोगों के पैर देखता हुआ; और स्कूल में, तो पैर देखता हुआ। और मुझे लगता है, सब लोग मेरे जूतों को ही ध्यान से देख रहे है। जब मैं स्कूल की सीढी पर घंटा खत्म होने के बाद चढ़ता हूँ, तो मानो सिनेमा के चित्रपट की तरह पल भर मे सैकड़ो जूते मेरी निगाह से निकल जाते है। सेठ हुकमचद के लड़के के भारी-भरकम मोटे क्रेप सोल के जूते; दरोगा जी के लड़के के घड़ियाल की खाल के सैन्डल; डिप्टी साहब के लड़के के साबर के 'हाफ बूट', मोटर के टायर के बने सस्ते चप्पल; किरमिच के शू; असख्य नगे पैर बुद्ध के समान इस देश की भूमि पर जीवन की ध्रुव यात्रा करते। असख्य नगे पैर सड़कों पर, घरो में, गलियारो में; चतुर्दिक् यही नगे पैर मै देखता हूँ। मानो सड़क पर जूतो की मरम्मत

करने की दूकान लगाए मैं बैठा हूँ और निरन्तर मेरी निगाह लोगो के जूतो पर पड़ती हे। देखता हूँ, फटे जर्जर जूते; गठे-गठाए, थेकली लगे, धूल में सने देसी जूते; मोटर के टायर के वने चप्पल; लेकिन असंख्य नगे पैर। यही सड़क के किनारे वैठा मैं अपने दीन-हीन देशवासियो की जीवन के कठिन दुर्गम पथ पर अनन्त यात्रा देखता हूँ, और मानों सैकड़ो, हजारों लाखो-लाख पैर, सूखे दुवले, धूल से लथपथ, आगे वढ़े ही चले जाते हो!

इन आगे वढ़ते पैरो को रोकने की कोशिश होती है, लाठियो और गोलियो की मार से। आगे वढ़ते मास्टरों के कदमों को रोकने की कोशिश लखनऊ की सडको पर, आगे वढ़ते लड़को को रोकने की कोशिश कलकत्ते की सड़को पर, असख्य किसान-मजदूरों के वढते नगे कदमो को रोकने की देश भर मे कोशिश। सड़को पर पल्टन के भारी-भरकम वूटो की दिल दहलाने वाली चाप खट्-खट्, खट्-खट् आने लगती है। वजट का आधा खर्च इस पल्टन पर होता है। सड़को पर सेना के वूट-ही-वूट छा जाते हैं। मैं एक किनारे वैठा उनको देखता हूँ, और मानो धृतराष्ट्र के भीमकाय पैरो की तरह वूट पहने कोई मेरे हृदय को रौंदता चला आता है। असख्य मिलिट्री के वूट मेरे हृदय को रौंदते हुए चले जाते हैं। तिलगाना मे, मलावार मे, वंगाल के खेतो मे, रेल के स्टेशनों पर, कल-कारखानो मे, चारो तरफ से देश की जनता के हृदय को रौंदते हुए यह मिलिट्री के वूट चले आते है। इस देश के हृदय पर यह सैनिक वूट छा गए है। राष्ट्रीय वजट का आधा हिस्सा इन पर खर्च होता है। पल्टनिया किसान इन वूटो के लालच से, रुपए के लालच से, अपने किसान साथियो के हृदय को रौंदता हुआ चला जाता है, मजदूरो के हृदय को, मुझ जैसे निरीह मास्टरो के हृदय को रौंदता हुआ चला जाता हे।

मैं देखता हूँ भारी-भरकम, भीमकाय अजगर के समान, पेड़ो के वरावर ऊँचे, आसमान को छूते वूट चले आते है, और तिलंगाना की

तरह मेरे सीने को कुचलते हुए निकल जाते है। लेकिन जब मैं अपनी इस अर्द्ध-चेतना से जागता हूँ, तो फिर उन्ही असख्य नगे, धूल-धूसरित पैरो को जीवन की दुर्गम यात्रा मे विजय-पथ की ओर उल्लास से बढते देखता हूँ, और फिर मैं भी उठ कर उन्ही के साथ कदम मिला कर आगे, भविष्य की ओर, आशा के सुनहरे रंगो से भरे क्षितिज की ओर बढ़ने लगता हूँ।

८

कड़ा

उस दिन सुबह होते ही हम 'कड़ा' के लिए एक पुरानी, किराये की टुटिहल मोटर पर बैठकर चल दिये। यह कड़ा किसी जमाने मे मध्य देश की राजधानी था। यहाँ हिन्दुस्तान के बादशाह का प्रतिनिधि रहता था, जो कि सूबे का लाट बहादुर था। कौशाम्बी और प्रयाग से कम माहात्म्य कड़े का नही है। मीलों तक यहाँ टीले और खँडहर बिखरे पड़े हैं, इसके अलावा बाबा मलूकदास की समाधि भी यही है, उनका पुराना क्षत-विक्षत घर है, उनके उत्तराधिकारी है, उनके हस्तलिखित ग्रंथ हैं। ये सभी चीजें बड़ी जर्जर अवस्था मे है, और मानो पचभूतो के साथ मिलने के लिए बड़ी व्यग्र और अधीर है। लेकिन इस सब कामो के लिए अभी वक्त ही कहाँ आया है! अभी तो और इतने बड़े-बडे काम पडे है—सोमनाथ का मन्दिर, वन-महोत्सव, रेहन का बाँध आदि।

बहरहाल; सुबह ही सुबह बडे तड़के हम अपनी टुटिहल किराये की मोटर पर बैठकर कडा की ओर चल दिये। कड़ा इलाहाबाद से कोई २५-३० मील दूर पक्की सड़क पर है। हमारा अनुमान था कि दोपहर को एक-दो बजे तक घर लौटकर हम खाना खा सकेंगे। लेकिन मोटर की इच्छा कुछ और थी।

हमारी मोटर सचमुच नुमाइश मे रखने की चीज थी। उसके सभी अजर-पजर भारी, भयावह शब्द करते थे, उसके हॉर्न के अतिरिक्त,

करने की दूकान लगाए मैं बैठा हूँ और निरन्तर मेरी निगाह लोगो के जूतो पर पड़ती है। देखता हूँ, फटे जर्जर जूते; गठे-गठाए, थेकली लगे, धूल मे सने देसी जूते; मोटर के टायर के बने चप्पल; लेकिन असख्य नगे पैर। यही सडक के किनारे बैठा मै अपने दीन-हीन देशवासियो की जीवन के कठिन दुर्गम पथ पर अनन्त यात्रा देखता हूँ, और मानो सैकडो, हजारो लाखो-लाख पैर, सूखे दुबले, धूल से लथपथ, आगे बढ़े ही चले जाते हो!

इन आगे बढते पैरो को रोकने की कोशिश होती है, लाठियों और गोलियो की मार से। आगे बढ़ते मास्टरो के कदमों को रोकने की कोशिश लखनऊ की सड़को पर, आगे बढ़ते लड़को को रोकने की कोशिश कलकत्ते की सड़को पर, असख्य किसान-मजदूरो के बढते नगे कदमो को रोकने की देश भर मे कोशिश। सड़को पर पल्टन के भारी-भरकम बूटो की दिल दहलाने वाली चाप खट्-खट्, खट्-खट् आने लगती है। बजट का आधा खर्च इस पल्टन पर होता है। सड़को पर सेना के बूट-ही-बूट छा जाते हैं। मैं एक किनारे बैठा उनको देखता हूँ, और मानो धृतराष्ट्र के भीमकाय पैरो की तरह बूट पहने कोई मेरे हृदय को रौंदता चला आता है। असख्य मिलिट्री के बूट मेरे हृदय को रौंदते हुए चले जाते हैं। तिलगाना मे, मलाबार मे, बगाल के खेतो मे, रेल के स्टेशनो पर, कल-कारखानो मे, चारों तरफ से देश की जनता के हृदय को रौदते हुए यह मिलिट्री के बूट चले आते है। इस देश के हृदय पर यह सैनिक बूट छा गए है। राष्ट्रीय बजट का आधा हिस्सा इन पर खर्च होता है। पल्टनिया किसान इन बूटो के लालच से, रुपए के लालच से, अपने किसान साथियो के हृदय को रौदता हुआ चला जाता है, मजदूरो के हृदय को, मुझ जैसे निरीह मास्टरो के हृदय को रौदता हुआ चला जाता है।

मैं देखता हूँ भारी-भरकम, भीमकाय अजगर के समान, पेड़ो के बराबर ऊँचे, आसमान को छूते बूट चले आते है, और तिलंगाना की

तरह मेरे सीने को कुचलते हुए निकल जाते हैं। लेकिन जब मैं अपनी इस अर्द्ध-चेतना से जागता हूँ, तो फिर उन्ही असख्य नगे, धूल-धूसरित पैरो को जीवन की दुर्गम यात्रा मे विजय-पथ की ओर उल्लास से बढते देखता हूँ, और फिर मैं भी उठ कर उन्ही के साथ कदम मिला कर आगे, भविष्य की ओर, आशा के सुनहरे रंगो से भरे क्षितिज की ओर बढ़ने लगता हूँ।

८

कड़ा

उस दिन सुबह होते ही हम 'कड़ा' के लिए एक पुरानी, किराये की टुटिहल मोटर पर बैठकर चल दिये। यह कड़ा किसी ज़माने मे मध्य देश की राजधानी था। यहाँ हिन्दुस्तान के बादशाह का प्रतिनिधि रहता था, जो कि सूबे का लाट बहादुर था। कोशाम्बी और प्रयाग से कम माहात्म्य कड़े का नही है। मीलों तक यहाँ टीले और खँडहर बिखरे पड़े हैं; इसके अलावा बाबा मलूकदास की समाधि भी यही है, उनका पुराना क्षत-विक्षत घर है, उनके उत्तराधिकारी है, उनके हस्तलिखित ग्रथ हैं। ये सभी चीजें वडी जर्जर अवस्था मे है, और मानो पंचभूतो के साथ मिलने के लिए बड़ी व्यग्र और अधीर है। लेकिन इस सब कामो के लिए अभी वक्त ही कहाँ आया है! अभी तो और इतने बड़े-बडे काम पडे हैं—सोमनाथ का मन्दिर, वन-महोत्सव, रेहन्द का बांध आदि।

बहरहाल, सुबह ही सुबह बड़े तडके हम अपनी टुटिहल किराये की मोटर पर बैठकर कड़ा की ओर चल दिये। कडा इलाहाबाद से कोई २५-३० मील दूर पक्की सडक पर है। हमारा अनुमान था कि दोपहर को एक-दो बजे तक घर लौटकर हम खाना खा सकेंगे। लेकिन मोटर की इच्छा कुछ और थी।

हमारी मोटर सचमुच नुमाइश मे रखने की चीज़ थी। उसके सभी अजर-पजर भारी, भयावह शब्द करते थे, उसके हॉर्न के अतिरिक्त,

जिससे आप किसी तरह का शब्द न निकाल सकते थे। मालूम होता था कि नीलाम की दूकान से यह मोटर भाग आयी थी, जब कि दूकानदार इसके ब्रेक्स की खूबी पर जोर दे रहा था!

इस मोटर को यही ड्राइवर चला भी सकता था। और कोई तो वरसो उलझकर भी इसका रहस्य न समझ सकता। इसकी छत को खूब रस्सियो से कसकर बाँधा गया था, लेकिन फिर भी वह खिसकी पड़ती थी। इसी तरह तारो से इसका अग-प्रत्यग बाँधा गया था, लेकिन बुड्ढे की ठठरी के समान वे खिसके ही पड़ते थे।

इलाहाबाद से कुछ ही दूर पहुँचने पर हमारी मोटर का एक पहिया निकल भागा। सड़क और खेत पारकर वह भागा जा रहा था, और हम यह स्वच्छन्द व्यवहार देखकर मुग्ध हो रहे थे। आखिरकार मोटर रोकी गयी, पहिया पकड़कर बाँधा गया, और हम फिर एक बार आगे बढ़े।

सिराथू से हमे पक्की सड़क छोड़कर दाहिने हाथ मुड़ जाना था। सिराथू के थाने पर बड़ी भारी भीड़ थी। रात को दो बघेड़े मारकर लाये गये थे। इन्होने आजकल सूबे भर मे धूम मचा रक्खी थी। दिन-दहाड़े बड़े-बड़े शहरों से बच्चो को घसीटकर ले जाते थे। आज सिराथू के थाने मे बड़ी धूम थी। सिटी मैजिस्ट्रेट यहाँ थे; हाकिम मंझनपुर-सिराथू थे; पुलिस के अफसर थे; हथियारबन्द पुलिस थी; पत्रकार थे; फोटो खीचने वाले थे। अफसर लोग गले मे माला पहिने बघेडों की गर्दनो पर पैर रखकर तसवीर खिचवा रहे थे। पूरा एक दिग्विजय का समारोह था। फिर भी लोग कहते है कि सरकार जनता की समस्याओं की ओर ध्यान नही देती!

हम लोग पक्की सड़क छोड़कर दाहिने हाथ कड़े के लिए धूल के रास्ते उतरे। कुछ दूर पर एक क़स्बा छोड़ हम सीधे तीर की तरह अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। यह खुला देश था, और दूर आसमान पर हम एक हल्की-सी, अस्पष्ट रेखा झिलमिल करती देख सकते थे। यह गगा की धार थी, और सूचना थी कि भारत के

हृदय इस मध्य देश की पीढियो तक पोपित सस्कृति का केन्द्र यही था।

हम ऊँचे-ऊँचे टीलो और इतिहास के भग्नावशपों के बीच से गुजर रहे थे। वीती शताब्दियाँ गुमसुम आधुनिकता की प्रगति देख रही थी, किन्तु पूँजीवाद के अधकचरे विधान मे यह शक्ति कहाँ थी कि इन खँडहरो को मुखरित कर सके? उसके लिए समाजवाद की विराट शक्ति अपेक्षित है। मन-ही-मन हम उन खँडहरो से कह रहे थे, "अभी तुम्हे कुछ दिन और रुकना हैं। समाजवाद तुम्हारा मौन सदा के लिए भग कर देगा। तुम्हारे सारे रहस्यो का उद्घाटन तभी हो सकेगा। बड़े-बड़े अजायबघर यहाँ बनेंगे; इलाहाबाद से सीधे बस-सर्विस कोशाम्बी और कड़ा के लिए होगी। तभी भारत की जनता वास्तव मे अपने अतीत का उत्तराधिकार प्राप्त कर सकेगी।"

यह खँडहर मीलो तक फैले थे। इनके नीचे एक पूरे युग की सभ्यता लम्बी चादर ताने सोयी थी। बरसात में गगा के पाट के समान मानो यह ऐतिहासिक प्रदेश हमारे चतुर्दिक् लहरे मार रहा था। इसका ओर-छोर, किनारा तक हम न देख पाते थे। जहाँ तक आँख पहुँचती थी, खँडहर दिखाई पड़ते थे।

यहाँ जलालुद्दीन खिलजी का सिर काटकर उसके भतीजे अलाउद्दीन ने गगा मे बहा दिया था। बूढा सम्राट अपने युवा भतीजे को विजयोल्लास में गले लगाने के लिए बढ़ा था, लेकिन साम्राज्य-लिप्सा ने मानवी अनुभूतियो का तिरस्कार करके उन्हे पैरो तले रौदा, और आसुरी वृत्तियो का अट्टहास यहाँ गूँजा।

इस दृश्य को आश्चर्य और विस्मय से आकाश और गगा ने देखा और सदियो बाद भी इस स्थान पर मानो इस क्रूर, बर्बर कृति की छाप बाकी है।

गंगा से ऊपर एक बड़ा भारी परकोटा है। यहाँ, बुर्ज और एकाध खँडहर बचे हैं। यहाँ से आप मीलो दूर तक गंगा के प्रदेश का प्रसार देख

सकते हैं। आज भी इस बुर्ज पर खडे होकर गंगा की वल खाती, फुफकारती धार को, और दूर-दूर तक फैले खेतो को देखकर हम सोच सकते हैं, "यह कोट इस समृद्ध देश के निवासियो का प्रहरी है; उनसे कर वसूल करता है, विद्रोह के प्रति उन्हे चेतावनी देता है; किसी भीमकाय सैनिक की भाँति यह उनके सर पर सवार दिन-रात पहरा देता है!" आज भी हम इस कोट के खँडहर पर खडे होकर जब गगा की ओर देखते है, और दन्तकथाओं मे वर्णित इतिहास को सुनते हैं, तो लगता है कि अभी भी वर्वर शासक इस देश के जन-जन को मृत्यु-पाश मे जकडे हुए है, और अभी आततायी से जनता को मुक्ति पानी है!

गगा धीर, मथर गति से इतिहास की स्मृतियो को सहेजे वह रही थी। उसने साम्राज्य के लिए कितने सघर्ष, क्रूर व्यापार, वर्वर नाटक देखे थे, और कितनी उदासीनता उसके इस स्निग्ध प्रवाह मे थी! अनेक प्रदेश, शताब्दियाँ, सस्कृतियाँ पार करके गगा की धार अपनी मजिल की ओर वढ़ रही थी; मानवी इतिहास का प्रवाह भी इसी अविराम, अवाध गति से अपने लक्ष्य की ओर वढ़ रहा है, चाहे आज और कल की पराजय हमारा हृदय विचलित कर दे।

वावा मलूकदास की कुटी पर हम पहुँचे। उनका घर जर्जर, दीन अवस्था मे था। उनके हस्तलिखित ग्रन्थ, जिनकी रक्षा राष्ट्र-निधि के रूप मे होनी चाहिये, नष्ट होते जा रहे थे। इनमे से कुछ पत्र प्रति वर्ष वावा मलूकदास के वशज भक्ति-भाव से गगा को अर्पण कर देते हैं; जो कुछ वचा है, उसकी पूजा होती है, और वावा मलूकदास के भक्त उसके दर्शन कर कृतार्थ होते है।

वहुत दुखी और उदास हम घर की ओर लौटते हैं। हमारी संस्कृति को लौनी लग रही है; उसका उद्धार करने मे अभी कितना अरसा लगेगा। तव तक कितना कोश काल-कवलित हो चुकेगा!

ठीक गगा के किनारे कडे के प्रसिद्ध मन्दिर है। हर साल यहाँ भारी मेला लगता है, और न मालूम कहाँ से भीड़ के हज्जूम उमड़ पड़ते है।

भारी-भारी पुराने पड़ो के नीचे शीतला देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसके चारो ओर बादशाहो के वक्त की धर्मशालाएँ है। पंडो के पास बड़े पुराने काल के तमस्सुक है। पठान बादशाहो ने पडो को यह जमीन मुफ्त बख्श दी थी, बाद मे उनमे से कुछ मुसलमान हो गये। दो वर्ष पूर्व तक तो ये मुस्लिम पडे भी यजमानो की सेवा कर अपना पेट पालते थे, लेकिन अब ऐसी धारणा हो चली है कि हिन्दू मन्दिर से आमदनी हिन्दू कुलो की ही होनी चाहिये। इन पडो के पास लम्बे-लम्बे बहीखाते है, जिनमे पूरी वशावलियाँ है। खेद की बात यह है कि कुछ हिन्दू दर्शनार्थी अपने कुल के इन पुराने मुस्लिम पंडो के ही अतिथि अब भी बनना चाहते हैं! खैर, मुकदमा हाईकोर्ट मे पेश है, और आशा है कि वहाँ से उचित फैसला हो जायगा। वक्त जरूर इसमे लगेगा।

शाम हो चुकी थी। टुटिहल मोटर पर हम घर की ओर लौट रहे थे। खाना दिन भर हमे नसीब न हुआ था। सिराथू के तहसीलदार साहब की चाय के बल पर गाड़ी चल रही थी।

प्रति पल हम इलाहाबाद के निकट पहुँच रहे थे। अपने टूटे रथ पर एक युग के भग्नावशेषो से दूसरे युग के भग्नावशेषो की ओर! इसमें उदासी निहित थी, किन्तु हमे विश्वास भी था कि हम अपने टूटे-फूटे रथ के बावजूद मंजिलेमकसूद तक पहुँच कर ही रहेगें।

रात हो चली थी, सड़क पर अँधेरा हो रहा था। बीच-बीच में किसी गाँव आदि की बत्तियाँ टिमटिमा उठती थी। सराय आकिल, बमरौली का भारी हवाई अड्डा, फिर इलाहाबाद का बाहरी हिस्सा, लीडर प्रेस और खुसरो बाग, रेलवे स्टेशन। अपने टूटे रथ के बावजूद हम अपने लक्ष्य की ओर तीव्र वेग से पहुँच रहे थे!

९

बरगद

वह बरगद का पेड़ विश्वविद्यालय के जीवन का प्रतीक है। इस

सकते हैं। आज भी इस बुर्ज पर खड़े होकर गंगा की बल खाती, फुफकारती धार को, और दूर-दूर तक फैले खेतो को देखकर हम सोच सकते हैं, "यह कोट इस समृद्ध देश के निवासियो का प्रहरी है; उनसे कर वसूल करता है, विद्रोह के प्रति उन्हे चेतावनी देता है; किसी भीमकाय सैनिक की भाँति यह उनके सर पर सवार दिन-रात पहरा देता है!" आज भी हम इस कोट के खँडहर पर खडे होकर जब गगा की ओर देखते है, और दन्तकथाओ मे वर्णित इतिहास को सुनते हैं, तो लगता है कि अभी भी बर्बर शासक इस देश के जन-जन को मृत्यु-पाश मे जकडे हुए है, और अभी आततायी से जनता को मुक्ति पानी है!

गगा धीर, मथर गति से इतिहास की स्मृतियों को सहेजे बह रही थी। उसने साम्राज्य के लिए कितने सघर्ष, क्रूर व्यापार, बर्बर नाटक देखे थे, और कितनी उदासीनता उसके इस स्निग्ध प्रवाह मे थी! अनेक प्रदेश, शताब्दियाँ, सस्कृतियाँ पार करके गगा की धार अपनी मञ्जिल की ओर बढ रही थी, मानवी इतिहास का प्रवाह भी इसी अविराम, अबाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है, चाहे आज और कल की पराजय हमारा हृदय विचलित कर दे।

बाबा मलूकदास की कुटी पर हम पहुँचे। उनका घर जर्जर, दीन अवस्था मे था। उनके हस्तलिखित ग्रन्थ, जिनकी रक्षा राष्ट्र-निधि के रूप मे होनी चाहिये, नष्ट होते जा रहे थे। इनमे से कुछ पत्र प्रति वर्ष बाबा मलूकदास के वशज भक्ति-भाव से गगा को अर्पण कर देते हैं; जो कुछ बचा है, उसकी पूजा होती है, और बाबा मलूकदास के भक्त उसके दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

बहुत दुखी और उदास हम घर की ओर लौटते हैं। हमारी संस्कृति को लौनी लग रही है, उसका उद्धार करने मे अभी कितना अरसा लगेगा। तब तक कितना कोश काल-कवलित हो चुकेगा!

ठीक गगा के किनारे कडे के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। हर साल यहाँ भारी मेला लगता है, ओर न मालूम कहाँ से भीड़ के हुज्जूम उमड़ पड़ते हैं।

भारी-भारी पुराने पड़ो के नीचे शीतला देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसके चारो ओर बादशाहो के वक्त की धर्मशालाएँ हैं। पडो के पास बड़े पुराने काल के तमस्सुक है। पठान बादशाहो ने पडो को यह जमीन मुफ्त बख्श दी थी, बाद मे उनमे से कुछ मुसलमान हो गये। दो वर्ष पूर्व तक तो ये मुस्लिम पडे भी यजमानों की सेवा कर अपना पेट पालते थे, लेकिन अब ऐसी धारणा हो चली है कि हिन्दू मन्दिर से आमदनी हिन्दू कुलों की ही होनी चाहिये। इन पडो के पास लम्बे-लम्बे बहीखाते है, जिनमे पूरी वशावलियाँ है। खेद की बात यह है कि कुछ हिन्दू दर्शनार्थी अपने कुल के इन पुराने मुस्लिम पंडो के ही अतिथि अब भी बनना चाहते है! खैर, मुकदमा हाईकोर्ट मे पेश है, और आशा है कि वहाँ से उचित फ़ैसला हो जायगा। वक्त जरूर इसमें लगेगा।

शाम हो चुकी थी। टुटिहल मोटर पर हम घर की ओर लौट रहे थ। खाना दिन भर हमे नसीब न हुआ था। सिराथू के तहसीलदार साहब की चाय के बल पर गाड़ी चल रही थी।

प्रति पल हम इलाहाबाद के निकट पहुँच रहे थे। अपने टूटे रथ पर एक युग के भग्नावशेपो से दूसरे युग के भग्नावशेपो की ओर! इसमें उदासी निहित थी, किन्तु हमे विश्वास भी था कि हम अपने टूटे-फूटे रथ के बावजूद मजिलेमकसूद तक पहुँच कर ही रहेगे।

रात हो चली थी, सड़क पर अँधेरा हो रहा था। बीच-बीच में किसी गाँव आदि की बत्तियाँ टिमटिमा उठती थी। सराय आकिल, बमरौली का भारी हवाई अड्डा, फिर इलाहाबाद का बाहरी हिस्सा, लीडर प्रेस और खुसरो बाग, रेलवे स्टेशन। अपने टूटे रथ के बावजूद हम अपने लक्ष्य की ओर तीव्र वेग से पहुँच रहे थे!

९

बरगद

वह बरगद का पेड़ विश्वविद्यालय के जीवन का प्रतीक है। इस

विश्वविद्यालय की प्रगति और विकास के साथ वरगद भी वढा है। उसने अधिक शिशिर और हेमन्त अभी नही देखें, कलकत्ते के प्रसिद्ध वट के सामने तो वह निरा शिशु है, किन्तु इस स्थान पर वह जितना कुछ देख चुका है, उसे प्रवुद्ध वनाने के लिए काफ़ी है।

इन भव्य प्रासादो के वीच वह काल-प्रहरी के समान अपना उन्नत मस्तक आकाश मे ताने खड़ा है। उनके साथ ही वह वड़ा हुआ था और वूढा भी होगा। इस स्थान का कौन रहस्य वह नही जानता? इस ससार के महाप्रभुओ की महत्त्वाकाक्षाएँ, चालें, पैतरेवाजियाँ, छात्रों के नेताओ की दुर्वलताएँ, जो रात के गहन अन्धकार में अपने रहस्य उसके कान मे कह जाती है, प्रेमिको की उसासें; हवाखोरो और निठल्लो की चुहल—सभी कुछ इन पिछले वर्पों मे वह हृदयगम कर चुका है!

नित्य ही एक भीड़ की वाढ़ उसके सामने से निकलती है, सुवह और शाम। मानो सैलाब कोलाहल करता आया और निकल गया। उसके बाद फिर वही गहन, अभेद्य सन्नाटा, वह अनवरत शान्ति जिसे किसी पक्षी का स्वर और भी विकराल वना देता है। गर्मी की छुट्टियो मे एक भारी अवसाद-सा कुछ उसके मन पर छा जाता है और उस अकेलेपन से मुक्ति पाने को वह छटपटाता है। तव कोई भारी चील या गिद्ध उसके शिखर पर उदासी भरी दृप्टि से दूर कुछ खोजती हुई मुद्रा वनाकर बैठते है और वातावरण में शत-शत नर-मेधो के कापालिक-सा भयावह रूप आ जाता है।

सन् '४२ की वात है। वरगद के नीचे मृत्युंजय कर्मवीर का शव मालाओ से दवा पडा था। एक अथाह भीड़ उसके चतुर्दिक् मँडरा रही थी, मानो उसके यश का कुछ अंश वटाने को आतुर यह सागर लपलप जीभ करता भग्न जलयान को घेर रहा हो! वडी रग-विरंगी भीड थी वह; सिसकी भरती नारियाँ, उदास मन पुरुष, रणोन्मत्त युवा-टोलियाँ, समाचार-पत्रों के भूखे वाज सरीखे सवाददाता। सभी इस होम मे कुछ भाग लेने को व्याकुल थे।

शहीद कर्मवीर भोजपुर जनपद से यूनिवर्सिटी में पढने के लिए आया था। यहाँ वह शीघ्र ही नेता बन गया। भोजपुरी विद्यार्थी गर्व से कहते थे कि यूनिवर्सिटी के नेता उन्ही के प्रदेश से आते है। वह बोलने में पटु था, गम्भीर और लगन का कार्यकर्त्ता था। एक ही भाषण के बाद उसकी धाक विद्यार्थियो पर जम गयीं थी। जब पुलिस की धमकियो से आतंकित होकर विश्वविद्यालय के अधिकारियो ने यूनियन बन्द कर दी थी, तब कर्मवीर ने ललकार कर कहा था—यूनियन कौन तोड़ सकता है ? बरगद के नीचे हमारी सभाएँ होंगी।

जनसमूह ने उस समय उत्साह से नारे लगाये—यूनिवर्सिटी यूनियन ज़िन्दाबाद ! इन्किलाब जिन्दाबाद !

तब से बरगद के नीचे नित्य सुबह-शाम सभाएँ होने लगी थी। इनमे कर्मवीर शेर के समान गरजता और ब्रिटिश सत्ता को खुले आम चुनौती देता। वह कहता—अँग्रेजो ! भारत छोड़ो !

यह नारा असंख्य कठो द्वारा उद्वेलित होकर वायु-मण्डल मे छा जाता और मानो घण्टो गूँजता रहता ! इसकी गूँज से सरकारी अफ़सर थर्राते और वह ज़ालिम जो अनेक ज़िलो में साम्राज्यवादी जल्लाद रह चुका था, क्रोध से दाँत पीसकर रह जाता।

अन्त मे एक दिन पुलिस को यूनिवर्सिटी मे घुसने की इजाजत मिल गयी। लड़कों की भीड एक कतार में खड़ी थी, सशस्त्र पुलिस के सामने। कर्मवीर ललकार कर कह रहा था—खबरदार, जो एक पैर भी पीछे हटाया ! मा के दूध को लजाना मत !

जल्लाद ने उसी को निशाना बनाया !

धायँ-धायँ !

गोलियाँ गरजी और वह गिर पडा।

भीड़ तितर-बितर हो रही थी। उसकी कल्पना मे अनेक दृश्य घूम गये। उसका घर, खेत, बूढे किसान मा-बाप; शान्ता की सुन्दर आँखें जो लडकियों की भीड़ मे से नि:स्पन्द उसके मुख पर गड़ी रहती थी;

विश्वविद्यालय की प्रगति और विकास के साथ बरगद भी बढा है। उसने अधिक शिशिर और हेमन्त अभी नही देखे; कलकत्ते के प्रसिद्ध वट के सामने तो वह निरा शिशु है, किन्तु इस स्थान पर वह जितना कुछ देख चुका है, उसे प्रवुद्ध बनाने के लिए काफी है।

इन भव्य प्रासादो के बीच वह काल-प्रहरी के समान अपना उन्नत मस्तक आकाश मे ताने खड़ा है। उनके साथ ही वह बडा हुआ था और बूढ़ा भी होगा। इस स्थान का कौन रहस्य वह नही जानता? इस ससार के महाप्रभुओ की महत्त्वाकांक्षाएँ, चाले, पैतरेबाजियाँ, छात्रो के नेताओ की दुर्वलताएँ, जो रात के गहन अन्धकार में अपने रहस्य उसके कान मे कह जाती है; प्रेमिकों की उसासें; हवाखोरों और निठल्लो की चुहल—सभी कुछ इन पिछले वर्षो मे वह हृदयंगम कर चुका है!

नित्य ही एक भीड़ की वाढ उसके सामने से निकलती है, सुबह और शाम। मानो सैलाव कोलाहल करता आया और निकल गया। उसके बाद फिर वही गहन, अभेद्य सन्नाटा, वह अनवरत शान्ति जिसे किसी पक्षी का स्वर और भी विकराल वना देता है। गर्मी की छुट्टियो मे एक भारी अवसाद-सा कुछ उसके मन पर छा जाता है और उस अकेलेपन से मुक्ति पाने को वह छटपटाता है। तव कोई भारी चील या गिद्ध उसके शिखर पर उदासी भरी दृष्टि से दूर कुछ खोजती हुई मुद्रा बनाकर बैठते हैं और वातावरण मे शत-शत नर-मेघो के कापालिक-सा भयावह रूप आ जाता है।

सन् '४२ की वात है। बरगद के नीचे मृत्युंजय कर्मवीर का शव मालाओं से दवा पडा था। एक अथाह भीड उसके चतुर्दिक् मँडरा रही थी, मानो उसके यश का कुछ अंश वटाने को आतुर यह सागर लपलप जीभ करता भग्न जलयान को घेर रहा हो! वडी रग-विरगी भीड़ थी वह; सिसकी भरती नारियाँ, उदास मन पुरुष, रणोन्मत्त युवा-टोलियाँ, समाचार-पत्रों के भूखे वाज़ सरीखे सवाददाता। सभी इस होम मे कुछ भाग लेने को व्याकुल थे।

भी वड़ा होता जायगा। अन्त मे जब वह बहुत बूढा होकर गिरेगा, उसके बीज से अनेक नये बरगद ससार मे खडे होगे। इसी प्रकार यह सृष्टि का क्रम चलता है!

अनन्त शून्य मे चन्द्र की तरह घूमती अग्नि की जिह्वाएँ, अन्त में टूटकर एक केन्द्र के चतुर्दिक् वे मण्डलाकार घूमने लगती हैं, अग्नि के वे कन्दुक शीतल होते है; उन पर पेड़-पौधे, जल, जीव-जन्तु प्रकट होते है, अन्त मे सृष्टि का महानायक मानव। बर्बरता से सभ्यता की ओर वह वढता है, आग जलाना, अन्न उपजाना, कपास की खेती करना वह सीखता है, पशुओ को पालता है, पहिये बनाता है, अन्त मे प्रकृति की शक्तियो पर विजय प्राप्त करता है, निरन्तर सघर्ष, जन्म, मरण, सृष्टि—यही जीवन का क्रम है!

गुरुकुलो मे दस-पाँच विद्यार्थी पढते थे; विद्या स्मरण शक्ति पर अवलम्बित थी; लिपि निकली, छपाई शुरू हुई, विद्यार्थियो की सख्या बढ़ी, विश्वविद्यालय बने। इसी भूमि पर अब भारत के भविष्य का निर्माण हो रहा है। स्वाधीनता के लिए, सामाजिक न्याय के लिए, आज भी सघर्ष चल रहा है। बरगद के नीचे जो सभाएँ हो रही है, इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति है।

बरगद की डालें अन्धड के वेग से कॉप उठी। प्रलय की लहरे वायु मे फैलती आ रही थी। जब इस तूफान का अन्त होगा, सृष्टि नवनिर्माण के आह्लाद से स्पन्दित होगी।

देवताओ और असुरों मे सग्राम हो रहा था। असुर पराजित हुए। सुरा-प्रेमी आर्यो ने असुर द्रविड़ो को हरा दिया।

यह सुर-असुर सग्राम विश्वविद्यालयों मे नित्य प्रति चला करता है। पिछली बार वैष्णव विजयी हुए और शैव हारे थे, किन्तु अब फिर शैवों की बारी आयी है। यह दल अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति की भांति पूरे प्रान्त पर छाये है। यदि आप किसी दल मे नही है, तो आप मिट जायँगे!

शुक्ला की ईर्ष्या और प्रतिद्वद्विता, जो अनेक कुचक्रों और षड्यन्त्रो में व्यक्त हुई थी, बरगद के नीचे सभा मे गाली-गलौज, मारपीट—क्या हमारा झडा इस प्रकार नीचे झुकेगा? वह गुनगुना उठा—झण्डा ऊँचा रहे हमारा!

अब उसका शव महाप्रयाण की प्रतीक्षा मे बरगद के नीचे पडा था और शुक्ला अपनी फटी आवाज़ मे उसके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित कर रहा था।

बरगद के नीचे एक और ही तरह की मीटिंग आज हो रही थी। उदासी भरी नीरव सध्या मन्थर गति से आकाश पार कर रही थी। पेडों से पत्ते निरन्तर वर्षा की झड़ी के समान गिर रहे थे। यूनिवर्सिटी के चपरासी, मेहतर, कहार, महराज अपनी सभा कर रहे थे, मानो चीटियों के भी पर निकल आये हो।

अन्धकार के गहन सागर को चीर कर एक आवाज़ सतह पर तैर रही थी। जितनी विषमता और विडम्बना इस विद्या की राजधानी में हमने देखी, वह और कहीं न होगी। यहाँ सब से कम वेतन सात रुपया महीना है, और सब से अधिक २००० रुपया महीना है। यहाँ बड़ो-बडों को ढाई महीने की छुट्टी मिलती है, पर कहारो को कुल ग्यारह महीने का वेतन! यहाँ जितना ही अधिक आपका वेतन होगा, उतनी ही अधिक महगाई आपको मिलेगी। अगर आपके पास चाँदी है, तो आपको सोना मिलेगा; अगर आपके पास मिट्टी है, तो वह भी आप से छीन ली जायगी!

हवा मे एक तुमुल रव भर गया। हम इस व्यवस्था का सदा के लिए अन्त कर देगे! हम यह विषमता सदा के लिए मिटा देंगे!

बरगद की पत्तियो मे हवा की एक लहर फैल गयी। यह एक मामूली-ही खलबली थी, किन्तु इसमें एक गम्भीरता और नीरवता थी जो प्रलय की हुँकार का स्मरण दिलाती थी।

एक नन्हें से बीज से इतना बड़ा पेड़ बना था और वह निरन्तर और

पेट भरना अधिक सस्ता होता है। छै आने में दो सवारी चौक पहुँचाती है। रिक्शा तो वनारस मे चलता है। इलाहावाद के रिक्शे वाले मरियल टट्टू के समान है। वनारस के रिक्शे गहरेवाजो की परम्परा का निर्वाह कर रहे है। "वहती गंगा" के वह गर्वीले प्रतिनिधि है।

रिक्शा के आते ही शवी का चौराहा सूना हो गया। अव यहाँ इक्का-दुक्का ताँगा खडा भी रहता है, तो उस पुरानी आन-वान से नही। पहले तो सवारी को देखते ही झुम्मन अथवा रमज़ान रास को हिलाते थे, ताँगे की घंटियाँ वज उठती थी, और घोडा दुल्की कदम से अकडता हुआ सवारी के समीप पहुँच जाता था। न भाव हुआ, न कुछ; सवारी ने वैठते हुए कहा : 'स्टेशन!' यह हॉलेण्ड वोर्डिग के साहिव थे। बडे दयानतदार। मुँह माँगा पैसा मिलता था। लेकिन अब? घोड़े पर मक्खियाँ भिनकती थी। वही से वैठा-वैठा रहमत उदासी से पूछता था, 'ताँगा लाऊँ, हुजूर?' हॉलेण्ड वोर्डिग वाले साहिब अपने हाथ का मोटा-सा डडा हिलाकर कहते थे, 'नही भाई, आज तो पैदल ही घूमने का इरादा है।' और पास ही वठा शवी अपने मूढे पर ठडी साँस भरता था।

इस शवी के चौराहे की सफाई का हम क्या वखान करें? इस सफाई पर हमारे शहर की चुगी को किसी अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रतियोगिता मे इनाम मिलना चाहिए। छोटे-छोटे घर; उन्हे घर कहे या कोठरियाँ? शवी सरपच है; किसी जमाने मे मुस्लिग लीग के भारी समर्थक थे; वे उनकी खुशहाली के दिन थे। अतएव इन कोठरियो को घर ही कहना चाहिए। वर्ना तो मजदूरो के चाल मे भी कुछ खिड़कियाँ, रोशनी आदि मिल जाते हैं। यह तो अन्ध-कूप अथवा काल-कोठरी है। स्त्रियों को सूरज, हवा, रोशनी से कोई सरोकार नही। केवल अँधेरे मे वे वाहर निकलती है, और होस्टल के सामने वाली नाली पर वठकर अपनी नित्य-प्रति की कठोर आवश्यकताओं को पूरा कर लेती हैं।

यह नाली एक सुप्रसिद्ध स्थल है। दिन मे किसी भी समय यहाँ

किन्तु क्रान्ति की हलचल से पुरानी दुनिया की नीव हिल गयी है। सभी कुछ जीर्ण और गलित नष्ट करके ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

वरगद के नीचे जो सभाएँ हो रही है, इस नवजीवन की सृष्टि कर रही हैं। किन्तु वरगद मनुष्य की संस्कृति के समान फूले-फलेगा, विकसित होगा; उसकी जडें अतल फोड़कर दूर-दूर फैलेंगी; उसकी हर शाखा स्वयं एक पेड वन जायगी।

१०

चौराहा

यह चौराहा शवी के चौराहे के नाम से प्रसिद्ध है। किसी ज़माने में शवी के चौराहे पर ही आपको वढिया-से-वढिया ताँगे मिलते थे। वह ज़माना द्वितीय महासमर के पूर्व का था। यूनिवर्सिटी के एक लेक्चरर शवी के यहाँ हिसाव रखते थे, और साठ-साठ रुपए का उनका माहवारी विल हो जाता था। किसी को कही जाना हुआ, शवी के ताँगों मे से एक आ गया, दो-चार घटे साथ रहा और महीना खत्म होने पर आपको विल मिला और फौरन उसका भुगतान भी हो गया।

लेकिन अव न वह ठाठ-वाट शवी का है, न आपका। नाज का दाम उठने लगा; गेहूँ-चना वाज़ार से गायव हो गया। वंगाल का अकाल पडा। लोग भूखो मरने लगे। घोडों के लिए दाने का प्रवन्ध करना असभव हो गया। शवी के मोटे-तगडे जानवर सूख कर काँटा हो गये; उनका पेट भरना पहाड के समान हो गया। मियाँ शवी के वूढे मुँह पर आँसू टपकने लगे थे 'वावू साहिव, इन जानवरों का पेट कैसे भरूँ? इन्हे मैंने वच्चो से वढकर प्यार किया है। अव न सवारी की जेव मे पैसा है, न वाजार मे नाज!"

उसी ज़माने मे युद्ध का वरदान, गरीव की सवारी रिक्शा निकली। इसे आदमी चलाता है, मस्ती से, तावडतोड़। घोडे के पेट से मनुष्य का

पेट भरना अधिक सस्ता होता है। छै आने मे दो सवारी चौक पहुँचाती है। रिक्शा तो वनारस मे चलता है। इलाहावाद के रिक्शे वाले मरियल टट्टू के समान है। बनारस के रिक्शे गहरेवाजो की परम्परा का निर्वाह कर रहे है। "वहती गंगा" के वह गर्वीले प्रतिनिधि है।

रिक्शा के आते ही शबी का चौराहा सूना हो गया। अव यहाँ इक्का-दुक्का ताँगा खडा भी रहता है, तो उस पुरानी आन-वान से नही। पहले तो सवारी को देखते ही झुम्मन अथवा रमजान रास को हिलाते थे, ताँगे की घटियाँ वज उठती थी, और घोडा दुल्की कदम से अकड़ता हुआ सवारी के समीप पहुँच जाता था। न भाव हुआ, न कुछ, सवारी ने वैठते हुए कहा : 'स्टेशन!' यह हॉलेण्ड बोर्डिग के साहिब थे। बडे दयानतदार। मुँह माँगा पैसा मिलता था। लेकिन अब? घोडे पर मक्खियाँ भिनकती थी। वही से बैठा-बैठा रहमत उदासी से पूछता था, ताँगा लाऊँ, हुजूर?' हॉलेण्ड वोर्डिग वाले साहिब अपने हाथ का मोटा-सा डंडा हिलाकर कहते थे, 'नही भाई, आज तो पैदल ही घूमने का इरादा है।' और पास ही वठा शबी अपने मूढे पर ठडी साँस भरता था।

इस शबी के चौराहे की सफाई का हम क्या वखान करें? इस सफ़ाई पर हमारे शहर की चुगी को किसी अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रतियोगिता मे इनाम मिलना चाहिए। छोटे-छोटे घर, उन्हे घर कहें या कोठरियाँ? शवी सरपच है; किसी जमाने मे मुस्लिग लीग के भारी समर्थक थे; वे उनकी खुशहाली के दिन थे। अतएव इन कोठरियो को घर ही कहना चाहिए। वर्ना तो मजदूरों के चाल में भी कुछ खिडकियाँ, रोशनी आदि मिल जाते हैं। यह तो अन्ध-कूप अथवा काल-कोठरी है। स्त्रियों को सूरज, हवा, रोशनी से कोई सरोकार नही। केवल अँधेरे मे वे वाहर निकलती है, और होस्टल के सामने वाली नाली पर वठकर अपनी नित्य-प्रति की कठोर आवश्यकताओ को पूरा कर लेती है।

यह नाली एक सुप्रसिद्ध स्थल है। दिन मे किसी भी समय यहाँ

निकलिए, लडकों की लगार नाली पर वठी आपको मिलेगी। जव यूनिवर्सिटी की जॉच के लिए कमीशन वैठा था, तो उसने इस दृश्य के फ़ोटो खीचकर अपनी रिपोर्ट मे छापे थे। यहाँ पूरी वस्ती का कूड़ा एकत्रित होता है, पहाड से ऊँचे उसके ढेर लगे रहते है। शील-संकोच, और स्वभाव का सामाजिक जीवन से अन्तरग सवध है। जिन स्त्रियो ने कभी सूर्य के भी दर्शन न किये थे, वे अव साहसपूर्वक चलती लडक पर दिलेरी से आसन जमाती है। मोटरे दृश्य को आलोकित करती हुई निकल जाती है, पुरुप निकलते है, यूनिवर्सिटी के छात्र निकलते हैं; एकान्तवासी क्षण भर के लिए उठते है। यूनिवर्सिटी के एक बड़े छात्रावास के ठीक सामने यह व्यापार होता है।

चौराहे पर घोडे चारो ओर वँधे रहते है। उनके कारण भी काफी गदगी रहती है। मक्खियाँ भिनकती है। वच्चे रोते है। वाज़ार का कोलाहल कानो मे निरन्तर भरा रहता है। तंग, सँकरी गलियाँ पीछे है; तीन ओर बडी-वडी सडकें है, उनके वीच मे द्वीप के समान यह आधे दर्जन घरो अथवा कोठरियो की वस्ती है। दरवाज़ों पर टाट के पर्दे पडे रहते है; उन्हे हवा भी नही हिला पाती। उसके छेदों के वीच से छन-छन कर कुछ हवा अन्दर पहुँच जाती है।

अन्दर क्या है? अन्धकार, निराशा, घुटन, पाशविक जीवन। यत्रवत् वच्चे होते है, बढते है, वड़े होकर वाहर मूढो पर बैठ कर हुक्के पीते है। यौवन अन्दर घुट कर क्रन्दन करता है और नष्ट हो जाता है। वही कोठरी चौका है, सुहाग-शैया है, प्रसव-कक्ष है, और अन्त में क्षय की मार के वाद वह स्वास्थ्य-गृह और मृत्यु-शय्या भी वनती है।

किसी जमाने मे शवी सोचते थे, उनकी सव विपत्तियों का हल पाकिस्तान है। नही तो सहधर्मियो को वहुमत वाले काफिर कुचल देंगे। लेकिन पाकिस्तान वनने के वाद भी शवी की मुसीवतो का जाल न टूटा। उन्होने कुठित होकर कहा था, 'दिल्ली की सल्तनत नेहरू के हाथो में सौंपकर अँग्रेज विलायत चले गये।' उनके लिए इस वृद्धावस्था मे अपनी

जड़े उखाड़ कर कराची ले जाना और फिर से उन्हे वहाँ जमाना कठिन लग रहा था। वह इसी मिट्टी से बने थे, इसी मे फिर से मिल जायेंगे। लडकों की जहाँ इच्छा हो जाएँ, जो चाहे, करें। उन्होने अपने सब ताँगे एक-एक करके रहमत, रमज़ान और झुम्मन के बीच में बाँट दिये थे; 'जो तबियत हो, वह करो, बेटे। चाहे इन्हे बेचकर बहिश्त चले जाओ। चाहे यही रहो, कमाओ-खाओ। मैं तो अब अपनी बूढी मिट्टी को लेकर परदेश जाने से रहा।"

शबी अब काँग्रेसी हो गये है। उनके पिछले इतिहास के कारण पुलिस उन पर कठोर दृष्टि रखती थी। सो उन्होंने वह चक्कर भी काट दिया। जसा राजा, वैसी प्रजा। अँग्रेज़ के ज़माने मे वे अँग्रेज के भक्त थे, अब कॉग्रेसी राज्य है, तो वे कॉग्रस के भक्त है। किन्तु उनके मन की क्या वास्तविक इच्छाएँ और आकाक्षाये हैं, यह समझना कठिन है।

कभी-कभी वे अपने मूढे पर बैठे हुक्का गुडगुडाते हुए अपने इष्ट-मित्रों से कहते अवश्य है, "अँग्रेज हमारे खून को पी रहा था, वह गया। अब अपने मुल्क मे हिन्दुस्तानियो की हुकूमत है; धीरे-धीरे सब दुख दूर होंगे। नालियाँ भी साफ होगी, नाज भी सस्ता होगा। घोडे की फिर लोग कद्र करेंगे। तब मैं यहाँ पक्के, हवादार मकान बनवाऊँगा।"

और वे अपनी आँखें मूंद लेते थे, मानो स्वर्ग का स्वप्न देख रहे हों।

११

कुँआरी धरती

यह नगर के बाहर की धरती है, किन्तु नगर इधर फैलता आ रहा है और इसे निगल रहा है। यह बड़ी उपजाऊ भूमि है, इसमे छीटा देते ही बीजों के अंकुर फूट उठते हैं। यह कुँआरी धरती है, इसकी कोख मे सन्तान को जन्म देने और पालने-पोसने की शक्ति और सम्पन्नता अनन्य है। कुँआरी कन्या के समान यह धरती है। यह धरती सती साध्वी सीता है।

कहते हैं कि कभी यह धरती गगा का पाट अपने हृदय पर धारण करती थी। अब मानो वह बोझा धरती ने अपने दूसरे कूलू पर बदला है और क्षण भर इस गोद को विश्राम दे रही है।

यह सच है कि यहाँ धरती नीची है। कटरे से चलकर जब आप इधर आते है, तो एक विराट ढाल पर उतरते है। कुछ ही दूर पर आगे गगा हिलोर मारती है, हुकार भरती है और अपनी मद-भरी गति से, किसी गजगामिनी की भाँति, अधीरता से आगे बढ जाती है, जहाँ अनेक वन, प्रदेश, नगर पार करके वह अपने चिर प्रतीक्षित सिंध प्रियतम से मिलेगी।

इस धरती मे गगा की सुवास है। शाम होते ही यहाँ मृदु, शीतल वायु बहने लगती है। कटरे से निकलते ही मानो अखण्ड शीतलता आपको अपने क्रोड में समेट लेती है। रात भर इस शीतलता का प्रसार यहाँ रहता है, किन्तु दिन में सूर्य की प्रखर किरणे पृथ्वी को जलाया करती हैं। हवा के गर्म झोके 'हू-हू' करके चलते हैं, और धूल और लू का तूफान चलता रहता है। तब केवल पेडो के नीचे पशु ही खड़े जुगाली किया करते है और मनुष्य अपना आदिम रूप पुन अपनाकर दिन भर अपनी माँद मे छिपा पडा रहता है। जब रात होगी, तभी वह आहार विहार की खोज मे बाहर निकलेगा।

इस भूमि मे सब पेड वनजारो ने काट डाले हैं। यह नगर है, उपनगर है, गाँव है, अथवा मिश्रित व्यजन है, यह कहना कठिन है। यहाँ चरवाहे ढोर चराते है, वनजारे अपना डेरा डालते हैं, ईंधन के लिए पेडो को तिरन्तर काटा करते है और अनेक लोग कहते हैं कि यही लोग रात मे चोरियाँ भी करते है।

गाँव के अभी यहाँ अनेक चिह्न अवशिष्ट है। कटरे से निकलते ही भड़भूँजे की दूकान मिलती है। कच्ची झोपड़ियाँ मिलती हैं, सडक पर खाटों पर पडे लोग मिलते हैं, मिट्टी मे रेंगते-बिलबिलाते कीडों के समान जन्मते-मरते मनुष्य के बच्चे दिखाई पडते है। यह नगर के शुभ्र, उज्ज्वल

वस्त्र मे मानो एक थेकली का पैबन्द हो। यहाँ का सपूर्ण वातावरण ही देहाती है। इधर से ऊँटों पर तरबूज लादे रात भर देहात से कारवाँ आते रहते है। गगा के कछार में उगे इन फलो को महीनों ऊँट फाफामऊ से लादकर लाते है।

यहाँ निरन्तर बनजारे भी अपना शिविर ताने रहते है। सडक के किनारे खेतों मे और पेड़ो के नीचे वे डेरा डालते है। उनकी स्त्रियाँ जूँ बीना करती हैं, बच्चे पथारोहियो से भीख माँगा करते है और पुरुष नल पर पानी के लिए महाभारत का सग्राम ठानते है। जब पास-पडोस मे कही चोरी हो जाती है, तो पुलिस उनको आकर यहाँ से ठेल देती है। लेकिन हफ्ते दो हफ्ते बाद फिर हम किसी और दल को यहाँ पडाव डाले हुए पाते हैं। यह उस जंगली घास के समान है, जिन्हें उनकी जडो मे मट्ठा डाल कर भी चाणक्य नष्ट न कर पाये थे। यह सचमुच जंगली घास के समान ही है। बिना खाद पानी के ये धरती से उग आते है, निरन्तर कुचले जाते हैं, किन्तु इनका अस्तित्व बना ही रहता है। धूप मे, आँधी मे, बरसात मे इनके चूल्हो की आग एक टेढी-मेढी पक्ति मे जल उठती है; यह आग वीरान आकाश मे दो चार तारो के समान टिमटिमाती है और आँधी वर्षा के प्रबल थपेड़ों से बुझ जाती है।

इनका कोई घर-द्वार नही। घूमने की प्रबल लालसा इन्हे अंकुश की तरह निरन्तर बेधा करती है। किसी पेड़ के नीचे क्षण-दो-क्षण के लिए इनका कारवाँ रुकता है, चतुर्दिक् कोहराम मच जाता है, कर्कश स्वर मे इनकी स्त्रियाँ चीखती-चिल्लाती है और भीख माँगती है, कुल-वधुएँ उन्हे देखकर घर के अन्दर छिप जाती है। फिर पुलिस आती है और इनका कारवाँ आगे बढ जाता है।

लेकिन अब कुँआरी धरती का विवाह हो रहा है। शीघ्र ही यह फूलने-फलने लगेगी।

अनेक नये घर यहाँ बन गये है। दिन-रात यहाँ ईंट गिरती है और गारा सनता है। लारियाँ हुकार भर-भर कर कच्ची सड़कों को गहरा

काटती हुई आती हैं और सामान गिराती है। घाम मे और भयानक लू मे मजदूर अविराम गति से काम करते है, दीवारें उठती हैं, जंगल मे मानो महल खडे होने लगते हैं। सीमेंट और चूना न मिलने से कुछ मकानो का वनना रुक गया है। वे किसी प्राचीन नगर के खुदे अवशेषों के समान लगते हैं। उनके स्वामी नित्य शाम को आते है और खुदी हुई नीवों मे पैर डालकर प्रसन्न होते है।

मकानो के चारो ओर ऊँचे-ऊँचे वॉस उठते है। दूर से उन्हें आकाश को वेधते देखकर त्रिवेणी का भ्रम हो सकता है। यह मानो घाटों के ऊपर उठी हुई पताकाएँ और नावो के मस्तूल हों।

नगर इस वन-भूमि को निगलने के लिए किसी भारी-भरकम अजगर की भाँति मद किन्तु निश्चित गति से वढ रहा है। उसकी ऑखों मे मोहिनी शक्ति है जिसके सामने शिकार विवश हो जाता है।

कुँआरी धरती किसी विकसित होती हुई कली के समान अपने दल खोल रही है। सुनसान मे एक पुष्प खिल रहा है जो अपनी सुरभि-श्री से वातावरण को भर देगा।

नगर निश्चित डर्गों से इधर वढता आ ही रहा है। कुछ दिन मे वह डग वढाकर इस जंगल मे खिले फूल को तोड लेगा, अजगर अपने शिकार को लील लेगा। कुँआरी धरती का वरण वृद्ध अमीर करेगा। इसके यौवन और सौन्दर्य को वह फूल के समान अपने कुटिल नागर वस्त्रों पर धारण करेगा। तब उप-नगर नगर में मिलकर लीन हो जायगा।

१२

दशाश्वमेध

यह काशी के यात्रियों का पुण्य-स्थल दशाश्वमेध घाट है। काशी के जीवन का यह केन्द्र-विन्दु है; इसी के चतुर्दिक् काशी का संपूर्ण जीवन चक्कर काटता है। यह काशी का हृदय है। यही असख्य नर-नारी सुवह-

शाम मुक्ति की खोज मे, अथवा आमोद-प्रमोद या जीविका के साधन जुटाने की आशा से जुडते है; नित्य-प्रति ही मानो यहाँ एक लघु कुम्भ जुडता है। इस भीड मे लाल, रेशमी अथवा सूती वस्त्र धारण किये दर्जनो दक्षिण के यात्री रहते हैं, बगाली गृहस्थ जन सपरिवार, अथवा एकाकी विधवाएँ रहती है। मनोरजन और आमोद के आकाक्षी नवयुवक रहते है, और अनेक अपाहिज, भिखमगे, साधू, फकीर रहते है। धर्मार्थी, यात्री, पडे, फकीर, कोढी, कलंकी—दशाश्वमेघ पर नित्य-प्रति सुबह-शाम इनकी भीड जुड़ती है।

सभी रास्ते मानो दशाश्वमेघ की ओर जाते है। शाम के समय कलकत्ता का चौरंगी, अथवा बम्बई का चौपाटी यह दशाश्वमेघ घाट बन जाता है। मार्ग ठसाठस भीड से भर जाते हैं। चलने मे कन्धे से कन्धा छिलता है। पैदल चलने वाले, रिक्शे वाले, एकाध गहरेबाज, ठेले वाले, फूल और माला बेचने वाले, मिठाई वाले, शरबत वाले, कपडे वाले—इन सब का कोलाहल वातावरण मे छा जाता है, मानो शहद की मक्खियों के किसी विराट छत्ते मे अविराम कोई जीवन-क्रिया और हलचल जारी हो। चारो ओर उज्वल आलोक से आँखें चकाचौध होती है। नीली रोशनी के ठडे और तेज वल्ब दिन-सा किए रहते हैं।

इस बाजार मे मानो बिजली और तारकोल की सडकों के अतिरिक्त शताब्दियो से कुछ भी बदला नही है। ऐसी ही भीड यहाँ महाभारत के युग मे जुडती होगी, अथवा चन्द्रगुप्त मौर्य या पुष्यमित्र के काल मे भी। आँख मूँद कर हम सहज ही कल्पना कर सकते है कि बीस-तीस शताब्दियो का प्रवाह इस गगा की धारा ने देखा ही नही है। दिग्विजय के समारोह मे दस चक्रवर्ती राजाओ ने यहाँ अश्वमेघ यज्ञ किए थे। यहाँ पहुँच कर मानो मनुष्य की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हो।

एक दिन अनायास ही यहाँ गंगा की धार ने परम-पावन बुद्धदेव के दर्शन किए होंगे, उनके आनन्द-वर्द्धक, पुण्य शब्द सुने होगे और दिशाएँ "बुद्ध शरणं गच्छामि" के मधुर नाद से गूंजी होगी। यही से लौह कठिन

भीष्म अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को हर ले गए थे! उदयन और वासवदत्ता ने यही काशी की गंगा को नमस्कार किया होगा। तब से न जाने कितने यात्री और शान्ति के आकाक्षी यहाँ खडे हो कर गगा की धारा का गम्भीर, उदासीन, अनवरत प्रवाह देखते रहे है, और न जाने किन अकथनीय भावनाओ से उनके हृदय द्रवित हुए है। अश्वमेध का अनुष्ठान करके दिग्विजयी चक्रवर्ती राजाओ ने मन-ही-मन सोचा होगा : उनका अभिमान, वैभव और गौरव इतिहास और काल की गति के सामने निस्सार है। कितने ऐश्वर्य और मद से अन्धे शक्ति और सत्ता के व्यापारी गगा की धारा ने मिटते देखे है! काल की कराल गति ने सभी के सिर झुका दिए है; केवल उनके अच्छे अथवा बुरे कामो की ख्याति और निन्दा पीछे छूट गई है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने श्मशान की भूमि पर खडे होकर कर्त्तव्य-प्रेरणा से आधा कफन कर-स्वरूप माँगते समय यही सोचा होगा। औरगजेब, चेतसिंह और वारेन हेस्टिग्स के मन मे भी यहाँ खडे हो कर न जाने कौन-कौन भाव जगे होगे।

कितने युगो, सस्कृतियो और जातियों को बनते-बिगडते गंगा की यह धारा देख चुकी है। गगा का इतिहास ही तो भारतवर्ष का इतिहास है। ससार की और कौन नदी गंगा के समान इतिहास की स्मृतियो मे लिपट कर बह रही है? शायद नील नदी ही गगा की समता इस दिशा में कर सकती है!

दुर्गम पर्वतों के बीच से गगा की धारा गर्जन-तर्जन करती उतरी है। आकाश को छूते-से अभिमानी, दर्प-भरे पर्वत और गहर हुकार करती गगा की धारा; गरुड़-चट्टी, लक्ष्मण-झूला, हृषीकेश, हरिद्वार, कखल, अनेक ग्राम, नगर, वन-पथ पार करती हुई गंगा यहाँ पहुँची है। काल के प्रवाह मे इसने देश के इतिहास को निरन्तर बनते और बिगडते देखा है, और अब यह मानो अनन्य विषाद और उदासी से मौन, धीर और गभीर गति से बह रही है!

इसने भारतीय जाति को दासता की शृंखलाओं मे जकड़ते देखा है, और मुक्ति के लिए अनवरत संघर्ष और प्रयास करते भी देखा है। प्रेमचन्द की हँसी, 'प्रसाद' का स्मित हास्य और आचार्य शुक्ल की शुष्क, म्लान मुस्कान उसने देखी है! तुलसी, कबीर और भारतेन्दु की स्मृतियों से यहाँ का कण-कण व्याप्त है!

हम सीढियाँ पार करके नीचे उतरते है, मानो निरन्तर हम उतरते ही जायेंगे, और पातालपुरी पहुँच कर ही रुकेंगे! हमारे चारों ओर भीषण कोढ़ आदि रोगों से पीड़ित लुंज, क्षत-विक्षत मानवता है। भीख माँगने के लिए हाथ आपको चारों ओर से घेरते है। इनसे निस्तार नही। जो मोक्ष और स्वर्ग के कामी है, उन्हें शोक, दरिद्रता और दुःख की यह अभेद्य दीवार पार करनी ही पड़ेगी!

सीढ़ियो से तीव्र दुर्गन्ध उठती है, जो मानो हमारे नथुनो को फोड़ ही देगी। हम जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरते है। फूलो की महक, कीर्तन की ध्वनि, मन्दिरों की छोटी-छोटी घन्टियो की अलस-मधुर गूंज हमारा ध्यान बरबस आकर्षित करती है।

हम नाव में बैठते हैं। चारों ओर बजरे और डोंगा चक्कर काटते हैं; बाँसों की, बजरों की, ऊँची अट्टालिकाओं की चोटियाँ आकाश में छा जाती है। यह मानो वेनिस का राज-पथ है। किस प्रकार गगा के बिना काशी के जीवन की कल्पना की जा सकती है?

गगा के विशाल वक्ष पर पूर्णचन्द्र का आलोक बिखरा हुआ है। लगता है, मानो इस विशाल, गहर-गभीर हृदय का स्पन्दन अतिशय मन्द पड़ गया है, लगभग रुक गया है! यहाँ हमारी नाव धीमे-धीमे गोल-गोल घूमती है, कोई निश्चित दिशा नही ग्रहण करती। हम तट की ओर देखते हैं : ऊँचे-ऊँचे घाट, मन्दिर, सीढियाँ अनवरत ऊपर चढ़ती हुई; टूटे-फूटे, जीर्ण-शीर्ण घाट, मन्दिर, सीढ़ियाँ। ऊँचे-ऊँचे कलश, कँगूरे, मीनार, छायालोक के चित्र से मन पर छा जाते है। चारों ओर अनेक दीपशिखा-से कम्पित अग्नि-स्तंभ, जो मानो नदी के हृदय से स्वर्ण-तरुओं

की भाँति उगे हो ! चारो ओर अनेक दीप-स्तंभ हैं, और यह जल में उनके प्रतिविम्व है। दूर पर हम वाल-रवि से लाल अग्निपुंज भी देखते हैं। यह मणिकर्णिका और हरिश्चन्द्र घाट हैं; सदियों से दिन-रात कोई ऐसा क्षण नही वीता, जव किसी न किसी मनुष्य की जीवन-लीला का अन्तिम अनुष्ठान यहाँ न होता हो ! काशी मे प्राण त्याग कर स्वर्ग जाने की इच्छा से निरन्तर यहाँ मानव-समूह आता है; इसी विडम्वना से भाग कर कवीर मृत्यु समीप आई जान कर मगहर चले गए थे।

दुर्गन्धि से नाक फटने लगी। हमने सोचा, मछली अथवा सिवार की यह वदवू है। नाविक ने कहा, मुर्दा है ! कुछ ही गज दूर पर एक भारी-भरकम शव तैर रहा था। वह फूल कर मोटा हो रहा था। शव की वाँहे घुटनो को वाँधे हुए थी। इन दिनों हैजे का प्रकोप था; किसी ने शव को गगा में वहा दिया होगा। इस पवित्र नगर मे कछुए, मगर आदि भी नही हैं, जो नदी की धारा को स्वच्छ और निर्मल रक्खें।

हम वापस लौटने लगे। हम देखने लगे उन दीप-शिखा-से कम्पित अग्नि-स्तभो, को, जो तट के आलोक का प्रतिविम्व थे, और नदी के हृदय से किसी सोने के तरु के समान उग रहे थे। हम देखने लगे, उन वैभवशालिनी अट्टालिकाओ को, जिनकी अस्पष्ट छायाएँ आकाश मे रेखाकित थी। हमने दूर पर प्रज्वलित वालारुण से रक्तिम उन अग्नि-पुजो को देखा, जो किसी की जीवन-लीला के समाप्त होने की सूचना थे। शताव्दियो से यह सूचना निर्विराम नदी के तट पर अकित होती रही है। हमने दूर-दूर तक फैले जुगनुओ से टिमटिम आलोक-विन्दुओं को देखा, जो नगर की रूप-रेखा को स्पष्ट कर रहे थे।

नाव घाट पर आ कर लगी। फिर वही सीढ़ियाँ, जन-रव, शहद की मक्खियो के छत्ते की-सी भनभनाहट। यह दशाश्वमेध है। हम सोचने लगे, यह जीवन का उद्दाम स्वर है, मर-मर कर भी यह जी उठता है। यह जीवन की अवाव-गति है; इसे काल भी नही रोक सकता।

१३

महाकुम्भ

अनेक चरण बढ़े चले आ रहे हैं; नगे, धूल-धूसरित, मोटे, कुरूप चरण; बच्चो के नन्हें, सुकुमार, फूल से कोमल चरण, तरुणियों के मेहँदी-रजित, अशोक को कुसुमित-पल्लवित करने वाले और सुरभि प्रदान करने वाले चरण; थके चरण, जर्जरित चरण, अदम्य उत्साह और उल्लास से बढ़ते चरण, जीवन से पराजित चरण। बच्चे-बूढे, युवा, तरुणियाँ सभी गगा की प्रखर धार से टकराने और कटने को आगे बढे चले आ रहे है। इन चरणो मे महाशक्ति है, अजस्र वेग है, दिग्विजयी सेनाओं को पीछे हटा देने की क्षमता है।

सभी दिशाओं से काली घटाओ के समान भीड़ के बादल उमड़-घुमड़ कर इधर चले आ रहे हैं। यह अनवरत बढता मानव-समूह समुद्र के समान गर्जन-तर्जन करता आ रहा है, इसके सामने कौन टिक सकेगा?

किन आशा-आकांक्षाओ को लेकर यह मानवी दल इस प्रकार तरंगित होकर बढ़ रहा है? उसके मन, मस्तिष्क और हृदय पर युग-युग के प्रबल सस्कार कुंडली मारे वैठे है। इनके पास जीवन के प्रति आस्था और विश्वास कम है, इसीलिए परलोक बनाने की आशा से यह दल के दल उमड़े हैं। इनके जीवन में कोई आकर्षण और सौन्दर्य नहीं है, इसीलिए अपना एकमात्र पर्व मनाने यह दल उमड़े है। यही उनका अश्वमेध और राजसूय यज्ञ है; यही उनका अहर्निश, अखंड कीर्त्तन है। इन्ही आशा-आकाक्षाओ को लेकर यह विजयी चरण चारो धाम करते है, हिम-मडित गिरि-शृगो को लाँघते हैं और सागर-तट को चूमते है। बद्रीनाथ और रामेश्वरम् की परिक्रमा करने की क्षमता इन चरणो में है। जब यही चरण विश्वास से बढते है, तो राजसिहासन डोल उठते है और अहि-कमठ भी अकुलाते हैं।

अपने देश के कण-कण की परिक्रमा यह चरण कर चुके है और अब क्षण भर के लिए मानो त्रिवेणी के तीर पर आकर रुके हैं।

यहाँ एक नया ही नगर बस गया है। इसके अपने राजमार्ग है, गलियारे है, बाज़ार-हाट है, मनोरंजन के स्थान और साधन है। इस नवीन नगर को गगा की धारा ने दो भागों मे काट रक्खा है। यह दो खंडों में कटा उपनगर मानो किसी व्यथित हृदय के दो खडित अंश है। निरन्तर ही गगा की खड्ग-धारा तट को काटती है, और उस पर बने पुलों को फिर-फिर से बनाना पड़ता है।

इस उजाड़-खंड में अनायास ही उग आये वनफूल-से उपनगर का वर्णन हम किस प्रकार करे? सहस्रो झोपड़ियाँ, लाखों झडे, साधु, पताकाएँ, भीड़, यात्री, अनवरत जन-समूह। सभी कोई इस महा मानव-समूह को अपनी औषधि बेचना चाहते है, व्यापारी, बटमार, साधु-संन्यासी, धर्माध्यक्ष। नित्यप्रति गो-सम्मेलन, साधु-सम्मेलन, सन्यासी-सम्मेलन यहाँ होते हैं। सीढ़ियाँ और साँड़ काशी में ही छोड़कर मानो सभी विधवाएँ और संन्यासी यहाँ आ पहुँचे है। अनेक "बहुत महत्त्व के व्यक्ति" भी यहाँ आ बसे है और शासन-तत्र की शान-शौक़त से जनता को प्रभावित और आतकित कर रहे है।

एक ओर अकबर का लाल किला है। मुग़लों के लुटे वैभव और श्री की यह एकाकी यादगार यहाँ है। इस किले पर अक्षय-वट और सरस्वती के खोजी अपना झंडा गाड़ देने को उत्सुक हैं। उधर दूर तक बाँध फैला हुआ है। इसी बाँध ने शताब्दियों से गंगा के अदम्य प्रवाह को थाम रक्खा है, इसी ने इस वेगवती सलिला के हृदय को बाँधा है। कितने नगर और ग्राम यह अपने उन्मत्त प्रवाह में ध्वस कर चुकी है! यह निरन्तर बस्तियाँ बसाती और उजाड़ती रही है, किन्तु अन्ततः इसके हृदय को भी मनुष्य ने अपने पाश मे बाँध ही लिया।

धनुष की तरह अपने क्रोड़ मे इस सतत्-प्रवाहिनी ने नगर को लपेट रक्खा है। तट को निरन्तर यह अपनी धार की तेज़ तलवार से काटा

करती है, किन्तु फिर भी मनुष्य इसकी शरण नहीं छोड़ता, इसे अपने वश मे करके गृहिणी का कल्याणी रूप वह देता है। कितने ऐतिहासिक युग, संस्कृतियाँ और स्मृतियाँ गगा ने अपने व्यापक अंचल मे लपेट रक्खे है! गगा का प्रदेश ही तो भारत का हृदय है और गंगा का इतिहास उत्तर भारत का इतिहास है।

उस पार झूसी है, जहाँ पिछले युगों में मध्यदेश की सस्कृति का अपूर्व विकास हुआ था। यही प्राचीन काल का प्रतिष्ठानपुर था और कुछ कहते है कि लाक्षागृह भी यही था। उधर यमुना कोशाम्बी के कगारों को काटती हुई आती है और किले के नीचे गगा का आलिंगन करती है।

यही हर्ष ने अनेक वार अपना राज्य-कोष जनता को बाँट दिया था, यही चीनी यात्री हुयेन-साग से उनकी भेट और वार्त्ता हुई थी। अशेप ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्मृतियो का सन्धि-स्थल और केन्द्र-विन्दु यह स्थान है। यही एक वार फिर अनन्त जनता उमड़ रही है। किन अभिलाषाओं को लेकर? मोक्ष की आकुलता से, उत्सव की लालसा से, या अनन्त अवसाद और एकरसता-भरे जीवन मे पल भर के आकर्पण और धड़कन के मोह से? किन सूक्ष्म, गहरी भावनाओ को लेकर यह मानवी महानद यहाँ उमड़-घुमड़ रहा है?

रात के कृत्रिम आलोक मे इस मायापुरी पर विचित्र मोहिनी छा जाती है। नीले प्रकाश-पुंज चर्तुदिक् चमचमा उठते है, असख्य आलोक-मालिकाएँ जल उठती है। आमोद-स्थल, शिक्षा और सस्कृति के केन्द्र यात्री को इन प्रकाश की उँगलियो से मानो निरंतर अपनी ओर वुलाते है। दूर-दूर पर छोटे-छोटे जुगनू से प्रकाश-विन्दु झलमलाते है। यह कल्पवासी है और अनेक विघ्न-वाधाओं का भार उठाते हुए पुण्य-लाभ कर रहे हैं। इन्हे साधु आतकित करते है, पडे ठगते है, व्यापारी लूटते हैं, पुलिस वाले पीटते हैं। झोंपड़िया मे आग लगती है। उनका सर्वस्व लुट जाता है। अनेक मर जाते है। फिर भी जो बचे है, वे प्रसन्न है, 'क्योंकि

उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त है। दैव ने उन्हें अनेक यातनाओ से बचा लिया है। इसी के लिए वे कृतज्ञ है!

महापर्व के दिन साधु-महन्तो के अखाड़े निकलते हैं। अपार जन-समूह टूट पड़ता है। हाथियों पर सोने-चाँदी के हौदों पर बैठकर महन्त पुण्य-लग्न पर स्नान के लिए जाते है। उनके ऐश्वर्य से कुबेर और इन्द्र भी ईर्ष्या करते हैं। शिष्यो के दल चँवर डुलाते हुए उनके साथ चलते हैं। यह महन्त राजसी ठाठ-बाट से गेरुए का श्रृंगार करते हैं। इनके दोनो ससार सुरक्षित है।

यह नागा साधुओ का अखाड़ा है। यह मनुष्य का आदिम रूप और वेष है। इनके नेत्रों मे चिता-ज्वालाओं की लालिमा है। यह साक्षात् ध्वंस के अवतार है। चिमटा मारकर ये यात्रियों और व्यापारियो से पैसा और लकड़ी वसूल करते है। गगा मे पैर का अँगूठा मात्र भिगोकर इनका स्नान पूरा हो जाता है!

अनेक साधुओं की टोलियाँ निकलती हैं। दर्शक उनके पैरों की धूल उठाकर सिर पर चढाते है और अपने को धन्य समझते है।

अनेक साधु-सन्त, कोढ़ी, भिखारी शव पर गिद्धों की भीड़ की भाँति इस महापर्व पर जुड़ते है। कोई काँटो पर लेटा हुआ है; किसी की जीभ मे त्रिशूल विधा है, किसी के शरीर पर लाल, सिन्दूरी घाव चमचमाते हैं। अनेक चोर और बटमार भी यहाँ एकत्रित हुए है।

किसी समय यह महापर्व उत्सव और हर्ष का अवसर रहा होगा, किन्तु आज तो दीन-हीन, असख्य जनता के अन्ध-विश्वासों का लाभ उठाकर सामाजिक परोपजीवियो को मोटा करने का साधन-मात्र रह गया है।

अनेक चरण मोक्ष की खोज मे आगे बढे आ रहे हैं। जब अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर यह चरण बढ़ने लगेंगे, तो इनकी गति को रोकने की क्षमता किसमे होगी?

अमावस्या के महास्नान का यह दिवस है। इस दिन संगम में स्नान

करना अमृत-कुम्भ मे नहाने के समान है। इस पुण्य लग्न मे नहाने से मोक्ष मिलती है। सभी समाचार-पत्र यह कह रहे है। रेडियो पर निरन्तर कथा और वार्त्ता भी यही कहती है। उस दिन गगा में स्नान के लिए राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री भी यहाँ होगे, बडे-बडे लाट-गवर्नर यहाँ रहेगे, शासक मंडल पूरे साज-समान सहित यहाँ रहेगा।

मोक्ष के आकांक्षी लाखों-लाख चले आ रहे है। यह बाढ़ मानो रोके नही रुकेगी। उमडी नदी की धारा के समान निरन्तर यह बढ़ी चली आ रही है। इसकी गति मानो अनादि और अनन्त है। आकाश के नीचे वर्षा में भीगते हुए यह लाखों मनुष्य पड़े है; सड़को के किनारे और मैदान मे यह सो रहे है। सभी काम यह अपने यही निबटा लेते है। यही यह खाना पकाते हैं और निवृत्त भी हो लेते है। मक्खियो और कीड़ो के समान यह मानव-समूह चतुर्दिक् व्याप्त है।

किसी आदिम जाति की दक्षिण-पश्चिम गति के समान यह बढ़ रहा है; टीड़ी-दल के समान यह चला आ रहा है। नागाओं के लिए, मन्त्रियो के लिए सडके और नहाने के स्थान सुरक्षित है। यह भीड़ किधर जाय? प्रबन्ध सब टूट गया है। इधर से भीड आ रही है, उधर से भीड़ लौट रही है। दीवार के समान ठोस यह मानव-समूह है। सुई की नोक के बराबर भी भूमि यह नही छोड़ सकता। पुलिस इस पर घोड़े दौड़ाती है, नागा त्रिशूल लेकर इस पर टूटते है। भगदड़ मचती है, हज़ारो कुचल जाते हैं। स्त्रियाँ निरावरण हो जाती है, बच्चे पैरो के नीचे पिस जाते है, हज़ारो के साँस घुट जाते है। हज़ारो घायल हो जाते है। दु.ख, चिन्ता और क्रोध की ज्वाला देश भर मे फैल जाती है। यह देश बड़ा आध्यात्मिक है। जीवन और मृत्यु की छाया से तृण-भर यह विचलित नही होता।

भीड़ वापस जा रही है। मोक्ष की खोज मे असख्य आये थे, किन्तु अनेक लौटे जा रहे है। जिन्हें मोक्ष मिल गई, उनके शव चारो ओर पड़े है, गंगा मे उतरा रहे है, लारियो मे भर-भर कर हटाये जा रहे है, सार्वजनिक चिताओ मे जलाये जा रहे है।

पर महाराज हर्ष वार-वार अपने राजकोप का धन, अपना राजदड और मुकुट तक भिक्षार्थियो की भेंट कर देते थे। वडे-वडे आचार्य और पंडित यहाँ जुडते थे और जीवन और मृत्यु के कठिन विपयो पर वार्तालाप करते थें। विदेशो के ज्ञानी भी इन वार्त्ताओ मे शामिल होते थे। अब भी यहाँ बड़े-बडे योगी और सन्यासी आते है, किन्तु ऐसे साधुओ के सबध में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था :

'निराचार सो सुति पथ त्यागी, कलिजुग सोई ज्ञानी, वैंरागी।
जाके नख अरु जटा विशाला, सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।'

हाल मे ही संगम ने जो दो प्रसिद्ध दृश्य देखे, उनमें एक था महात्मा गांधी का अस्थि-प्रवाह और दूसरा था सन् '५४ का महाकुभ। इस महाकुभ मे मोक्ष के अनेक महत्त्वाकाक्षी अनायास ही अपना इच्छित वरदान पा गए थे। काल के महाप्रवाह मे असंख्य बह चुके है, उनकी क्या गिनती की जाय! किन्तु राष्ट्रपिता की अन्तिम यात्रा का अवसाद इतिहास आसानी से न भुला सकेगा। उस शोक के महासागर मे हमने देखा, अगणित लोग बूड़ते और उतराते थे। महान ज्योति को कुटिल मनुष्य ने अपनी फूंक से वुझाना चाहा था, किन्तु ज्योति अधिक प्रज्वलित होकर जलती रही और कुटिल मनुष्य स्वय वुझ गया।

प्राचीन नगर इस दृश्य को कभी न भूलेगा। एक असीम मानव महानद चारों दिशाओं से उमड़ कर सगम-स्थल पर पहुँच रहा था। उस दिन कोई ऐसा न था, जिसका कंठ आर्द्र न हो, जिसके नेत्र सूखे हों। राष्ट्रपिता के शोक मे डूबे संपूर्ण राष्ट्र का ही मानो ग्रह महाप्रयाण था। इसी पीढी ने गाधी की अन्तिम यात्रा देखी है। इस यात्रा मे वह मानो बुद्ध और ईसा की अन्तिम यात्रा देखती है।

इतिहास की स्मृतियो से भरे इस नगर की तुलना हम किन प्राचीन नगरो से करे? रोम, एथेंन्स, दिल्ली से, अथवा वावुल, पोम्पेआई, मोहेन्जोदड़ो और कोणार्क से? वावुल, पोम्पेआई और मोहेन्जोदड़ो के केवल चिन्ह मात्र ही अव बचे हैं। रोम और दिल्ली के समान

साम्राज्यों के खडहर यहाँ नही है, परन्तु गगा के जल के समान निर्मल और स्वच्छ प्राचीन ज्ञान और सस्कृति की परम्परा यहाँ चिरकाल से बहती हुई चली आ रही है। इसी पुण्यसलिला में 'मज्जन पान' के लिए लालायित ज्ञान और मुक्ति के आकाक्षी यात्री यहाँ सदा से जुड़ते आ रहे हैं। गगा की धारा के समान ही वेगवाहिनी और निर्मल संस्कृति की अखंड, अविरल धारा यहाँ वहती रही है।

पृथ्वी से वादल आकाश मे उठते है और जल की बूंद बन कर फिर पृथ्वी को ही लौटते हैं, उसे उर्वरा वनाते है और धन-धान्य से परिपूर्ण करते है। वर्षा के जल के समान ही स्निग्ध और पवित्र ज्ञान और सस्कृति की धारा मनुष्य जीवन को धन्य और समस्त वैभव से परिपूर्ण बनाती है। यह धारा भी पृथ्वी से ही फूट कर फिर उसे समृद्ध वनाती है। भारतीय संस्कृति की अनेकरूपी धाराओ का संगम इस नगर मे हुआ है और यही इस नगर की महिमा है।

इस नगर मे अनेक उपनगर हैं और उनके अपने अलग इतिहास हैं।- पूर्व मे गगा के ऊँचे कगारों पर वसा दारागज है, जहाँ के पडे और यात्री हमें हरिद्वार और काशी की याद दिलाया करते है। यहाँ नाई यात्रियों के बाल मूंडा करते हैं, पुण्यार्थी गगा मे नाक बन्द करके डुबकी लगाया करते हैं, चूड़ियो, टीका-बिन्दी और यज्ञोपवीत की बिक्री धड़ल्ले से दूकानो पर होती है। यहाँ से अकवर का वनवाया वाँध दोनों दिशाओं मे फैलता है। एक वाहु से लाल किला और दूसरी से वघाड़ा अपनी गोद मे समेट कर गंगा के प्रवल प्रहारो से वह नगर की रक्षा करता है। वर्षा मे जब वाढ के जल से अधीर गगा हुकार भरके वाँध पर टूटती है, तब मानव विश्वकर्मा का प्रतीक यह वाँध अनायास ही उस उमड़ती धारा को अपने चरणो से पीछे ठेल देता है।

दक्षिण मे नख्खास कोने से वहादुरगज तक फैला पुराना मध्ययुगीन वादशाही नगर है। यही नगर के वीच से भारतीय इतिहास का वह विख्यात राजमार्ग निकलता है, जिसे अशोक ने वनवाया था और शेरशाह

इतना वड़ा कुम्भ इतिहास मे कभी नहीं हुआ। न कभी इतने मनुष्य मोक्ष ही पा सके थे। यह अमृत-कुम्भ जनता के हेतु विष-कुम्भ वन गया था। इतिहास में यह स्मृति अक्षय-वट के समान अजर-अमर रहेगी! इतने व्यक्ति कभी एक साथ किसी दुर्घटना मे इसके पूर्व मुक्ति न पा सके थे। अनेक लोग आश्चर्य करते है कि इतने इस यज्ञ में कैसे स्वाहा हो गये; हमे आश्चर्य है कि इतने इस मृत्यु-पाश से वचकर निकल कैसे आये!

१४

पुराना नगर

अत्यन्त प्राचीन हमारा यह नगर है। युग-युगान्तर से गगा और यमुना की धाराएँ इसके चरण धोती आई है। संपूर्ण उत्तर भारत के तरंगाकुल जीवन का यह वौद्धिक केन्द्र रहा है। राजसत्ता के, व्यापारियों के, लुटेरो के, यात्रियो के कारवाँ निरन्तर यहाँ विश्राम के लिए रुके हैं, और आगे वढ़ गए हैं। नगर के वीच से अशोक का वनाया पुरुपपुर से वगाल तक फैला राजमार्ग आज भी हुकार भरता हुआ निकलता है, नदी के विशाल पाट पर अव भी पूर्वकाल की भाँति ही अतुल धन राशि और वाणिज्य का विनिमय चलता रहता है। सम्राट् और यात्री आज भी गगा और यमुना के मिलन-स्थल पर मोक्ष की कामना से सिर झुकाते है।

प्राचीन नगरों में 'उदासी, तपोव्रत धारी' यह नगर है। अनेक महान सम्राटो की राजधानी इस पुण्य भूमि पर रही है। कुछ मील दूर पर ही उदयन की राजधानी, कोशाम्वी, यमुना के तट पर वसी थी। यही तथागत् के आगमन के उपलक्ष्य मे कोशाम्वी के श्रेष्ठिपुत्र ने सुप्रसिद्ध घोपिताराम सघ वनवाया था। अशोक का एक सुप्रसिद्ध स्तभ प्रयाग में है और एक कोशाम्वी मे। गगा के पार प्राचीन काल का विख्यात नगर, प्रतिष्ठान, वसा था, जिसके ऊँचे-ऊँचे ढूह ही अव गगा के कगारों पर स्मारक रूप मे खड़े हैं। दूसरी दिशा मे अनेक खंडहरो के वीच कड़ा के

अवशेष है, जो खिल्जी वंश के विचित्र व्यापारो की याद दिलाया करते हैं। पुराने बुर्ज पर काल के प्रहरी की भाँति खडे होकर हम गंगा के अविरल प्रवाह को देखते है, जहाँ बीच धार मे अलाउद्दीन खिल्जी ने अपने चचा, सम्राट जलालुद्दीन का आलिंगन करते हुए उन्हे मार कर नदी मे वहा दिया था। यही सत मलूकदास की समाधि है, जिनकी वाणी आज भी जनता की स्मृति में गूँजती है :

'अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥'

प्रति वर्ष मलूकदास के वशज उनकी पाडुलिपियो के पत्र भक्तिभाव से गंगा को भेंट चढ़ाते है और इस प्रकार स्वर्ग मे अपने लिए स्थान सुरक्षित करते है।

गंगा और यमुना का सधि-स्थल भी कितनी ऐतिहासिक स्मृतियो का कोष है। अकवर के बनवाए लाल किले के नीचे से जमुना निकलती है। और भी लाल किले यमुना ने अपने अविरल प्रवाह मे देखे हैं; दिल्ली का श्री सम्पन्न लाल किला, जहाँ दीवाने आम है, दीवाने खास है, और कभी तख्ते-ताऊस था; आगरे का लाल किला, जहाँ से वदी शाहजहाँ ताजमहल को दूर आकाश पर देख कर उसास लिया करते थे; और फिर यह इलाहावाद का लाल किला, जहाँ मुगलो के वैभव और श्री की कोई भी और यादगार नही, जहाँ अशोक स्तभ है और अक्षयवट है और कुछ ही वर्ष पूर्व विदेशी सेनाओ का पड़ाव था। केवल अकवर की याद यह लाल किला हरी करता है। न यहाँ मोती मस्जिद है, न दीवाने खास, जिसकी दीवारो पर कवि कल्पना के यह शब्द खुदे हैं; 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यही है! यही है!'

किले के नीचे से यमुना निकलती है और कुछ ही दूर आगे गगा की गोद में अखंड विश्राम पाती है। दूसरी ओर से गगा अनेक देश, वन, राज्य, शताब्दियाँ पार करती हुई आती है और यमुना से मिल कर मानो क्षण भर के लिए सगम-स्थल पर इसकी गति विश्रान्ति पाती है। सगम

पर महाराज हर्ष बार-बार अपने राजकोष का धन, अपना राजदंड और मुकुट तक भिक्षार्थियों की भेंट कर देते थे। बड़े-बडे आचार्य और पंडित यहाँ जुड़ते थे और जीवन और मृत्यु के कठिन विपयों पर वार्तालाप करते थें। विदेशो के ज्ञानी भी इन वार्त्ताओ मे शामिल होते थे। अब भी यहाँ बड़े-बड़े योगी और सन्यासी आते है, किन्तु ऐसे साधुओं के सबध में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था :

'निराचार सो सुति पथ त्यागी, कलिजुग सोई ज्ञानी, वैरागी।
जाके नख अरु जटा विशाला, सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।'

हाल मे ही सगम ने जो दो प्रसिद्ध दृश्य देखे, उनमें एक था महात्मा गांधी का अस्थि-प्रवाह और दूसरा था सन् '५४ का महाकुंभ। इस महाकुंभ मे मोक्ष के अनेक महत्त्वाकांक्षी अनायास ही अपना इच्छित वरदान पा गए थे। काल के महाप्रवाह मे असंख्य बह चुके है, उनकी क्या गिनती की जाय! किन्तु राष्ट्रपिता की अन्तिम यात्रा का अवसाद इतिहास आसानी से न भुला सकेगा। उस शोक के महासागर मे हमने देखा, अगणित लोग बूड़ते और उतराते थे। महान ज्योति को कुटिल मनुष्य ने अपनी फूंक से बुझाना चाहा था, किन्तु ज्योति अधिक प्रज्वलित होकर जलती रही और कुटिल मनुष्य स्वयं बुझ गया।

प्राचीन नगर इस दृश्य को कभी न भूलेगा। एक असीम मानव महानद चारो दिशाओं से उमड कर सगम-स्थल पर पहुँच रहा था। उस दिन कोई ऐसा न था, जिसका कंठ आर्द्र न हो, जिसके नेत्र सूखे हों। राष्ट्रपिता के शोक मे डूबे सपूर्ण राष्ट्र का ही मानो यह महाप्रयाण था। इसी पीढी ने गाधी की अन्तिम यात्रा देखी है। इस यात्रा मे वह मानो बुद्ध और ईसा की अन्तिम यात्रा देखती है।

इतिहास की स्मृतियो से भरे इस नगर की तुलना हम किन प्राचीन नगरो से करे? रोम, एथेन्स, दिल्ली से, अथवा बाबुल, पोम्पेआई, मोहेन्जोदडो और कोणार्क से? बाबुल, पोम्पेआई और मोहेन्जोदड़ो के केवल चिन्ह मात्र ही अब बचे हैं। रोम और दिल्ली के समान

साम्राज्यों के खंडहर यहाँ नही है, परन्तु गगा के जल के समान निर्मल और स्वच्छ प्राचीन ज्ञान और सस्कृति की परम्परा यहाँ चिरकाल से बहती हुई चली आ रही है। इसी पुण्यसलिला मे 'मज्जन पान' के लिए लालायित ज्ञान और मुक्ति के आकाक्षी यात्री यहाँ सदा से जुड़ते आ रहे है। गगा की धारा के समान ही वेगवाहिनी और निर्मल संस्कृति की अखड, अविरल धारा यहाँ वहती रही है।

पृथ्वी से वादल आकाश मे उठते है और जल की बूंद बन कर फिर पृथ्वी को ही लौटते हैं, उसे उर्वरा बनाते है और धन-धान्य से परिपूर्ण करते है। वर्षा के जल के समान ही स्निग्ध और पवित्र ज्ञान और सस्कृति की धारा मनुष्य जीवन को धन्य और समस्त वैभव से परिपूर्ण बनाती है। यह धारा भी पृथ्वी से ही फूट कर फिर उसे समृद्ध वनाती है। भारतीय संस्कृति की अनेकरूपी धाराओ का संगम इस नगर मे हुआ है और यही इस नगर की महिमा है।

इस नगर में अनेक उपनगर है और उनके अपने अलग इतिहास हैं। पूर्व मे गंगा के ऊँचे कगारो पर वसा दारागज है, जहाँ के पंडे और यात्री हमे हरिद्वार और काशी की याद दिलाया करते हैं। यहाँ नाई यात्रियों के बाल मूँड़ा करते है, पुण्यार्थी गगा मे नाक बन्द करके डुबकी लगाया करते हैं, चूड़ियो, टीका-बिन्दी और यज्ञोपवीत की बिक्री धड़ल्ले से दूकानों पर होती है। यहाँ से अकवर का बनवाया बाँध दोनों दिशाओं मे फैलता हैं। एक बाहु से लाल किला और दूसरी से बघाड़ा अपनी गोद मे समेट कर गगा के प्रवल प्रहारो से वह नगर की रक्षा करता है। वर्षा मे जब बाढ़ के जल से अधीर गगा हुकार भरके बाँध पर टूटती है, तब मानव विश्वकर्मा का प्रतीक यह बाँध अनायास ही उस उमड़ती धारा को अपने चरणो से पीछे ठेल देता है।

दक्षिण में नख्खास कोने से वहादुरगज तक फैला पुराना मध्ययुगीन बादशाही नगर है। यहीं नगर के बीच से भारतीय इतिहास का वह विख्यात राजमार्ग निकलता है, जिसे अशोक ने वनवाया था और शेरशाह

ने जिसका कायाकल्प किया। इस भाग मे तंग गली है, अधकार है, सीलन, बदबू और गरीबी है, अंधविश्वास है, अशिक्षा का अभिशाप है। विरासत के रूप मे इतिहास ने यह सब विपन्नता भी इस नगर को दी है। यहाँ दारा शाह अजमल है, इमामबाड़ा स्याह मुर्ग है, पुराने कारीगर है, पक मे सड़ती हुई मानवता है, जो कमल के फूल के समान खिल उठने की आतुरता मे आलोक की प्रथम रश्मियों की प्रतीक्षा कर रही है।

उत्तर में नए उपनगर है, कटरा, कर्नलगज और फाफामऊ की दिशा मे फैलती हुई बस्तियाँ हैं। वहाँ से पश्चिम की ओर बढ़ती हुई गगा की भुजा नगर का कठहार बनी है। द्रौपदी घाट, रसूलाबाद, फाफामऊ, बघाड़ा, नाग वासुकि और दारागंज। धनुप के समान गोल होकर यह 'हीरक-सी' नव उज्ज्वल जल धार हमारे नगर के गले में लिपटी है।

और फिर एक और भी उपनगर लूकर गज से डग बढ़ाता हुआ बमरौली की ओर बढ़ रहा है।

इन सभी उपनगरो का पुज हमारा यह नगर है। प्राचीन और नवीन का यहाँ अद्भुत मिलन हम पाते है। जैसे गगा का जल चिर-पुरातन होते हुए भी चिर-नवीन है। उसी प्रकार हमारे नगर का जीवन भी अति प्राचीन होते हुए अति आधुनिक भी है।

बहुत प्रशान्त यहाँ का जीवन है। कलकत्ता, बबई अथवा कानपुर के समान नए नगरो का कोलाहल और हाहाकार हम यहाँ नही पाते। सदियो से बहती आई हमारी प्राचीन सस्कृति ने आत्म-अभिमान से जीवन बिताने की कला हमे सिखा दी है। इस कला को दो जातियो ने इतिहास से अच्छी तरह सीखा है, हमने और हमारी पडोसी चीनी जाति ने। अब अन्य अनेक जातियाँ भी इस शिक्षा को ग्रहण कर रही हैं।

दूर-दूर तक फैला, मुक्त वायु और आकाश का आलिंगन करता हुआ, बागो और हरे खेतो का परिधान पहने हमारा यह सुन्दर

नगर अनेक सदियों से फलता-फूलता रहा है। इतिहास ने जव हमारे देश में आँखे खोली थी, लगभग तभी इसका जन्म हुआ था। भारद्वाज ऋषि ने इसे अपने ज्ञान-सचय का केन्द्र वनाया। अशोक, उदयन और हर्ष के चरण-चिन्ह यहाँ की भूमि में अकित है। युआन च्वांग के समान ज्ञान के खोजी यहाँ चिरकाल से आते रहे है। अकवर और राजकुमार खुसरू के प्रसिद्ध स्मारक यहाँ है। प्रत्येक दिन, प्रति क्षण और प्रति पल इतिहास की स्मृतियों के सन्मुख नत-मस्तक यात्री यहाँ आया करते हैं।

मध्ययुगीन निद्रा से जाग कर इस प्राचीन नगर ने भी आधुनिक युग के आलोक मे करवट ली है। विदेशी शासन के विरुद्ध सघर्षो में इसने प्रमुख भाग लिया। अनेक महान पडित और आचार्य आज भी इस भूमि मे जन्म लेते है और मानो सूर्य के रथ के पहियो तक उनके यश की छाया फैलती है। यहाँ सुप्रसिद्ध न्यायालय है, विश्वविद्यालय है, ज्ञान और विज्ञान के अनेक केन्द्रस्थल है, जो संस्कृति की धारा को निरन्तर समृद्ध वनाते है।

प्रशान्त, गहर गंभीर, स्निग्ध यहाँ जीवन का प्रवाह है। वीच-वीच मे धारा में भँवर बनते हैं, जीवन मे उद्दाम वेग आता है, फिर धारा अपने धीर, गंभीर, निश्चित डगों से आगे वढ़ती रहती है। इस नगर के प्राचीन, ऐतिहासिक जीवन की धारा मानो सतत-प्रवाहिनी गगा की धारा के ही समान है, जो चचल, चपल चरणो से शैशव मे किलकती हुई वढ़ी थी, किन्तु जो इन दूर क्षितिज तक फैलते मैदानो मे आकर शान्त और मथर गति से बह रही है। हमारी प्राचीन सस्कृति की यह अखंड, अविरल धारा ज्ञान के विशाल, असीम सागर से मिलने के लिए आतुर निश्चित डगो से आगे वढ़ती है। उस भविष्य की ओर हमारे नेत्र उठ रहे है। हम भी इस धारा के अश वन कर, वूँद के कणो के समान समवेत् मे लीन होकर आगे वढ़ते है।

१५
खँडहर

वह हवेली किसी समय आलीशान इमारत रही होगी, किन्तु अब पुराने कुल का टूटा खँडहर थी। फाटक के अन्दर घुसते ही हम चारों ओर झाड-झंखाड का साम्राज्य देखते थे। बडे भारी कुएँ के पक्के जगत के पास ही एक पुराना पीपल का पेड़ आकाश में सिर उठाये खड़ा था; उसकी पत्तियाँ, चिडियों की बीट और तरह-तरह का कूड़ा-कर्कट निरन्तर कुँए में गिरता था, किन्तु उसे साफ करानेवाला कोई न था। फाटक के अन्दर बडा भारी मैदान-सा था; यहाँ स्कूल के लड़के जुडकर शाम को कबड्डी, गुल्ली-डडा और क्रिकेट खेलते थे। एक ओर अन्दर को बडी-सी बगीची थी, जो वीरान, उजडी पड़ी थी, और जहाँ जगल उग रहा था। यहाँ मोहल्ले-भर के लोग सुबह मुँह-अँधेरे और झुटपुटे मे शाम को दिशा-फरागत होने आते थे।

बड़े बाजार के बीचोबीच यह हवेली भग्न और जर्जर अवस्था में गिरने को तत्पर काल का मुँह देख रही थी। अनेक परिवारो में पुराना कुल बँट चुका था। इनमें कुछ कगाल हो गये थे, कुछ नौकरी की खोज मे परदेसी बन गये थे और हवेली की मरम्मत आदि की तरफ से उदासीन हो गये थे। सोचते थे, कौन झगडा मोल ले! मरम्मत करायी, पैसा लगाया, फिर मुकदमेबाजी मे फँसे, तो और रुपया बर्बाद होगा। मिल-जुलकर कोई काम कर न पाता था। कुछ दो-एक परिवार जो पहले छोटे थे, अब पनप भी रहे थे। उनके हिस्सों की मरम्मत हो गयी थी। गर्व और अभिमान से उनका माथा तन रहा था, और जलन से दूसरे परिवार कुढ रहे थे।

मैदान के इर्द-गिर्द बाहरी बैठके थे, उसके बाद पौरी मे अन्दर जाने के लिए एक मुख्य द्वार था। रात को फाटक मे ताला पड जाता था। सभी परिवारों को हवेली का मुख्य द्वार पार करके अन्दर आना होता था।

रात में कुल के बूढ़े बाहर बैठको में या मैदान में लेटते थे; बाकी सभी अन्दर अपने-अपने हिस्से में रहते थे। घर के इन अशो के अपने अलग-अलग द्वार थे। बीच मे एक विशाल प्रांगण था, जिसमे अनेक जंगली घास-फूस उग रहे थे, एकाध कनेर के पेड थे और गुलाबाँस की एक लता थी।

यह प्राचीन खँडहर एक पूरा इतिहास सँजोये खडा था। कितनी उथल-पुथल, कितने परिवर्त्तन, काल की कितनी करवटे वह देख चुका था! कितने राजा से भिखारी बन चुके थे, और कितने भिखारी से सेठ! कुछ ऐसे थे, जिन्होने सोना छुआ, तो मिट्टी हो गयी, और कुछ ऐसे, जिन्होने मिट्टी छुई, तो सोना हो गया। अन्तर केवल यही था कि रईस तो केवल दो-एक हुए, किन्तु शेष सभी कंगाल हो रहे थे।

कितनी कलह, ईर्ष्या, द्वेष इस खँडहर मे थे! ज़रा-ज़रा-सी बात पर झगड़े उठ खडे होते थे।, वाग्युद्ध निरन्तर चलते थे, स्त्रियाँ शब्दों की बाण-वर्षा करती थी, पुरुष सिर तोड़ने को तैयार रहते थे। यह खँडहर किसी ज्वालामुखी के समान था, जिसके अन्दर निरन्तर भीषण अग्नि सुलगती रहती थी और प्रति पल विस्फोट की आशका तीव्र रहती थी।

खँडहर के कुछ परिवार व्यवसाय मे लगे थे, कुछ दूर परदेश में नौकरियाँ कर रहे थे। नौकरी पेशेवालो की आय व्यवस्थित थी, व्यापार वालों की स्थिति अधिकतर डावाँडोल थी। इस पुराने कुल की नौका मानो मँझधार मे डगमग कर रही थी, और समझ मे न आता था कि वह पार लगेगी अथवा बीच में ही डूब जायगी!

इस वृहद् पुराने कुल की एक शाखा व्यवसाय मे पनप रही थी। अहाते के एक ओर के बैठके और कोठरियाँ उनकी थी। यह बैठके फिर से बन गये थे और इनमे स्कूल लगने लगा था। पौरी के अन्दर घुसने पर सब से एक ओर का भाग इनकी सपत्ति था, किन्तु यह वीरान और उजडा पडा था, यहाँ घर में देख-रेख के लिए कोई स्त्री न थी, और चारों

अद्भुत आकर्षण से देखते थे। गृह-स्वामी वूढे थे, उनकी मृत्यु इसी घर में वडे कष्ट से हुई थी। एक लडकी का विवाह वड़ी धूम-धाम से हुआ था। फिर वे लोग कही और चले गये थे। घर में ताला पड़ गया था और एक भारी अवसाद और शून्यता कुछ दिन के लिए वातावरण मे छा गयी थी।

इससे अगले भाग मे एक और चाचा रहते थे। इनका घर छोटा किन्तु सुगढ था। उसके फर्श पक्के थे और उसमे ऊपर का भी खण्ड वन चुका था। चचा नाम के लिए पन्सारे की दूकान पर वैठते थे. किन्तु उनकी दूकान से वच्चे मुफ्त का चूरन लेते थे और कभी-कभी पोस्ट-कार्ड खरीदते थे, जिससे उन्हे कोई आमदनी न थी। यह चचा वहुत छोटे कद के थे; यह अपनी घनी मूँछो मे वैसलीन लगाकर उन्हे तरोतेज़ रखते थे। इनके वड़े भाई भी परदेशी थे और उन्ही की आय से कुल की वृद्धि हो रही थी।

खँडहर के अगले भाग मे हमारा कुल रहता था। लगभग आधी हवेली हमारे हिस्से मे थी, किन्तु हमारे पितामह चार भाई थे; उनकी सन्तान सख्या मे दर्जनो तक पहुँच गयी थी। इनमे से अनेक जीविका की खोज मे परदेशवासी वने थे। हवेली की कोई मरम्मत न होती थी। वह अतिशय जराजीर्ण अवस्था मे थी। वाहर एक वैठका अवश्य ढग का था। अन्दर एक वडे भारी छप्पर के नीचे घर के कई भाग किये गये थे, किन्तु इनमे सव का मिल-जुलकर रहना असंभव था। वाहर का अश जीर्ण-शीर्ण पड़ा था; वगीची जगल हो रही थी। छप्पर में न जाने कितनी पीढियों का सचित कूड़ा-कर्कट, इतिहास, किम्वदतियाँ इकट्ठी थी!

कहते थे कि घर मे कही लक्ष्मी गडी हुई थी। किन्ही पूर्व-पुरुषो की कमाई के कोष की यह दन्तकथा थी। किन्तु मोहेन्जोदड़ो की खुदाई के बरावर अथक खोज के वाद भी कही किसी को कोई गड़ा हुआ धन नही मिला। टैगोर की कहानी मे वर्णित ध्वनि के समान उस लक्ष्मी का चंचल स्वर सुनने का अवश्य अनेक संवंधी दावा करते थे।

खँडहर मे अनेक साँप भी विचरते थे। इन्हे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वाधीनता थी। अनुमान था कि यह हमारे पूर्वज थे और अपने समाधिस्थ धन की रक्षा में लीन थे। इन पूर्वजो ने कभी किसी को नही काटा, इसके अनेक उदाहरण दिये जाते थे। टाँड़ पर अँधेरे मे रक्खी सूत से भरी हँडिया मे हमारी पितामही ने हाथ डाला, तो उनको कुछ गिलगिला-सा लगा। हँडिया उठा कर वे वाहर रोशनी मे लायी, तो देखा एक सर्पराज आनन्द से कुण्डली मारे वैठे हैं। पितामही ने माथा ढँकते हुए कहा, 'देखो, बच्चो को कोई कष्ट न देना! और जो इच्छा हो, करो!' पूर्वज हँडिया मे से निकलकर, मानो कुछ लज्जित-से होकर, एक ओर धीमे से सरक गये थे। यह कथा हमने बचपन मे अनेक वार स्वय पितामही के मुख से सुनी थी।

चार भाइयो मे तीन तो दूर देश जाकर जीविकोपार्जन के हेतु निकल गये थे। सबसे छोटे पितामह यहाँ अकेले रहते थे। फिर एक भाई की मृत्यु हो जाने पर उनकी विधवा पत्नी और दो वेटियाँ भी एक अश मे आ वसी थी। हमारे दादा रिटायर होकर कुछ दिन यहाँ वसे थे, किन्तु वाद मे गृह-कलह से क्षुब्ध होकर किराए के मकान मे रहने लगे थे।

टूटते खँडहर को सम्हालने वाला कही कोई दिखायी न पड़ता था। हवेली के बाहर तीन-चार दूकाने थी। उनके किराए से छोटे पितामह और विधवा पितामही किसी प्रकार गुजर-बसर करते थे। खँडहर को गिरने से रोक-थाम करने के लिए एक अनवरत संघर्ष चल रहा था। किन्तु छोटे पितामह के आँख वन्द करने के बाद कौन इसे गिरने से रोक सकेगा, यह स्पष्ट न था। पास-पड़ोस के चचा लोग, जो धन अर्जित कर रहे थे, निरन्तर हिसाव-किताव कर रहे थे कि कब और कैसे पूरी हवेली पर अपना अधिकार जमा लें! बढते हुए धन का अपार मद और दर्प उनकी आत्मा पर छा गया था।

एक दिन सुना कि हमारे एक क्षय-ग्रस्त ताऊ हवेली के एक भग्न अश मे आ वसे थे। इन्हे जीवन पूर्ण रूप से पराजित कर चुका था। अव

ओर विपाद और शून्यता का घना वातावरण था। इस परिवार में केवल तीन प्राणी थे, एक वृद्ध पितामह, उनका तरुण विधुर बेटा, एक पौत्र। पौत्र स्कूल मे विद्यार्थी था, बाबा और चाचा का लाड़ला था, अधिक समय खेल-कूद में बिताता था, और कुछ देर शाम को कभी-कभी दूकान पर भी बैठता था।

इनकी दूकान पंसारे की थी। यह शहर की बड़ी दूकानों मे थी और यह दूकान से काफी धन संचय कर रहे थे। वृद्ध पितामह और चचा दूकान मे परिश्रम भी बहुत करते थे, कभी-कभी तो छोटे-मोटे बोझ के बोरे तक पीठ पर लादकर घर से दूकान तक ले जाते थे। वृद्ध खडाऊँ पहनते थे ऊँची-ऊँची घुटनों तक की धोती, जो मसालों के सम्पर्क से गुलाबी पड रही थी, और निरन्तर धुलवाने से भी सफेद न हो सकती थी; उसके ऊपर वे ऊँचा-सा, कुशाण-कालवाली मूर्त्तियों सदृश अँगरखा पहनते थे, और सिर पर जाड़ों में रूई का कन्टोप। पितामह छै फीट लम्बे थे, और यद्यपि वह साठ ग्रीष्म और शिशिर पार कर चुके थे, वह सीधे अकड़ कर चलते थे। उनका सीना आगे को निकला हुआ और तना था, मानो युवावस्था में उन्होंने खूब कसरत की हो, मेवा-दूध का सेवन किया हो, कुश्ती लड़ी हो, और जीवन के साथ अनेक खेल खेले हों। किम्वदन्तियाँ भी यह थी कि वह युवावस्था में बड़े खाऊ-उडाऊ थे। उनके व्यक्तित्व पर उस अतीत जीवन की स्पष्ट छाप थी। उनकी मूँछे सफेद हो चुकी थीं, किन्तु वह घनी और बड़ी-बड़ी थी और उनकी नोकें अब भी बटकर ऊपर को उठायी हुई थी।

ऐसे थे यह वृद्ध पितामह। खडाऊँ पहन कर सीना फुलाये, अकड से जब वह खट-खट करके चलते थे, तब लगता था कि कोई शेर चल रहा है। बडे झगड़ालू यह पितामह थे; शहर मे सभी उनसे डरते थे। दो-एक उन्होने पट्ठे भी पाल रक्खे थे; उन्ही की धमकी वह निरन्तर सब को देते थे। केवल एक बार हमारे एक चचा उनसे बिगड़ गये थे, भरे बाजार मे उन्होंने जूता उतार पितामह के मुंह पर वार किया था, और

, 'मैं तेरी मूँछों मे आग लगा दूँगा!" इस अप्रत्याशित आघात
हत्प्रभ और मर्माहत हो गये थे, और महीनो घर के बाहर न निकले
न्तु समय बीतने के साथ यह बात भी सब कोई भूल चुके थे,
भी-कभी ही किसी बीती कहानी के समान इसकी चर्चा होती थी।
स पुराने कुल के खँडहर मे अनेक चित्र-विचित्रित व्यक्ति रहते
न सभी का वर्णन किया जाय, तो एक लम्बी कथा हो जायगी!
ष्णु चाचा विधुर थे। दूकान का अधिकतर काम वही सम्हालते
ड़ी मसक्कत वह करते थे। पीठ पर मूँगफली का बोरा लादकर
कान चले जाते थे। लेकिन दूकान बढ़ रही थी, इसलिए धीमे-धीमे
ब बदलने लगा था। उनकी पन्सारे के रग मे रगी गुलाबी धोती
कभी झ काझक सफेद भी दिखायी पड जाती थी। उनकी मूँछें खिचड़ी
ही थी। उनका-कद मँझोला और शरीर इकहरा था। कोई भारी
ा उनके शरीर को अन्दर-ही-अन्दर घुला रहा था। अन्त में एक
कुल की दूर की सबधी एक तरुणी विधवा से विधुर विष्णु चाचा प्रेम
व गये। इस पर पहले तो एक भारी तूफान उठा था, किन्तु अन्त
भी ने मान लिया कि यह स्वाभाविक घटना थी और दो परिवारों
इसके कारण उद्धार हो गया। जो लोग विधवा को अठन्नी और
ा मासिक भी मदद देने को तैयार न थे, धर्म और परमार्थ की लम्बी
' करने लगे, लेकिन हमने देखा कि विधवा की सन्तान अब भूखी-
न थी। 'बच्चो के तन पर अब साफ कपड़े थे और वे स्वस्थ और मोटे
रहे थे।

विष्णु चाचा के घर से आगे का भाग बिलकुल उजडा और टूटा-फूटा
था। इस भाग के स्वामी दूर परदेश मे नौकरी कर रहे थे, और
ी-कभी लड़की-लडकों का विवाह रचने के हेतु ही महीने-दो-महीने
छुट्टी लेकर आते थे। इनके घर का एक ही अंश रहने योग्य था;
में किराए पर एक बर्तन का व्यापार करने वाला परिवार रहता था।
बाजार में चमकते, नये बर्तनो की इनकी दूकान थी, जिसे बच्चे

अद्भुत आकर्षण से देखते थे। गृह-स्वामी बूढे थे, उनकी मृत्यु इसी घर मे बड़े कष्ट से हुई थी। एक लडकी का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ था। फिर वे लोग कही और चले गये थे। घर मे ताला पड गया था और एक भारी अवसाद और शून्यता कुछ दिन के लिए वातावरण मे छा गयी थी।

इससे अगले भाग मे एक और चाचा रहते थे। इनका घर छोटा किन्तु सुगढ़ था। उसके फर्श पक्के थे और उसमे ऊपर का भी खण्ड वन चुका था। चचा नाम के लिए पन्सारे की दूकान पर वैठते थे, किन्तु उनकी दूकान से वच्चे मुफ्त का चूरन लेते थे और कभी-कभी पोस्ट-कार्ड खरीदते थे, जिससे उन्हे कोई आमदनी न थी। यह चचा वहुत छोटे कद के थे; यह अपनी घनी मूँछो मे वैसलीन लगाकर उन्हे तरोतेज रखते थे। इनके वड़े भाई भी परदेशी थे और उन्ही की आय से कुल की वृद्धि हो रही थी।

खँडहर के अगले भाग मे हमारा कुल रहता था। लगभग आधी हवेली हमारे हिस्से मे थी, किन्तु हमारे पितामह चार भाई थे; उनकी सन्तान सख्या मे दर्जनो तक पहुँच गयी थी। इनमें से अनेक जीविका की खोज मे परदेशवासी वने थे। हवेली की कोई मरम्मत न होती थी। वह अतिशय जराजीर्ण अवस्था मे थी। वाहर एक वैठका अवश्य ढग का था। अन्दर एक वडे भारी छप्पर के नीचे घर के कई भाग किये गये थे, किन्तु इनमे सव का मिल-जुलकर रहना असंभव था। वाहर का अंश जीर्ण-शीर्ण पड़ा था, वगीची जगल हो रही थी। छप्पर में न जाने कितनी पीढ़ियों का सचित कूडा-कर्कट, इतिहास, किम्वदतियाँ इकट्ठी थी!

कहते थे कि घर मे कही लक्ष्मी गडी हुई थी। किन्ही पूर्व-पुरुषो की कमाई के कोप की यह दन्तकथा थी। किन्तु मोहेन्जोदड़ो की खुदाई के वरावर अथक खोज के वाद भी कही किसी को कोई गड़ा हुआ धन नही मिला। टैगोर की कहानी में वर्णित ध्वनि के समान उस लक्ष्मी का चंचल स्वर सुनने का अवश्य अनेक संवंधी दावा करते थे।

खँडहर मे अनेक साँप भी विचरते थे। इन्हे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वाधीनता थी। अनुमान था कि यह हमारे पूर्वज थे और अपने समाधिस्थ धन की रक्षा मे लीन थे। इन पूर्वजो ने कभी किसी को नही काटा, इसके अनेक उदाहरण दिये जाते थे। टॉड़ पर अँधेरे मे रक्खी सूत से भरी हँडिया मे हमारी पितामही ने हाथ डाला, तो उनको कुछ गिलगिला-सा लगा। हँडिया उठा कर वे बाहर रोशनी मे लायी, तो देखा एक सर्पराज आनन्द से कुण्डली मारे बैठे हैं। पितामही ने माथा ढँकते हुए कहा, 'देखो, बच्चो को कोई कष्ट न देना! और जो इच्छा हो, करो!' पूर्वज हँडिया मे से निकलकर, मानो कुछ लज्जित-से होकर, एक ओर धीमे से सरक गये थे। यह कथा हमने बचपन मे अनेक बार स्वय पितामही के मुख से सुनी थी।

चार भाइयो मे तीन तो दूर देश जाकर जीविकोपार्जन के हेतु निकल गये थे। सबसे छोटे पितामह यहाँ अकेले रहते थे। फिर एक भाई की मृत्यु हो जाने पर उनकी विधवा पत्नी और दो बेटियाँ भी एक अश मे आ बसी थी। हमारे दादा रिटायर होकर कुछ दिन यहाँ बसे थे, किन्तु बाद मे गृह-कलह से क्षुब्ध होकर किराए के मकान मे रहने लगे थे।

टूटते खँडहर को सम्हालने वाला कही कोई दिखायी न पड़ता था। हवेली के बाहर तीन-चार दूकाने थी। उनके किराए से छोटे पितामह और विधवा पितामही किसी प्रकार गुजर-बसर करते थे। खँडहर को गिरने से रोक-थाम करने के लिए एक अनवरत सघर्ष चल रहा था। किन्तु छोटे पितामह के आँख बन्द करने के बाद कौन इसे गिरने से रोक सकेगा, यह स्पष्ट न था। पास-पड़ोस के चचा लोग, जो धन अर्जित कर रहे थे, निरन्तर हिसाब-किताब कर रहे थे कि कब और कैसे पूरी हवेली पर अपना अधिकार जमा लें! बढते हुए धन का अपार मद और दर्प उनकी आत्मा पर छा गया था।

एक दिन सुना कि हमारे एक क्षय-ग्रस्त ताऊ हवेली के एक भग्न अश मे आ बसे थे। इन्हे जीवन पूर्ण रूप से पराजित कर चुका था। अंब

यह सभी अस्त्र-शस्त्र डालकर अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। वह गोरे, लम्बे, ताड-से व्यक्ति थे। उनका शरीर रोग, सघर्ष और कठोर मुसीबतो के कारण मोम के समान घुल चुका था। तपकर वह अब पीला हो गया था, उनके मुँह पर एक अपूर्व चमक आ गयी थी, किन्तु एक कठिन शोक, अवसाद और व्यथा भी मानो कूची में भर कर कालिमा उस मुख पर पोत गयी थी।

कुल के बूढों मे परामर्श हुआ। सभी ने दस-पाँच रुपये मासिक इस असमय ही सूखते और गिरते कुल-तरु की शुश्रूषा के लिए बाँध दिये। किन्तु सब ही जानते थे कि यह जीवन-तरु सूखकर गिरने ही वाला है, इसे कोई दवा-दारू और सेवा-शुश्रूपा बचा नही सकती। वैसे न रोग के अनुरूप उनका पथ्य हो सकता था, न दवा। बस्ती के पुराने नामी वैद्य उन्हें दवा देते थे, किन्तु दवा तो मुफ्त ही मिलती थी। न घी, दूध और फल ही उन्हे उपलब्ध थे।

इस वृहद् पुराने कुल का एक तरुण तरु इस प्रकार असमय ही सूखकर गिर रहा था। सयुक्त परिवार के पास उसका जीवन बचाने के योग्य साधन थे, किन्तु परिवार बँट चुका था और कोई किसी के दुःख-सुख मे अधिक शामिल होने को तैयार न था। अतएव दस-पाँच रुपए की सहायता का वादा करके जो कुछ कर सकते थे, उन्होने अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझ ली।

एक दिन वृहद कुल-तरु की यह शाखा टूट कर भूमि पर गिर गयी और धूल मे मिल गयी। हमें लगता है कि यह असमय ही नष्ट होते प्राण खँडहर की जीवन-कथा के ही एक रूपक थे। खँडहर गिर रहा है; उसके प्राणो का स्पन्दन मन्द और हल्का पड़ रहा है। उसे काल का ग्रास बनने से नही बचाया जा सकता।

खँडहर टूटते सयुक्त परिवार का प्रतीक और रूपक है। समय और इतिहास की गति उसके भाग्य का निपटारा कर चुकी है। उसे गिरने और टूटने से बचाने का कोई भी उपचार और व्यवस्था अब व्यर्थ है!

१६

वाक़र

वाकर यूनिवर्सिटी मे अँग्रेजी विभाग का चपरासी है। वह डिपार्टमेन्ट के बड़े प्रोफेसर का खास चपरासी है। किसी जमाने मे वह वाइस चांसलर साहिब का खास चपरासी था, लेकिन अपने लालवुझक्कड़ स्वभाव के सवव वहाँ से हटा कर नीचे भेजा गया! वाकर वड़ा सीधा-सादा आदमी है; वह हमेशा कुछ भूला-भूला-सा रहता है। प्रोफेसर कहते है कि "मुकर्जी साहब को सलाम दो", तो वह छोटे मिश्रा जी को वुला ले जाता है! जव वूढ़े वाइस चांसलर यूनिवर्सिटी मे थे, तव वाकर वाजार से उनकी सब्जी वगैरा ला देता था, और उसका काम चलता रहता था; लेकिन जव वूढे पडित के पुत्र वाइस चांसलर वने, तो उनका काम वाकर से चलना मुश्किल हो गया। हद उस दिन हुई, जब वाकर ने उनकी चैक वैंक में जमा करने के वजाय एक किताव में गलती से दबा कर रख दी। महीनों वाद जब वह वरामद हुई, तो वाकर को अफसरी की जगह से हट कर अँग्रेजी विभाग मे आना पडा, जहाँ उसी की तरह भुलक्कड एक प्रोफेसर हाकिम थे, और दोनो की अच्छी तरह निभ जाती थी!

वाकर वहुत सीधा आदमी है। उसके वारे मे सभी की राय है कि वह डिपार्टमेन्ट का सवसे सज्जन व्यक्ति है। वह हमेशा हँसता रहता है, कभी किसी से कठोर वात नही कहता। उसकी आँखें उदास हैं और डाढ़ी छोटी-सी, तराशी हुई, समोसेनुमा। उसे देख कर मुझे मुगल सम्राटो की याद आती है, वावर और हुमायूँ की, मगोल जातियो की, वल्ख, वदख्शां और समरकन्द की, आमू और सीर दरिया की! किसी जमाने मे जो तुर्क-मगोल सस्कृति का कारवा मध्य एशिया के पठारो और रेगिस्तानो से चला था, अनेक देशी और जातियो के वीच से गुजरता

हुआ हिन्दुस्तान पहुँचा और सदियो बाद उसका असर हम रेल के फाटक के पास बसे गाँव छोटे बघाडा में रहने वाले एक मजदूर की रहन-सहन मे देखते है ! कौन जाने दिल्ली के शाहजादो और नवाबों की तरह वाकर भी वादशाही खून की पैदाइश हो ! उसकी डाढ़ी मे तो जरूर एक शान और शालीनता है, जिसे उसके मैले-फटे कपड़े भी नही दबा सकते। विदेशी पूँजीवाद ने इस सामन्तशाही को तवाह कर भारत के इतिहास में एक नया पन्ना उल्टा था; आज वाकुर और उसके साथी पूँजीवाद को तवाह कर इतिहास का एक और पन्ना उलटने की कोशिश कर रहे है !

आप यह न समझे कि वाकर कम्यूनिस्ट है, रूस का पेंशनयाफ्ता एजेन्ट है। वह तो बघाड़ा मे धूल-रेत मे वैलो और हल के वीच रहने वाला किसान है, जिसे किस्मत ने मजदूर बनने पर मजवूर किया है। वाकर ने तो रूस का नाम भी नही सुना शायद; अगर सुना होगा, तो वह अपनी गरीवी की जिम्मेदारी किस्मत पर न डालकर सरमायादारी निजाम पर न डालता ? जिसे हिन्दुस्तान के गरीब किस्मत कहते हैं, उसी को रूसी एजेन्ट सरमायादारी कहते है और इस तरह हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति का नाश करना चाहते है !

वाकर ने आजकल अपने सीने पर एक बिल्ला लगा लिया है, उस पर लिखा है "भूखे कर्मचारी"। यह बिल्ले सभी चपरासियो ने लगा रक्खे हैं। इनकी कुछ माँगे हैं, जिनको दो साल पहले यूनिवर्सिटी ने पूरा करने का वादा किया था। चपरासियो को हडताल करनी पडी थी, और कुछ प्रोफेसरो के वीच-बचाव करने पर समझौता हो गया था। लेकिन पैसे की कमी के सवव से यूनिवर्सिटी उन वादो को पूरा नही कर सकी ! दो साल गुजर गए, महँगी दिन दूनी और रात चौगनी वढ रही है। सेठो की तिजोरियाँ भर रही हैं, लोग मक्खियो की तरह पटापट मर रहे हैं, पर कोई रास्ता नजर नही आता। इतनी वड़ी यूनिवर्सिटी मे तरह-तरह के खर्च हैं, तनख्वाहे और भत्ते हैं; यहाँ से बड़े-वडे अफसर

निकलते है, यह सब किस तरह हो, अगर चपरासियो की माँगे भी पूरी की जायें ?

खैर, जिस दिन बाकर ने यह बिल्ला लगाया, स्टाफ-रूम में खलबली मची ! इतना भला आदमी, गरीब, आज्ञाकारी ! इसे भी यह हवा लग गई, एक बुजुर्ग, जो बहुत सलीके से रहना पसन्द करते है, बिगड़ कर बोले : "देखो जी, इन कम्यूनिस्टो के चक्कर मे न आना, ये हिन्दुस्तान के दुश्मन हैं, उसे तबाह करना चाहते हैं!"

बाकर बोला : "हम तो भूखे है, हम और कुछ नही जानते !"

मैं भी अपनी आँखे मल कर जाग रहा था और सोच रहा था : बाकर भी ! तब तो रूस और चीन की तरह हिन्दुस्तान मे भी इन्किलाब आ रहा है !

१७

तुर्काना

कटरे के भयकर कोलाहलमय वातावरण के पीछे छिपी पातालपुरी-स्वरूप तुर्काना नाम की मजदूरो की बस्ती है। यहाँ की पतली, सँकरी गलियो मे दिन मे भी सूर्य के दर्शन नही होते, और गली के बीचोबीच वेनिस की नहरो के समान बहती नाली से निरन्तर सीलन और सड़न की बदबू उठा करती है। तुर्काना मे अधिकतर मुसलमान मजदूर रहते है, इसीलिए इस बस्ती का नाम चिरकाल से 'तुर्काना' पडा है। इनमे से कुछ मजदूर ला जर्नल प्रेस मे काम करते है, कुछ गवर्मेन्ट प्रेस मे और कुछ बिजलीघर में। मजदूरो के सघर्ष मे पिस कर इन मजदूरो का दृष्टि-कोण विशाल हो गया है और इनके बीच साम्प्रदायिक नेताओ की दाल कभी नही गली। फिर भी कटरे के सेठ इन मजदूरों से बड़े घबराते थे और अन्य दुकानदारो और बनियो को डराया करते थे कि तुर्काना हिन्दुओ को काट डालने की तैयारी कर रहा है। इसी प्रकार लीगी नेता

तुर्काना के मजदूरो को डराने की निरतर कोशिश करते थे, "हिन्दू तुम्हारे खून के प्यासे है। यहाँ कत्ले-आम की तैयारी है! अपने बीवी-बच्चों को नख़्खास-कोने भेज दो!"

अब्दुल हमीद तुर्काना के एक मजदूर नेता थे। ये बड़े सीधे-सादे व्यक्ति थे। इनकी आँखो मे कवियो के समान दूर कुछ खोजती हुई कल्पना झलका करती थी। इनकी डाढी छोटी-सी साफ तौर से तराशी हुई थी और आप बराबर पान चबाया करते थे। यही आपका एक व्यसन था।

अब्दुल हमीद बिजली घर के मजदूरों के नेता थे। दिन-रात मशीनों की गड़गड़ाहट के बीच अब्दुल हमीद सोचते थे: "हम मज़दूर खून-पसीना बहा कर यह बिजली पैदा करते है, मालिक इसका फल भोगते हैं! न हम चैन से रहते हैं, न जनता को ही सस्ते दामो पर बिजली मिलती है! मज़दूर का राज होगा, तब उसके बच्चे पाताल के अँधेरे से निकल कर हवा, धूप और पानी के स्वर्ग मे आ सकेंगे और तब तक सस्ती बिजली का भी युग शुरू होगा! सभी काम तब बिजली से हो सकेंगे, खाना, पानी, कपड़े धोना . । गाँव-गाँव और गली-गली तक बिजली पहुँचेगी और तुर्काना से भी सदियो का अधकार मिटेगा!"

अब्दुल हमीद ने ज़माना देखा था। काफ़ी साल आप कलकत्ता भी रहे थे। और वहाँ आपने मज़दूरो की बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ देखी थी और उन मे हिस्सा लिया था। अब आपके नेतृत्व मे बिजली-घर का मजदूर भी कमर कस कर सेठो की समाज-व्यवस्था उलटने के लिए तैयार हो रहा था।

इसी अर्थ मे तुर्काना भारतीय भविष्य का प्रतीक था। तुर्काना मज़दूरो की बस्ती था। आज यहाँ अन्धकार, सड़न, बदबू, भूख, गरीबी, बीमारी और बेकारी का साम्राज्य था, किन्तु कल यहाँ धूप, रोशनी, खुली हवा, शिक्षा, स्वास्थ्य और समृद्धि होंगे। तुर्काना उस भविष्य के लिए संघर्ष कर रहा था और पीडा और दु.ख का मूल्य उस भविष्य के लिए दे रहा था।

इन टेढी-मेढ़ी सुरगनुमा-गलियो मे उस भविष्य के लिए सग्राम निरन्तर जारी था। यह गलियाँ मानो सर्वहारा की अग्रिम खदके थी, जिनमे बसे हुए सैनिक शत्रु की मार सह रहे थे और अविराम उस पर वार कर रहे थे।

जब बिजलीघर के मजदूरो ने लडाई की तैयारी शुरू की, सरकार ने कहा—मालिक इतनी तनखा नही दे सकते! इसके बाद पुलिस, घर-पकड और गिरफ्तारियो का नम्वर आया। जाहिर था कि मालिक अपनी तिजोरियो के दरवाजे आसानी से न खोलेंगे! तुर्काना इस सग्राम को साँस रोक कर देख रहा था।

सुवह ही पुलिस ने मजदूर नेताओ की गिरपतारी की थी। बिजली-घर मे दिन भर हडताल जारी रही। अव्दुल हमीद पान खा-खा कर मजदूरो का साहस वढा रहे थे : "अभी तो पहली टक्कर है। लड़ाई और भी सगीन होगी। दिल को मजबूत करो!"

आधी रात को पुलिस ने तुर्काना पर छापा मारा। कुछ मजदूरो को जगा कर मशीन पर काम करने के लिए ले गए। अब्दुल हमीद को वे पकड़ ले गए। दिन भर उन्हें बिना दाना-पानी हवालात मे रखा गया। शाम को दो आने नाश्ते के लिए मिले, किन्तु उन्होने यह लेने से इन्कार कर दिया। उन्होने कहा—जानवरो के साथ भी इससे अच्छा वर्ताव होता है। शाम को वे जेल भेजे गए. यहाँ मिट्टी के तेल से छुकी हुई दाल उन्हे खाने को मिली।

चार दिन वाद जब अव्दुल हमीद जेल से छुटे, यह सब हाल उन्होने अपने साथियो को सुनाया। गुण्डो के साथ मजदूरो के नेता रखे गए थे और उनसे भी वदतर व्यवहार इनके साथ हुआ था। जब भूख हड़ताल की तैयारी मजदूर वदियो ने की, तव सरकार ने अपना रुख वदला।

तुर्काना आजकल घेरे मे बन्द किले के समान है। इसके चारो तरफ पुलिस और पलटन मँडराती है। गलियो मे खुफिया पुलिस के लोग चक्कर काटा करते है। दोस्त आपस मे वात करने मे डरते हैं। मजदूर

नेताओं से लम्बी-लम्बी जमानतें ले ली गई है। वे खुले-आम भाषण नही दे सकते, किसी राजनीतिक आन्दोलन मे भाग नही ले सकते।

किन्तु अन्दर-ही-अन्दर विद्रोह की आग सुलग रही है। एक दिन पूँजीवादी व्यवस्था और उसके पोषकों का अन्त करके ही रहेगी।

तुर्काना इस मानी मे ज्वालामुखी के समान है। पुलिस और सेना ने सतह पर शान्ति स्थापित कर रखी है, किन्तु इस बस्ती के अन्तर मे असन्तोष की भयानक ज्वाला धधक रही है, जिसका विस्फोट एक-न-एक दिन निश्चय ही है।

१८

राजापुर

राजापुर गगा जी के किनारे ईसाई कवरिस्तान के नजदीक वसी एक छोटी-सी बस्ती है। यहाँ गगा जी की धार धनुष के समान गोलाकार होकर घूमती है और किनारे के ऊँचे-ऊँचे कगारो को तलवार के समान अपनी तेज धार से निरन्तर तराशा करती है। इसी गगा की तरह राजापुर भी एक धनुष है, इन्किलावी तलवार है, जिसका निशाना पूँजीवाद का हृदय है! यह क्रान्ति का धनुष अनेक वाण आज की शोषण-व्यवस्था पर वरसा चुका है; यह तलवार अनेक वार तानाशाही पर कर चुकी है; लेकिन अभी मर्मभेदी प्रहार दुश्मन के गढ पर इस इन्किलावी सेना को करने है।

राजापुर इलाहावाद से वाहर खुली वस्ती है। यहाँ खुला देश है, खुला आसमान है, खेत है, वाग है, अमराइयाँ हैं, फिर भी राजापुर मे गरीवी है, बीमारी है, भुखमरी है। वस्ती मे चारों ओर गन्दगी है, कीचड़ और कूडा-करकट है, नंग-धड़ग वच्चे ढोल से पेट लिए रीं-रीं करते चारो ओर फिरते हैं, नालियों पर वैठकर पेशाव-पाखाना करते

हैं; दूकानो पर मक्खियाँ भिनभिनाती है; इन्ही गुड़-तेल की मिठाइयों को बच्चे खाते हैं, और पटापट मरते है। गंगा जी यहाँ नजदीक है और ईसाई कवरिस्तान भी; लेकिन राजापुर मे खासतौर से मुसलमान ही बसते है, इसलिए गगा जी और कवरिस्तान की सुविधा भी दो-चार के लिए ही हो पाती है।

राजापुर के आस-पास वड़े-बड़े प्रोफेसरो, जजो, हाकिमो और सेठो के वँगले हैं। इस खुशनुमा वातावरण मे, सुन्दरता के इस हिलोर मारते समुद्र मे यह कुरूपता का एक छोटा-सा टापू है! दूर पर गगा जी, नीला आसमान, वड़े-वडे वाग और वँगले, उनके वीच मे, आदमखोर की करतूत का यह नमूना राजापुर !

यहाँ चु गी ने सड़क के किनारे एक नल लगा दिया है, उस पर हमेशा एक भारी भीड़ पानी भरने वालो की लगी रहती है। मिट्टी के तेल की धुंआधार लालटेन रात को यहाँ जलती है, जिससे अँधेरा कुछ और घना हो जाता है। चारो ओर यहाँ जगल मानो सायँ-सायँ करके आदमी को खाने के लिये दौड रहा हो! यह नल और लालटेन ही क्या चु गी की कुछ कम मेहरवानी है? सेठ लोग जिनका राज चुंगी मे है, इन गन्दी जगहो को रोशन करने के लिए तो जनता से टैक्स उगाहते नही हैं, वह तो उन जगहो को रोशन करने के लिए पैसा उघाते हैं, जहाँ वडे-वड़े सेठ और अफसर रहते है!

लेकिन यह भी याद रखिये कि राजापुर के दिल मे वह आग अन्दर-ही-अन्दर धधक रही है, जो एक दिन इस क्रूर समाज-व्यवस्था को जला कर राख कर देगी! और वह दिन लम्वे-लम्वे डग वढ़ाता हुआ नज़दीक आ रहा है।

राजापुर मजदूरों की वस्ती है। आस-पास और दूर-दूर काम करने वाले मज़दूर भी यहाँ रहते है! कुछ लोग गवरमेंट प्रेस मे काम करते है, कुछ मिशन प्रेस मे, कुछ दफ्तरो मे चपरासी है। आज यह सफेद-पोश चपरासी भी कमर कस कर इस समाज-व्यवस्था पर वार कर रहे

है, क्योंकि दिन-रात कीमते बावन के पैरो की तरह वढ़ रही है, और भारी लड़ाइयों की विजय से वढ़ी महँगाई उनका मुकाबला नही कर पाती! इसी महीने सेठो ने एक करोड रुपए का फायदा वाजार से चीनी गायब करके कमा लिया; चोर वाजार में चीनी के दाम दो रुपए सेर हो गए। अव वह सेठ दवाइयो के दाम वढ़ा कर मौत से पाँसा खेल रहे हैं। कल इन्होंने वगाल के अकाल और दूसरी वडी जंग से जो मुनाफे कमाये थे, आज उनसे भी भारी मुनाफे कमाने के लिए यह जनता के प्राणों की बाजी अपने विराट जुए में लगा रहे हैं, तीसरी बड़ी जंग की साज़िश कर रहे है, जिनसे इनके मुनाफे वढें और जनता का होम हो!

राजापुर की मजदूर औरतो ने भी अपना मोर्चा इस मौत की लडाई के खिलाफ तैयार किया है। निरन्तर वे इस मोहल्ले मे सभाएँ करती है, पोस्टर चिपकाती है, जुलूस निकालती है। सन् १९४२ मे इलाहावाद में दफा १४४ लगी थी; तव से अव तक वह वरावर चली आ रही है, दुनिया इधर से उधर हो गई, लेकिन शोपक वर्ग की "एमर्जेन्सी" अभी चल रही है, और न यह खत्म ही होगी, जव तक मजदूर तब्का अपनी हुकूमत नही कायम करता। तभी दफा १४४ टूटेगी और इलाहावाद की जनता को आम सभाएँ करने का मौका मिलेगा। तभी नया राजापुर वसेगा, जहाँ पानी, विजली, सफ़ाई, खाना, सेहत, शिक्षा, सभी मजदूर के लिए मुहैया होगे!

आज उसी भविष्य के लिए राजापुर की लड़ाई जारी है। यह दो कौमो की लड़ाई है, दो राज्यो की। इसमे दया-माया का सवाल ही नही उठता। शासक वर्ग अपने सभी हर्वो का प्रयोग कर रहा है। राजापुर की औरतें दफा १४४ तोड़ कर सभा करती हैं, जुलूस निकालती हैं और पुलिस के हमले का जवाव झाड़ओ से देती हैं। यह हथियार वगाल की किसान औरतो ने पहले उठाया था, और आज राजापुर की मजदूर औरतें भी उसका इस्तेमाल कर रही है। झाड़ू मे वहुत गुण हैं; कीड़े-मकोड़ो को मारने के लिए झाड़ू अमोघ अस्त्र है।

राजापुर अपने भविष्य के लिए लड रहा है। जो जंग आज सारी दुनिया मे चल रही है, उसी का एक मजबूत किला राजापुर भी है।

१९

वनारसी साड़ी

गुदौलिया से जो पतली सड़क साँप के समान टेढी-मेढी होकर अस्सी जाती है, वह मदनपुरा से गुजरती है। दगे के दिनों मे अलईपुर और मदनपुरा के नाम से हिन्दू काँपते थे। रात के सन्नाटे को चीरती, कँपाती दो पुकारे शहर में उठती थी : "या अली" और "जय वजरग बली" अथवा "हर-हर महादेव !"

मदनपुरा की बस्ती अधिकतर जुलाहो की है; इनका सव रोज़गार हिन्दुओ के साथ रहता है। कहते है कि मदनपुरा वालो ने कभी किसी को नही मारा; बाहरवाले ही यहाँ आकर रास्तेवालों पर छुरेवाजी करते थे। फिर भी दोप तो मदनपुरावालो के मत्थे ही पड़ेगा! किन्तु इधर हालत वदल चुकी है। अव तो मदनपुरा के निवासी डरे और सशंकित रहते है और वनारस की मजवूत शान्ति-सेना के कारण ही इधर-उधर निश्चिन्त घूम सकते है।

मदनपुरा मे बनारसी साडियाँ वनती है। उन पर ज़री का काम होता है। ये सुन्दर, बारीक, ढाके की मलमल सदृश झिलमिल साड़ियाँ, जिनके रंगो मे इन्द्रधनुष की चमक रहती है और जिनके सोने के काम मे ऊषा और सन्ध्या के रगो की जगमग रहती है, संसार भर मे प्रसिद्ध है। इन साड़ियो को विवाह के समय नववधुएँ पहनती हैं और उनका अज्ञात यौवन इनके वीच से निशा के समान रहस्यमय वनकर झाँका करता है। दूर देशों मे इस जरी के काम की ख्याति है। परतन्त्र भारत मे इन्हीं साड़ियो की भेट भारत के राजे-महाराजे वड़े लाट साहव की मेमो को देते

थे! इन साड़ियो के पीछे भारतीय कला और सस्कृति का इतिहास है।

मदनपुरा इन साड़ियों का घर है। इन छोटे, कुरूप, गदे घरो मे बड़ी व्यथा और श्रम से इस सौन्दर्य का जन्म होता है। अपने को मिटा कर श्रमजीवी इस रूप की सृष्टि करता है, जिससे सेठो की तिजोरियाँ धन से फूटने लगती है और राजघरानों की वधुओ का शृगार होता है!

मदनपुरा काशी का एक विचित्र प्रदेश है। अस्सी के घटे-घड़ियाल और उछलते, फेनिल दूध की दूकाने, इनके वाद घूम-घुमेरे रास्ते और फिर मदनपुरा। टिमटिम वत्तियाँ, पान-वीडीवालो की दूकानें, घरो के आगे लगे पत्थरो अथवा सडक पर खटोलो पर पड़े, लेटे-वैठे नर-नारी, वच्चे। यह हमारे समाज ने विश्वकर्मा की दशा कर रक्खी है!

हमारे घर के वैठके मे तखत पर साडियाँ फैलाए दो कारीगर मोल-भाव कर रहे थे। वे छोटे-मोटे दूकानदार भी थे। उनके मुँह श्रम-व्यस्त, चिन्तित और निरन्तर सघर्प की अग्नि से तपे और दगे हुए थे। वे चारखानेदार लु गी, कुर्ता और सीको की वनी ऊँची-सी टोपी पहने थे, जिससे स्पष्ट था कि वे मदनपुरा के जुलाहे थे। उनमे से एक निकिल की कमानी का चश्मा लगाए था और उसकी कमजोर आँखो मे कुछ खोजने का-सा भाव था।

वे कह रहे थे—"वावू जी, यह साडी आपको वाज़ार मे ५०-६० रुपए से कम मे न मिलेगी। अगर अजनवी हो, तो सेठ और भी ठग लेते है। देखिए, कितना अच्छा काम है!"

मैं देख रहा था, उस रेशम की इन्द्र-धनुप-सी चमक, उस ज़री के काम की ऊपा अथवा सन्ध्या-सी जगमग। उसे कोई देव-वधू-सी सुन्दर अज्ञातयौवना, नवागता वहू पहनेगी और किसी के घर को उजागर करेगी! वह तीस रुपए माँग रहा था; गन्दे सीलन-भरे, अँधेरे मे,

पत्थर पर, सड़क पर पड़े रहने का अधिकार; मरने का अधिकार, ताकि संसार सुन्दर बन सके !

उसने कहा—"दो रुपया रोज मजदूरी मे जाता है। सामान सब मँहगा होता जा रहा है। हमे भी बाल-बच्चो का पेट भरना है !"

साडियाँ उलटी-पलटी जा रही थी निरन्तर—"२५ रुपया काफी होगा। इसका यह रग ठीक नही बैठता; उसका यह तार उखड़ा है।"

वे हमारे घर साड़ी दिखाने ले आते थे, क्योकि कारीगरो की पिछली हडताल मे मैंने उनकी तरफ से अखबारो मे दो-एक पत्र लिख दिए थे। इसी कारण वे कुछ आत्मीयता मानने लगे थे। फिर उनसे एक बार गाधी-आश्रम मे भी मुठभेड हुई थी।

बात चल रही थी। जिन मित्र का विवाह हो रहा है, उनकी वहू काली है या गोरी; उस पर नीला रग खिलेगा अथवा बादामी ?

इन कारीगरो का सयम, गम्भीरता, सहनशीलता गृहदेवियो की वाचालता के आगे प्रशसनीय थी। वे कह रहे थे—"हम और साड़ियाँ दिखाने ले आएँगे। आपको ये पसन्द नही है, तो रहने दीजिए।"

शहर में सनसनी थी। निरन्तर पजाब के भयकर हत्याकाण्ड की खबरें अखबारो मे आ रही थी। आम जनता मे आक्रोश था, क्योकि पाकिस्तान मे हिन्दुओ का कत्लेआम हो रहा था ! शरणार्थी छन-छनकर युक्तप्रान्त के पूर्वी शहरो तक आने लगे थे; इनकी हृदय-द्रावक दु ख-कथा सुनकर पत्थर भी पसीजता, मनुष्य का तो कहना ही क्या !

पजाब मे लम्बे-लम्बे काफिले चल रहे थे; यह मानो इतिहास की आदिम जातियो के काफिले चल रहे थे। पचास लाख पूर्वी पजाब से पश्चिम की ओर; चालीस लाख पश्चिमी पजाब से पूर्व की ओर। इन काफिलो पर सशस्त्र सैनिको के, धर्म-विक्षिप्त मानव-समूहो के और सगठित दलो के आक्रमण होते थे। किन्तु यह ९० लाख की यात्रा इन बाधाओं से टकराकर रुकती न थी। उसका अविरल प्रवाह निरन्तर जारी था।

पचास लाख की मानवी धारा पूर्व से पश्चिम की ओर, चालीस लाख की धारा पश्चिम से पूर्व की ओर! इस असख्य मानव-समूह के साथ गाय, बैल, भेड, बकरी, स्त्री, बच्चे, वृद्ध सभी थे; बैलगाड़ियाँ थीं, ऊँट थे। इनके लिए हवाई जहाज कभी-कभी चपातियाँ गिराते थे। इन पर आक्रमण होते, सौ-पचास मर जाते। स्त्रियो का अपहरण होता, लूट-पाट होती। किन्तु किसी विशालकाय सहस्र-पग कीट की भाँति यह कारवाँ निरन्तर आगे बढ़ता ही जा रहा था—गर्मी, बरसात, बाढ़, भूख अनेक असुविधाओ का सामना करते हुए भी। मीलो लम्बे यह काफिले थे। यदि एक स्थान से आप इनका गुजरना देखते, तो हफ्ता-दस दिन लगता। मार्ग के गाँव और नगर इस सरिता का अविराम प्रवाह देखते और छापे मारकर उसकी धारा से कुछ माल बटोर लाते।

इन काफिलो की एक झाँकी पाकिस्तान के समाचार-पत्रों मे मिलती, दूसरी हिन्दुस्तान के पत्रों मे। यही आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे दुखद कहानी थी।

दो अक्टूबर को गाधी-जयन्ती थी। बनारस के सभी राजनीतिक दलो की एक संयुक्त समिति बड़े समारोह से इस उत्सव को मना रही थी। समिति ने साम्प्रदायिक एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए एक शान्ति-सेना की स्थापना भी की थी; ५०० सैनिकों की यह वीर-सेना कहीं भी दगे की आग मे कूदकर उसे बुझाने को तत्पर थी। इन वीरों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर शान्ति-रक्षा का बीड़ा उठाया था।

इस प्रचार से घबराकर पहली अक्टूबर को उपद्रवियो ने गड़बड़ करने का प्रयत्न किया।

मदनपुरा के दो जुलाहे साड़ी लिए चौक से गुजर रहे थे। बहुधा इसी रास्ते से वे अपने सेठ के लिए साड़ी लेकर जाते थे। उनकी साड़ियों में इन्द्रधनुष की चमक थी और सोने का काम आपको ऊपा और सन्ध्या के आकाश का स्मरण दिलाता था। इन साड़ियो को धारण कर देव-वधुएँ अभिसार के लिए जाती होगी। अपने रक्त-स्वेद से मानवी विश्व-

कर्मा ने इस कला की सृष्टि की थी, ताकि मुट्ठी-भर देवकुमार उसका उपभोग कर सकें।

दो सरदारो ने इन कारीगरो का रास्ता रोककर कहा—"साड़ियाँ दिखाओ।"

साड़ियाँ देखकर दाम पूछे। जब दाम उन्हे न जँचे, तो बोले—"पाकिस्तान जाओगे?"

जुलाहे बोले—"हम तो हमेशा यहीं रहे हैं, यही रहेगे।"

सरदारजी विगड़ गए, गाली दी और कृपाण निकाल ली।

चौक में भगदड़ मच गई। चार व्यक्ति घायल हुए, दो कारीगर और दो अन्य राहगीर। दूकानें पटापट बन्द हो गईं। घटनास्थल पर दो भीड़ें जमा होने लगीं; एक तरफ हिन्दुओं की, दूसरी तरफ मुसलमानो की।

तभी शान्ति सेना की लारी वहाँ पहुँच गई। उन्होंने नारे लगाए—"इन्किलाव ज़िन्दाबाद!" "महात्मा गांधी की जय!" "हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई!" उसके बाद लारी से भाषण हुए और भीड़ धीमे-धीमे छटने लगी। शान्ति भंग न हुई। गांधी-जयन्ती शान से मनाई गई।

और वे चमकीली बनारसी साड़ियाँ, जिन्हे देव-वधुएँ विवाह और विशेष उत्सव के अवसरो पर पहनती हैं, अब भी मदनपुरा मे बन रही है। उनके पीछे विश्वकर्मा का रक्त-स्वेद है। अपना जीवन तिल-तिल मिटाकर वह इस सौन्दर्य की सृष्टि करता है और देवता उसका उपभोग करते है। किन्तु यदि देश मे शान्ति बनी रही, तो नए समाज का निर्माण होगा और तब मनुष्य अपने श्रम के फल का स्वयं उपभोग करेगा। तब बनारसी साड़ी के व्यापारी मोटी तोंद वाले सेठ, समाज से बहिष्कृत होंगे, अपने रक्त-स्वेद से कला की सृष्टि करनेवाला विश्वकर्मा नहीं।

२१

बनारस के बुनकर

रेवड़ी तालाब बनारस के विश्व-विख्यात बुनकरों की बस्ती है। यहाँ टूटे-फूटे, कच्चे घर, खण्डहर, ईंटो के ढेर जो किसी समय मकान थे, दैन्य, दरिद्रता—यही सब हम देखते हैं। बनारस शहर की समृद्धि और श्री के बीचोबीच यह दुर्भिक्ष-पीड़ित बस्ती बसी है। यहीं मानो काशी के जीवन का केन्द्र है। यही से ईराक, ईरान, मिश्र, इंग्लिस्तान और अमरीका को सुन्दर बनारसी साड़ियाँ, रूमाल, पल्ले, कमखाब आदि जाते है; यही रूप-यौवन और सौन्दर्य को यथार्थ करने वाले सपने यह अपूर्व शिल्पी देखते हैं, जिनके जीवन इतने दैन्य से भरे है किन्तु जिनकी कल्पना इतनी मधुर है !

इन बनारसी साड़ियो को श्रेष्ठ घरानो की बहू-बेटियाँ विवाह के समय पहनती है। ऊँचे, समृद्ध मुस्लिम परिवार इन रेशमी थानो की शेरवानी बनवा कर ईद के अवसर पर पहनते है; दूर देशों तक यह सुप्रसिद्ध रेशम और कमखाब जाता है। इस रेशम को बड़े यत्न और परिश्रम से, सोने चाँदी का एक-एक तार अलग-अलग बुन कर और अपनी आँखें फोड़ कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी के सीखे यह शिल्पी तैयार करते है, इसके बदले वे एक बार चना-चबेना खाकर ही जीते हैं और अपने भाग्य को कोसते हैं। यह कला-कौशल वे बचपन से, पाँच-छै वर्ष की अवस्था से ही सीखते हैं, तभी इसके रहस्य पर वे अधिकार पा सकते है। इस कारीगरी मे दिल, दिमाग, आँख, हाथ और पैर सब एक साथ चलते हैं, तभी ठीक काम होता है। एक भी गलती हुई, तो पूरा थान बेकार हो जाता है। आजकल मन्दी के कारण काम बन्द रहता है, लेकिन काम चालू रहने पर एक रुपया, सवा रुपया रोज कारीगर कमा लेता है। इसी से घर-भर का काम चलता है, स्त्रियाँ घर मे सोने के तार कातती है, बच्चे करघा

चलाने मे मदद करते हैं, बूढे और जवान कारीगर साडी बुनते है। रुपया सेठो की तिजोरियो मे बन्द हो जाता है। कारीगर को जाली चैक मिलता है। 'बुनकर सघ' वर्षो इसके लिए मुकद्दमा लडता है।

मजदूर की हड्डियाँ हम गिन सकते है। दोपहर की छुट्टी मे वह हाथ में चबेना लटकाये चला जा रहा है। उसके मुँह पर उदासी छाई है। कुछ ने अनेक पुश्त से सीखी इस अपूर्व विद्या को त्याग कर बीडी की दूकान खोल ली है। इससे शायद कुछ अधिक कमाई हो जाए। इस अत्यतम प्राचीन शिल्प का उपासक बीड़ी-फरोश बनता है, ताकि उसका पेट भर सके। ढाके की मलमल, बनारस की साडी, जरी और कलाबत्तू, सदियो की साधना भूख की मार ने तोड दी।

मन्दी से शिल्पी ही नही, छोटे-बड़े सौदागर भी पराजित हुए हैं। जिन करघों पर बनारसी साड़ियाँ बिनी जाती थी, उन पर कारीगर अब पीतल के तार की महीन जालियाँ बिनने लगे है। बनारसी साड़ी के मुकाबले मे बाजार मे इस जाली की कही अधिक खपत है। यह भी सोने के तारो के समान बारीक काम है, नये पीतल के तार भी स्वर्ण-पट के समान ही झलमल करते हैं। मशीन न इतनी सुन्दर जाली बुन सकती है, न इतनी सस्ती। इसीलिए रेशम और सोने के सुन्दर सपने बुनने के बदले करघे खटाखट पीतल की जाली बुनते है, जो नलो के बारीक फिल्टर के काम आती है।

इस प्रकार काशी का यह सुप्रसिद्ध, प्राचीन शिल्प सकटग्रस्त है। न जाने कितने प्राचीन काल से यह विद्या काशी के बुनकर परिवारो में चली आ रही है। कबीर भी आध्यात्म और काव्य की रौ मे इस कला से अपना सम्बन्ध न तोड़ सके थे। दूर-दूर देशो तक इस रेशम का व्यापार होता था। राजपुरुष इसे युद्ध और शान्ति मे धारण करते थे, कुल-वधुएँ मगल कार्य के समय पहनती थी, बच्चे उत्सव के अवसरो पर। पीढ़ियों की परम्परा आज टूट रही है। बनारस की साड़ी बाजार में २००-४०० रुपए मे बिकती है। बुनकर को पन्द्रह दिन के काम का २१ रु० और

बहुत बढ़िया एक महीने के काम का ५० रु० मिलता है। घर भर उसमें जुटता है और आँखें फोड़कर दस-बारह घण्टे प्रतिदिन काम करता है। फिर भी उसे जाली चैक मिलता है। इस भूखे देश मे स्वर्ण और रेशम से बुने इन सुन्दर सपनो को कौन खरीदे? अतएव अमरीकी व्यापारियों की रमणियो के सिर के लिए उनके 'स्कार्फ' बनते हैं और मध्य-पूर्व के राजवंश के लोगो के साफ़े। इधर जब से तिब्बत का व्यापार खुला है, कमखाब बडे परिमाण में लामा लोगो के लिए जा रहा है। पिछले वर्ष हजारों का माल तिब्बत के लिए अकेले बनारस से ही गया था।

हम बनारस की साड़ियाँ देख रहे हैं। कितना सुन्दर काम है यह! इन साड़ियो के पल्ले साक्षात विश्वकर्मा ने अपने हाथों से बनाये हैं। इनमे रेशम के ताने पर सोने के तार का बाना है। पाँच-छः वर्ष का लड़का तार उठाता है, कारीगर बुनता है। यन्त्र-गति से यह काम चल रहा है, किन्तु हर मांस-पेशी और हर इन्द्रिय के परिचालन की इस काम मे आवश्यकता है; पीढियों और सदियो की कला-साधना इस शिल्प की हर क्रिया के पीछे है।

हम घूम-घूम कर इस अद्भुत शिल्प का व्यापक प्रसार काशी के मोहल्लो मे देखते हैं। कोई कागज़ पर नक़्शे बना रहा है, उन्हें बड़ा करके कपड़े पर काढ़ रहा है, उनके नक्शे कार्डों में उतार रहा है। कहीं लम्बे-लम्बे तार फैलाये जा रहे हैं। रेवड़ी तालाब की वीरान बस्ती मे गलियों और पथों पर यह तार फैले हुए है। घरों मे एक ही जगह कर्घे, खाट और मिट्टी के बर्तन रखे मिलते है। दिन में कर्घों पर कारीगर साड़ी बुनते है, जब काम मिलता है; जब खाना नसीब होता है, तब यही एक कोने मे चूल्हा फूक लेते है। रात को खाट बिछा कर यही पड़ जाते हैं। आजकल आधे या तिहाई कर्घे ही घर मे चलते है। चूल्हा केवल एक वक्त शाम को जलता है, बच्चो के खाने के लिए। मिट्टी के घर नीचे खिसके पड़ते है, दीवारें गिरी जा रही हैं। यह बरसात न जाने कैसे कटेगी!

आँखों मे उदासी भरे अनेक बूढे बुनकर हम देखते है। इनकी मुद्रा मे सहज गाम्भीर्य है। एक घर मे पॉच करघों में से तीन बन्द है। कच्चे माल का ऋण ऊपर चढ़ा है। साड़ी पूरी होने पर बिकेगी, तो ऋण चुकायेगे, उससे कुछ बचा, तो खायेंगे। कर्घों पर बच्चे लगे है। अन्दर घर का काम खत्म करके स्त्रियाँ तार कातती है। पन्द्रह दिन की आमदनी, बीस रुपए, आठ-दस का परिवार खायेगा।

इन बुनकरो की ईमानदारी की परम्परा भी बहुत गहरी है। कबीर की परम्परा इनके पीछे है। इनके माल मे आप कभी धोखा नही खायेंगे। यह हमेशा सच्चा तार काम मे लाते है। यदि कभी किसी ने झूठा माल काम में लगाया, तो इनके पच महतो फौरन उसे कर्घे पर ही कैंची से काट देते है और थान जला दिया जाता है। अब अवश्य कुछ नकली अमरीकी माल बाजार मे आ गया है। लेकिन इसमे इन बेचारो का क्या दोष ! फिर भी कोई विदेशी माल इनकी तुलना में ठहर नही सकता। ये बुनकर एक नक्शा केवल एक ही बार काम मे लाते है, फिर उसे अलग कर देते हैं। विश्व मे शायद ही कभी किसी उद्योग की परम्परा इतनी महान और उदात्त रही होगी।

यह काशी नगरी ही विचित्र है। यहाँ कितने ही पुराने उद्योग धधे है। यहाँ पीतल के बर्तन और खिलौने बनते है, लकडी के खिलौने बनते हैं, चडियाँ बनती हैं, यहाँ शिल्पी घड़ो और दीवारो पर चित्र बनाते है। ऐसे ही यहाँ अनेक कलात्मक उद्योग चिरकाल से चले आये हैं। किन्तु इन सब मे काशी की विशेष प्रसिद्धि इस रेशमी और सुनहरी काम के लिये ही है।

यह मदनपुरा है। यहाँ छोटे-छोटे व्यापारी है। यही बनारसी साड़ी के सबसे बडे व्यापारी "ताज वर्क्स" का कारबार भी है। यहाँ ब्रोकेड, ज्यौर्जेट, कमखाब, कलाबत्तू, पीतल के तार की जाली—सभी कुछ बन रहा है। शहद की मक्खी के छत्ते के समान अविरल भन्भन् और सक्रिय जीवन इन गलियारो मे है। जब "ताज वर्क्स" का बटवारा

बहुत बढ़िया एक महीने के काम का ५० रु० मिलता है। घर भर उसमें जुटता है और आँखे फोड़कर दस-बारह घण्टे प्रतिदिन काम करता है। फिर भी उसे जाली चैक मिलता है। इस भूखे देश मे स्वर्ण और रेशम से बुने इन सुन्दर सपनो को कौन खरीदे? अतएव अमरीकी व्यापारियों की रमणियो के सिर के लिए उनके 'स्कार्फ' बनते हैं और मध्य-पूर्व के राजवंश के लोगो के साफ़े। इधर जब से तिब्बत का व्यापार खुला है, कमखाब बडे परिमाण मे लामा लोगों के लिए जा रहा है। पिछले वर्ष हज़ारों का माल तिब्बत के लिए अकेले बनारस से ही गया था।

हम बनारस की साड़ियाँ देख रहे हैं। कितना सुन्दर काम है यह! इन साडियो के पल्ले साक्षात विश्वकर्मा ने अपने हाथों से बनाये है। इनमें रेशम के ताने पर सोने के तार का बाना है। पाँच-छः वर्ष का लड़का तार उठाता है; कारीगर बुनता है। यन्त्र-गति से यह काम चल रहा है, किन्तु हर मांस-पेशी और हर इन्द्रिय के परिचालन की इस काम मे आवश्यकता है; पीढियो और सदियो की कला-साधना इस शिल्प की हर क्रिया के पीछे है।

हम घूम-घूम कर इस अद्भुत शिल्प का व्यापक प्रसार काशी के मोहल्लो मे देखते हैं। कोई कागज़ पर नक्शे बना रहा है, उन्हें बड़ा क़रके कपड़े पर काढ़ रहा है, उनके नक्शे कार्डो में उतार रहा है। कहीं लम्बे-लम्बे तार फैलाये जा रहे हैं। रेवड़ी तालाब की वीरान बस्ती मे गलियो और पथों पर यह तार फैले हुए हैं। घरों मे एक ही जगह कर्घे, खाट और मिट्टी के वर्तन रखे मिलते है। दिन में कर्घो पर कारीगर साड़ी बुनते है, जब काम मिलता है; जब खाना नसीब होता है, तब यही एक कोने मे चूल्हा फूक लेते है। रात को खाट बिछा कर यहीं पड़ जाते है। आजकल आधे या तिहाई कर्घे ही घर में चलते है। चूल्हा केवल एक वक्त शाम को जलता है, बच्चो के खाने के लिए। मिट्टी के घर नीचे खिसके पड़ते है, दीवारें गिरी जा रही है। यह बरसात न जाने कैसे कटेगी!

अपना चरित्र-वल खो रही है ! ढाके की मलमल औरगजेब को भी पसन्द न थी। उसके बारे मे अनेक किम्वदन्तियाँ है। जॉन कम्पनी के तमाम प्रयत्नो के वावजूद ढाके मे अब भी उच्चतम् कोटि की मलमल वन रही हैं, यद्यपि ढाके की साडी का सकट बनारस की साड़ी से कम नहीं है।

जॉन कम्पनी शिल्पियो के हाथ काट कर भी ढाका की अद्भुत् कला नष्ट नही कर सकी। यह शिल्प हमारी रग-रग मे वसा है और इसे काट कर अलग करना असंभव है। हम सोचते है, बनारसी साडी बुनने की कला भी हमारे खून के कण-कण मे वसी है, और इसे नष्ट करने वाला भी दुनिया मे पैदा नही हुआ !

२१

अजन्ता की ओर

(१)

हम वन और पर्वत लॉघते हुए चले जा रहे हैं। यहाँ प्रकृति की सौरभ—श्री फूटी पडती है। घने जगल, हरा-भरा देश, क्षितिज तक फैली पर्वत मालाएँ, नदी और नद, गाँव—स्वप्न के समान यह सभी नेत्रो के सामने निकल रहे हैं। वडे-वडे नगरो में हम क्षण भर के लिये रुकते है और फिर भीपण रव के साथ आगे बढ जाते हैं। हम वर्धा से गुज़रते है, एक ओर टूटी-फूटी गदी झोपडियाँ, दूसरी ओर वड़े-वड़े प्रासाद, जिन्हे "पर्ण-कुटी" की सज्ञा प्राप्त है! नागपुर, आर्यों से भी पूर्व इस देश की आदि जातियो का स्मारक। इसी प्रकार अनेक नगर, वन और ग्राम पार करते हुए हम चले जा रहे है।

सुवह हम हैदरावाद के पास अपने को पाते है। यहाँ पहाड़ियों पर वडी-वडी विशाल चट्टाने विचित्र आकारो मे रक्खी हुई है, मानो मनुष्य ने वडी सतर्कता से उन्हे सम्हाल कर वहाँ रख दिया हो। एक पहाडी के ऊपर ऐसी ही सपाट-साफ चट्टानो का प्राकृतिक किला भी हम देखते हैं।

हुआ, तो रुपए मे दो पैसे के अधिकारी साझीदार करोड़ो के मालिक हो गए।

यह अलईपुरा है। यहाँ जवान बुनकरो के सीनो की एक-एक हड्डी आप गिन ले। यही पुश्त-दरपुश्त की कला-साधना त्याग कर विश्वकर्मा ने बीड़ी की दूकान कर ली है। बुनकरो के नेता कहते है . "यह क्या किया तुमने ? पुरखो का काम छोड़ कर यह दूकान खोल ली !" हम उसकी दूकान की सस्ती पूंजी विपाद भरे मन से देखते है—आधे दर्जन सिगरेट के बडल, दियासलाई के बक्स, बीडी के बंडल, रंग-बिरंगे लैमन-ड्राप, जिन्हे छोटे-छोटे बच्चे ही खरीदेगे।

"क्या करूँ, भूखा मरने लगा था ! हार कर इसमें हाथ डाला है"। एक भीड इकट्ठी हो जाती है। दोपहर का समय है, खाने की छुट्टी, लेकिन खाना नही है। वह हाथ में लटकी हुई चने की पोटली हमे दिखाते हैं। यहाँ मदनपुरा वाली शान भी नही है। न बदन पर कुर्त्ता, न सिर पर वह टोकरीनुमा टोपी, जो इन बुनकरों के आत्म-अभिमान की प्रतीक है। यह ठेठ सर्वहारा वर्ग है, जो जीवन-सघर्ष मे अपने पौरुप के अतिरिक्त सभी पूंजी खो चुका है। उसे अपनी जजीरों के अलावा अब कुछ नहीं खोना, और एक पूरा विश्व जीतना है !

हम सडक पर चलते-फिरते अपरूप सौन्दर्य और सपनो को बिनने वाले इन शिल्पियो को देखते है। उनकी उदासी भरी आँखें, उनके हँसी भरे मुँह, उनका दुर्दमनीय साहस और पौरुप। हम सोचते है, सदियों पुरानी इस कला का यह संकट काल है; क्या विश्व-पूंजीवाद के तीव्रतम होते प्रहारो के सामने यह मिट जायगी ? क्या विदेशी सस्ते माल के सामने यह शिल्प नष्ट हो जायगा ?

किसी समय जॉन कम्पनी के दलालो ने बगाल के विश्वविख्यात बुनकरो के दाहिने हाथ के अँगूठे काट दिए थे, ताकि लकाशायर का माल हमारे देश मे आसानी से बिक सके। भारतीय रेशम के सबध मे सुप्रसिद्ध रोमन केटो ने कहा था : इस महीन रेशम को पहन कर रोमन युवतियाँ

पड़ता था ! विलास, वैभव और आमोद-प्रमोद में डूबे कुतुबशाही राजवश के सिर पर मौत खेल रही थी। सभ्यताओ की कसौटी उस काल में वीणा की झंकार न थी, यह कसौटी तलवार की धार थी। औरगजेब की साम्राज्य-लिप्सा ने कुतुबशाही की गरिमा के फूल को धूल मे मिला दिया। गोलकुण्डा की वैभव-श्री लुप्त हो गई। इतिहास के पन्नो की वह एक स्मृति-मात्र रह गई। अब वहाँ उल्लू वोलते है और शृगाल चीत्कार करते हैं। पानी के हौज उजड़े पड़े है। खँडहर भी मानो अपने ही वोझ से नीचे को खिसके पड़ते है। चारो ओर ईंट पत्थर, कॉटे है, जिनके बीच किसी एकाकी यात्री को, जो भूला-भटका इधर आ निकलता है, सम्हल-सम्हल कर पैर रखना होता है।

(२)

वड़ी उमग और अधीरता से हम औरगाबाद स्टेशन पर उतरते है। हम लगभग दो हजार वर्ष की दूरी को पार करके अपने पूर्व-पुरुषो की अद्भुत शिल्प-कला, स्थापत्य और चित्रकला देखने जा रहे हैं। उन्होने 'प्रस्तर के वधन' खोल कर उसमे अपूर्व स्वप्नो का सौदर्य उतारा था। मूक पत्थर वाचाल हो उठे थे। इस माध्यम पर उनके अधिकार की तुलना इतिहास के किस स्मारक से हम करें ? मिश्र के पिरैमिड विशाल थे किन्तु उनमे कोई अपरूप सौदर्य तो न था। अपने हाथो मनुष्य-पुत्र ने मानो पहाड गढे थे और प्रकृति को चुनौती दी थी ! यही विचार चीन की महान दीवार के सवध मे मन मे उठते हैं। ताजमहल जिसे कवि-गुरू ने 'काल के कपोल पर अश्रु-विन्दु' कहा है, सुकुमारता मे, सपनो के समान कोमल भाव-भगिमा मे अद्वितीय है। ऐलोरा और अजन्ता मे विराट कल्पना के साथ कोमल सुकुमार भावनाओ और अनुभूतियो का विलक्षण सम्मिलन हुआ है। अजन्ता और ऐलोरा के स्रष्टा, मानव-विश्वकर्मा मे पिरैमिड गढने वालो के समान अदम्य साहस था और साथ ही ताजमहल के समान कोमल और बारीक शिल्प-कला की अनुभूति और क्षमता भी।

बड़े-बड़े ताल और सरोवर जिन्हे यहाँ सागर कहते हैं और यह बड़ी-बड़ी हाथ से तराशी हुई-सी प्राकृतिक चट्टाने, यही हमें हैदराबाद की विशेषता लगी। खुला देश, बिखरी वस्ती, चतुर्दिक् खँडहर, पहाडियों पर रक्खी यह चट्टानें, जो मानो मनुष्य की उँगली आकाश की ओर उठ रही है, और बडे-बडे लहर मारते सागर। यह प्रदेश आंध्र का हृदय है, यही तिलगाना है जहाँ भारतीय किसान के सघर्ष क्रान्ति का उग्र रूप धारण कर रहे है। यह हैदराबाद विशाल आन्ध्र की राजधानी है।

हम गोलकुंडा के खँडहरो मे घूम रहे है। यह खँडहर वीरान पड़े हैं, इनमे चिमगादडो की दुर्गन्धित वीट चतुर्दिक् बिखरी पड़ी है। आज यहाँ उल्लू बोलते है। कितने वैभव और श्री की यादगारें यहाँ दबी पडी है। गोलकुडा इतिहास-प्रसिद्ध राज्य था। उसका नाम लेते ही स्वर्ण और जवाहरातों की याद से कल्पना के नेत्र झप जाते है। कितने करोड़ का सोना और जवाहरात यहाँ से औरगजेब ही लूट ले गया था। यहाँ काव्य, संगीत और कला के प्रेमी कुतुबशाही वश के शासक राज्य करते थे। इन्होने उर्दू के सुगधि-पूरित फूल को उत्तर से लाकर इस दूर की धरती पर लगाया और वह इस धरती मे खूब फूला था। फारसी को त्याग कर कुतुबशाही राजवश ने देशज भाषा को पाला-पोषा। स्वय वह शासक उर्दू के कवि थे और उत्तर के उर्दू कवियों से भी पुरानी इनकी कविता की परम्परा है। अनेक किंवदतियाँ इनके सम्बन्ध मे प्रचलित हैं। राजकुमार भागमती के प्रेम मे पागल था। नदी पार करके वह अपनी प्रेमिका से मिलने जाता था। भरी बरसाती नदी मे उसने घोडा डाल दिया। डूबते-डूबते वह बचा। राजा ने नदी पर पुल बँधवा दिया। सिंहासन पर अधिकार पाकर राजकुमार ने भागनगर नाम से नया नगर बसाया जो आधुनिक हैदराबाद है।

गोलकुण्डा के प्रासादो की विशाल छतो पर, बारादरियो मे सगीत की मजलिस जुड़ती थी। राजा की अहीरिन प्रेमिका दूर अपने महल से गीत उठाती थी और यहाँ खुले आसमान के नीचे उसका स्वर स्पष्ट सुनाई

पड़ता था ! विलास, वैभव और आमोद-प्रमोद मे डूबे कुतुबशाही राजवश के सिर पर मौत खेल रही थी। सभ्यताओ की कसौटी उस काल मे वीणा की झंकार न थी, यह कसौटी तलवार की धार थी। औरगजेब की साम्राज्य-लिप्सा ने कुतुबशाही की गरिमा के फूल को धूल मे मिला दिया। गोलकुण्डा की वैभव-श्री लुप्त हो गई। इतिहास के पन्नो की वह एक स्मृति-मात्र रह गई। अब वहाँ उल्लू वोलते हैं और शृगाल चीत्कार करते हैं। पानी के हौज़ उजड़े पड़े है। खँडहर भी मानो अपने ही वोझ से नीचे को खिसके पड़ते हैं। चारो ओर ईंट पत्थर, कॉटे है, जिनके वीच किसी एकाकी यात्री को, जो भूला-भटका इधर आ निकलता है, सम्हल-सम्हल कर पैर रखना होता है।

(२)

वड़ी उमंग और अधीरता से हम औरंगावाद स्टेशन पर उतरते है। हम लगभग दो हज़ार वर्ष की दूरी को पार करके अपने पूर्व-पुरुषो की अद्भुत शिल्प-कला, स्थापत्य और चित्रकला देखने जा रहे हैं। उन्होने 'प्रस्तर के वधन' खोल कर उसमें अपूर्व स्वप्नो का सौंदर्य उतारा था। मूक पत्थर वाचाल हो उठे थे। इस माध्यम पर उनके अधिकार की तुलना इतिहास के किस स्मारक से हम करे ? मिश्र के पिरैमिड विशाल थे किन्तु उनमे कोई अपरूप सौदर्य तो न था। अपने हाथो मनुष्य-पुत्र ने मानो पहाड गढे थे और प्रकृति को चुनौती दी थी ! यही विचार चीन की महान दीवार के सवध मे मन मे उठते है। ताजमहल जिसे कवि-गुरू ने 'काल के कपोल पर अश्रु-विन्दु' कहा है, सुकुमारता मे, सपनो के समान कोमल भाव-भगिमा मे अद्वितीय है। ऐलोरा और अजन्ता मे विराट कल्पना के साथ कोमल सुकुमार भावनाओ और अनुभूतियो का विलक्षण सम्मिलन हुआ है। अजन्ता और ऐलोरा के स्रष्टा, मानव-विश्वकर्मा मे पिरैमिड गढने वालो के समान अदम्य साहस था और साथ ही ताजमहल के समान कोमल और वारीक शिल्प-कला की अनुभूति और क्षमता भी।

बड़े-बड़े ताल और सरोवर जिन्हे यहाँ सागर कहते हैं और यह बड़ी-बड़ी हाथ से तराशी हुई-सी प्राकृतिक चट्टानें, यही हमे हैदरावाद की विशेपता लगी। खुला देश, विखरी वस्ती, चतुर्दिक् खँडहर, पहाडियो पर रक्खी यह चट्टानें, जो मानो मनुष्य की उँगली आकाश की ओर उठ रही है, और वडे-वडे लहर मारते सागर। यह प्रदेश आध्र का हृदय है, यही तिलगाना है जहाँ भारतीय किसान के सघर्प क्रान्ति का उग्र रूप धारण कर रहे हैं। यह हैदरावाद विशाल आन्ध्र की राजधानी है।

हम गोलकुंडा के खँडहरो मे घूम रहे है। यह खँडहर वीरान पड़े हैं, इनमे चिमगादडो की दुर्गन्धित वीट चतुर्दिक् विखरी पड़ी है। आज यहाँ उल्लू वोलते है। कितने वैभव और श्री की यादगारे यहाँ दवी पड़ी हैं। गोलकुडा इतिहास-प्रसिद्ध राज्य था। उसका नाम लेते ही स्वर्ण और जवाहरातों को याद से कल्पना के नेत्र झप जाते हैं। कितने करोड़ का सोना और जवाहरात यहाँ से औरंगजेव ही लूट ले गया था। यहाँ काव्य, संगीत और कला के प्रेमी कुतुवशाही वश के शासक राज्य करते थे। इन्होने उर्दू के सुगधि-पूरित फूल को उत्तर से लाकर इस दूर की धरती पर लगाया और वह इस धरती मे खूब फूला था। फारसी को त्याग कर कुतुवशाही राजवश ने देशज भापा को पाला-पोपा। स्वयं वह शासक उर्दू के कवि थे और उत्तर के उर्दू कवियो से भी पुरानी इनकी कविता की परम्परा है। अनेक क़िवदंतियाँ इनके सम्वन्ध मे प्रचलित हैं। राजकुमार भागमती के प्रेम मे पागल था। नदी पार करके वह अपनी प्रेमिका से मिलने जाता था। भरी वरसाती नदी मे उसने घोड़ा डाल दिया। डूवते-डूवते वह वचा। राजा ने नदी पर पुल वँधवा दिया। सिंहासन पर अधिकार पाकर राजकुमार ने भागनगर नाम से नया नगर वसाया जो आधुनिक हैदरावाद है।

गोलकुण्डा के प्रासादों की विशाल छतो पर, वारादरियो मे सगीत की मजलिस जुड़ती थी। राजा की अहीरिन प्रेमिका दूर अपने महल से गीत उठाती थी और यहाँ खुले आसमान के नीचे उसका स्वर स्पष्ट सुनाई

पडता था ! विलास, वैभव और आमोद-प्रमोद मे डूबे कुतुवशाही राजवश के सिर पर मौत खेल रही थी। सभ्यताओ की कसौटी उस काल मे वीणा की झकार न थी, यह कसौटी तलवार की धार थी। औरगजेब की साम्राज्य-लिप्सा ने कुतुवशाही की गरिमा के फूल को धूल मे मिला दिया। गोलकुण्डा की वैभव-श्री लुप्त हो गई। इतिहास के पन्नो की वह एक स्मृति-मात्र रह गई। अब वहाँ उल्लू बोलते है और शृगाल चीत्कार करते है। पानी के हौज उजडे पडे है। खँडहर भी मानो अपने ही वोझ से नीचे को खिसके पड़ते है। चारो ओर ईंट पत्थर, काँटे है, जिनके बीच किसी एकाकी यात्री को, जो भूला-भटका इधर आ निकलता है, सम्हल-सम्हल कर पैर रखना होता है।

(२)

वड़ी उमंग और अधीरता से हम औरगाबाद स्टेशन पर उतरते है। हम लगभग दो हजार वर्ष की दूरी को पार करके अपने पूर्व-पुरुषो की अद्‌भुत शिल्प-कला, स्थापत्य और चित्रकला देखने जा रहे हैं। उन्होने 'प्रस्तर के वंधन' खोल कर उसमे अपूर्व स्वप्नो का सौंदर्य उतारा था। मूक पत्थर वाचाल हो उठे थे। इस माध्यम पर उनके अधिकार की तुलना इतिहास के किस स्मारक से हम करे ? मिश्र के पिरैमिड विशाल थे किन्तु उनमें कोई अपरूप सौदर्य तो न था। अपने हाथो मनुष्य-पुत्र ने मानो पहाड गढे थे और प्रकृति को चुनौती दी थी ! यही विचार चीन की महान दीवार के संवध मे मन मे उठते हैं। ताजमहल जिसे कवि-गुरू ने 'काल के कपोल पर अश्रु-विन्दु' कहा है, सुकुमारता मे, सपनो के समान कोमल भाव-भगिमा मे अद्वितीय है। ऐलोरा और अजन्ता मे विराट कल्पना के साथ कोमल सुकुमार भावनाओ और अनुभूतियो का विलक्षण सम्मिलन हुआ है। अजन्ता और ऐलोरा के स्रष्टा, मानव-विश्वकर्मा मे पिरैमिड गढने वालो के समान अदम्य साहस था और साथ ही ताजमहल के समान कोमल और वारीक शिल्प-कला की अनुभूति और क्षमता भी।

पहाड़ियों से घिरे औरगावाद के आकाश को हमारे नेत्र अधीरता से खोज रहे थे। किधर होंगी वह गुफाएँ ? किस ओर छिपे होंगे वह अतीत के स्वप्न, पापाण पर पूर्व-पुरुपो के हस्तलाघव और कला-शिल्प के अद्भुत स्मृति-चिन्ह ?

मार्ग मे हम देवगिरि का उतुंग गढ देखते हैं। ऐलोरा की पहाडी को पार करके अलाउद्दीन इधर आया था और वड़ी चतुराई से उसने यह अविजित गढ फतह किया था। औरगजेव की कब्र भी हम देखतें हैं। कितनी दयनीय यह अन्तिम महान मुगल की समाधि है। आसमान और घास-पत्ती ही इसकी छत हैं, वही जो जहाँनारा ने अपनी समाधि के लिए औरंगजेव से माँगा था। घर-द्वार से हजारो मील दूर इस सादी कब्र मे औरगजेव सोया है। जिसने परिवार के लोग मिटा दिये, धर्म के नाम पर, साम्राज्य-विस्तार के लिये इतने संघर्प किए, उसके मुट्ठी-भर अवशेष आज इस अकिंचन अवस्था मे पड़े है। शाहजहाँ की समाधि, जहाँगीर की कब्र, अकवर का सिकन्दरा ! और यह औरगजेव की कब्र-जंहाँ भिखारियो की भीड़ इक्के-दुक्के दर्शक को मक्खियो की तरह घेर लेती है।

(३)

हम ऐलोरा की गुफाओ के सामने खडे हैं। यह हमारे जीवन की एक महती आकाक्षा और कल्पना आज पूरी हुई है। पूर्वकालीन भारत की महान कलात्मक और सास्कृतिक निधि गुफाओ की खुदाई, स्थापत्य, मूर्तियाँ और चित्र हैं।

वुद्ध गुफाएँ, हिन्दू गुफाएँ, जैन गुफाएँ—उत्तरोत्तर इनका शिल्प और कला-कौशल उत्कृष्ट होता गया है। वौद्ध गुफाओ से हम अपनी परिक्रमा शुरू करते हैं। यही एलोरा की सवसे पुरानी गुफाएँ हैं। चट्टान को तराश कर यह गुफाएँ वनाई गई है। दूर से देखने पर लगता है कि पहाड की गोद मे यह छोटे-छोटे गुड़ियों के से घर मनुष्य ने वनाए थे।

किन्तु अन्दर पहुँच कर एक विराट चैत्य, प्रार्थना गृह, विहार और मन्दिर देखकर हम दातो तले उँगली दबाते है। बडे-बड़े हाल, स्तभ, छतें, तीन-तीन मज़िल के चैत्य और मदिर! किस प्रकार पहाड़ को काट कर इन भिक्षुओं ने यह भव्य कला-सृष्टि की? कैलाश को तीन सौ वर्ष तक वे बनाते रहे। एक पीढी ने काम शुरू किया, पीढ़ी-दर-पीढी वह काम होता रहा, उसका आरम्भ एक पीढ़ी ने किया, अन्त दूसरी ने। जिसने कार्य आरम्भ किया वह अन्त न देख सका, जिसमें अन्त किया, उसने आरम्भ न देखा।

चट्टान को काट-काट कर उन्होने हाल बनाए, उन पर नक्काशी की दीवारो, छतो और खंभो पर अपरूप सौंदर्य से पूरित छवि अकित की, बुद्ध की विराट प्रतिमाएँ इसी पहाड को काट कर बनाई, पेड-पत्ते, बेल-बूटे, पशु-पक्षी, मानव-मूर्तियाँ पत्थर के बन्धन खोल कर मुक्त की।

इन सुन्दर, विशाल प्रार्थना-मदिरो मे खड़े होकर हम सोचते है, यही प्राचीन काल मे जीवन का अखण्ड प्रवाह था, सहस्रो भिक्षु और भिक्षुणियाँ यहाँ प्रार्थना मे लीन रहते थे। "बुद्धं शरण गच्छामि" के मधुर स्वर से चैत्य गूजते थे। विशाल बुद्ध मूर्तियाँ, छतो और खम्भो पर चित्र-विचित्रित नक्काशी, जीवन-लीला के विविध रूपों का दीवारो पर अंकन, नाना मुद्राओ और भाव-भगिमाओ मे चित्रित नर-नारी, राजपुरुष, यक्ष-यक्षणियाँ, बुद्ध की प्रव्रज्या और अन्त मे महापरिनिर्वाण, महाशान्ति और मुक्ति।

यह सभी कुछ तो यहाँ अकित है? कितने श्रम से, साधना से, अद्भुत कला-शिल्प से इन गुफाओ को मानव-विश्वकर्मा ने सजाया है। पहली गुफा से तीसवी-चौंतीसवी तक निरतर यहशिल्प उत्तरोत्तरपरिष्कृत और प्रौढ होता गया है। कैलाश एलोरा की कला को पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। हाथियो के कधो पर रक्खे रथ के रूप मे इस मन्दिर का निर्माण आठवी सदी मे राष्ट्रकूटो के काल मे हुआ। शताब्दियाँ इसे पूरा करने में लगी। भारतीय स्थापत्य कला मे एलोरा का कैलाश अद्वितीय है। पहाड़ को काट कर ही यह गज, स्तंभ, प्राचीर, तोरण, द्वार,

मदिर, मंडप, विराट आकार की मूर्तियाँ, जीवन के चित्र अकित हुए थे। जीवन मे कितनी आस्था, कितना अदम्य साहस, स्फूर्ति, कितनी दृढ इच्छा-शक्ति इन महान कलाकारो मे रही होगी, जिन्होंने पत्थर को मोम के समान कोमल मान कर उस पर अपने जीवन-स्वप्न, अपनी आशा-अभिलापाएँ और महती आकाक्षाएँ अकित कीं।

यह विशाल अलिन्द, चैत्य, मदिर, यह विराट मूर्त्तियाँ, यह कोमल, सुकुमार शिल्प, यह महती कल्पनाएँ हमारे ही पूर्व-पुरुपो की साधना व्यक्त करते हैं। श्रद्धा और आदर से नतमस्तक होकर हम बार-बार इन दीवारो, छतो और खम्भो को देखते है और सोचते हैं, ऐसा अपूर्व कला-शिल्प शायद और भी कही होगा, किन्तु इससे भी महत् प्रयास क्या मानव-पुत्र के लिये सभव है?

(४)

एलोरा में हमने अद्भुत् स्थापत्य और कला-शिल्प देखा। यहाँ भी छतों और दीवारो पर चित्रकारी के अवशेप थे, किन्तु वे लगभग मिट चुके थे। अजन्ता की ओर जाते हुये इसी उच्च कोटि के चित्र देखने की लालसा से हम बढ़ रहे थे।

अजन्ता की गुफाएँ भारतीय कला का उच्चतम् रूप हैं। कितनी स्मृतियाँ, अनुभूतियाँ, गहरी भावनाएँ 'अजन्ता' शब्द के साथ गुथी हुई हैं। यही भारतीय कला अपने चरम उत्कर्प पर पहुँची थी। यहीं हमारे पूर्वपुरुपों ने अपरूप सौंदर्य के स्वप्न पत्थर पर अंकित किये थे और उन्हे यथार्थ बनाया था।

अजन्ता नाम के गाँव को हम पार करके घाटी में उतरते हैं। नदी के टेढे-मेढ़े, घूम घुमेरे पथ का अनुसरण करते हुये हम निर्जन, वीरान प्रदेश मे इन प्राचीन गुफाओ के सामने जाकर खड़े होते हैं।

अद्भुत् प्राकृतिक सौंदर्य इस स्थल पर फूट पड़ा है। नगरो और उपनगरो से दूर यह स्थान पर्वत की गोद मे बसा है। अर्द्धचन्द्र आकार

मे गुफाएँ पहाड के क्रोड मे खोदी गई हैं। ऊपर से जल का स्रोत फूट कर नदी की धारा बनता है। चतुर्दिक् नीला आकाश, हरी घास, लता-द्रुम हम देखते हैं। यहाँ बौद्ध भिक्षुओं ने पहाड़ को काट-काट कर विहार और चैत्य बनाए, कला से उनका श्रृंगार किया, पत्थर को तराश कर गुफाएँ बनाईं, छत, खंभो और दीवारो पर अद्भुत् छबियाँ अंकित की, चित्र बनाये! कितना अदम्य साहस, कितनी जीवन-शक्ति और उमग उनमे थी! जीवन के प्रति कितना रस और आकर्षण यह छबियाँ प्रकट करती है! जीवन के प्रति कितनी गहरी आस्था इस कला मे है! जीवन के प्रति मोह और आसक्ति इन कलाकारों में न थी, किन्तु विरक्ति भी उनकी कला प्रदर्शित नही करती। उन्होने जीवन के व्यापारो को सहज, संयत दृष्टि से देखा और अंकित किया था।

सुन्दर युवतियाँ अपूर्व मुद्राओं और भाव-भगिमाओ में हम यहाँ देखते है। उनमे अनेक कृष्णवर्णा है जो हमे अजन्ता ग्राम के समीप खेतों मे काम करती हुई तरुणियों की याद दिलाती है। उनकी दृढ़, मांसल, युवा देह कलाकार की दृष्टि और तूलिका का आकर्षण और कौतूहल व्यक्त करती है, किन्तु उपेक्षा, उदासीनता अथवा अनासक्ति नही। राजपुरुष, व्यापारी, भिक्षु, सैनिक, बूढे, बच्चे, पशु, पक्षी, तरु, लता, द्रुम—सभी पत्थर-पट पर अंकित है। यही दृश्य, कथाएँ, व्यक्तित्व और मुद्राएँ गुफाओं की दीवारों और छतो पर चित्र रूपों में भी है। पत्थर पर शिल्पियो ने मिट्टी का प्लास्टर चढाया, फिर पत्थर से ही बनाए रग अपनी अद्वितीय रेखाओ में भरे। इन चित्रो की रेखाएँ, उनके घुमाव, उनकी गति, लय, उनका संगीत अपूर्व और अद्वितीय है। इतिहास इस कला के सन्मुख चिरकाल से नतमस्तक रहा है। इन चित्रों के रंग मुख्यतः लाल, बादामी, भूरे, मटमैले हैं। धरती के रंग ही इन चित्रों में प्रधान है। नीले, काले, हरे रंग की बीच-बीच मे भूमिका मात्र ही है। इन आकृतियों के केश, वस्त्र, अलंकार उनके नेत्र, भाव, मुद्राएँ कला-प्रेमियों के मन को चिरकाल से मोहते आ रहे है। जीवन की व्यापक, गहरी, गम्भीर अनुभूति इस

मदिर, मडप, विराट आकार की मूर्तियाँ, जीवन के चित्र अकित हुए थे। जीवन मे कितनी आस्था, कितना अदम्य साहस, स्फूर्ति, कितनी दृढ इच्छा-शक्ति इन महान कलाकारो मे रही होगी, जिन्होने पत्थर को मोम के समान कोमल मान कर उस पर अपने जीवन-स्वप्न, अपनी आशा-अभिलापाएँ और महती आकाक्षाएँ अकित की।

यह विशाल अलिन्द, चैत्य, मदिर, यह विराट मूर्त्तियाँ, यह कोमल, सुकुमार शिल्प, यह महती कल्पनाएँ हमारे ही पूर्व-पुरुषों की साधना व्यक्त करते हैं। श्रद्धा और आदर से नतमस्तक होकर हम बार-बार इन दीवारो, छतों और खम्भो को देखते है और सोचते है, ऐसा अपूर्व कला-शिल्प शायद और भी कही होगा, किन्तु इससे भी महत् प्रयास क्या मानव-पुत्र के लिये सभव है?

(४)

एलोरा मे हमने अद्भुत् स्थापत्य और कला-शिल्प देखा। यहाँ भी छतो और दीवारो पर चित्रकारी के अवशेप थे, किन्तु वे लगभग मिट चुके थे। अजन्ता की ओर जाते हुये इसी उच्च कोटि के चित्र देखने की लालसा से हम बढ रहे थे।

अजन्ता की गुफाएँ भारतीय कला का उच्चतम् रूप हैं। कितनी स्मृतियाँ, अनुभूतियाँ, गहरी भावनाएँ 'अजन्ता' शव्द के साथ गुथी हुई है। यही भारतीय कला अपने चरम उत्कर्प पर पहुँची थी। यही हमारे पूर्वपुरुपो ने अपरूप सौदर्य के स्वप्न पत्थर पर अकित किये थे और उन्हे यथार्थ बनाया था।

अजन्ता नाम के गाँव को हम पार करके घाटी में उतरते है। नदी के टेढ़े-मेढे, घूम घुमेरे पथ का अनुसरण करते हुये हम निर्जन, वीरान प्रदेश में इन प्राचीन गुफ़ाओ के सामने जाकर खडे होते हैं।

अद्भुत् प्राकृतिक सौंदर्य इस स्थल पर फूट पड़ा है। नगरो और उपनगरो से दूर यह स्थान पर्वत की गोद मे वसा है। अर्द्धचन्द्र आकार

तुमने अपने चरण-चिह्न इस धरती पर कहाँ नही छोडे ! गया में तुमने ज्ञान का आलोक पाया, सारनाथ मे तुमने धर्म का चक्र घुमाया, उसके बाद, हे तपसी, तुम नगर-नगर और द्वार-द्वार भटकते फिरे। राजगृह और पाटलिपुत्र, कोशाम्बी और काशी के पथ तुम्हारी पद-चाप से शान्त हुए ! लुम्बिनी ने तुम्हारा पुण्योदय और कुशीनगर ने दुःखमय अस्त देखा।

हे महाश्रमण, तुमने करुणा का असीम सागर दिशि-दिशि मे बहाया। क्रूर, बर्बर शक्तियाँ तुम्हारे बल के सन्मुख नत-मस्तक हुईं। तुम धर्म और न्याय के पुत्र थे। तुमने दासता और अन्याय की शक्तियो को धूल मे मिलाया।

तुमने मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढाया। तुमने स्वार्थ और तृष्णा के दुर्ग ढहाए।

तुम्हारी अमृत वाणी ने युग-युग के बन्दीगृह खोल दिए। जो त्रस्त और दुखी थे, उन्होने अपनी शृंखलाएँ तोड़ फेंकी और मनुष्य मात्र की समता का जय-घोष किया। जो ऊँचे आसनो पर प्रतिष्ठित थे, उनके हृदय भय से काँप उठे।

आज फिर असख्य मानव उठ रहे हैं। शान्ति का जय-घोष आतताइयो के हृदय मे कम्पन भर रहा है। समता का शख फूँकती हुई मानवता आगे बढ रही है।

तुम्हारा सदेश हमारे प्राणो मे नया आह्लाद भर दे ! तुम्हारी वाणी मानवता के लिए आशीष बन कर एक बार फिर दिग-दिगन्त मे गूँजे ! शान्ति और समता का मन्त्र हमे अपराजेय बना दे !

हे शाक्य-सिह, हम तुम्हारी महान-परम्परा के उत्तराधिकारी हैं। हम भी पशु-बल और स्वार्थ पर विजय पा सकें, करुणा की गगा देश-देश मे प्रवाहित कर सके, तुम्हारी भाँति ही मृत्यु जय बन सकें।

तुम्हारी वाणी चिरकाल तक इस धरती का सम्बल बने। तुम्हारे शब्द अमोघ और चिरजीवी हो।

कला से है। जीवन के अग-प्रत्यंग का कलाकार की भावना ने स्पर्श किया है। यहाँ राजपुरुष शिकार के लिये जा रहे हैं; इधर वह हाथी पकड़ा गया है; उधर क्रीड़ा-कल्लोल है, किन्तु पृष्ठ-भूमि में सदा ही बुद्ध की प्रशस्त मूर्ति शान्त मुद्रा मे अपनी स्निग्ध दृष्टि से दर्शक को आश्वस्त करती हुई मानो कहती है : 'जीवन से डरो नही, चिन्तित न हो। जीवन एक अद्भुत व्यापार है; उसे समझो, किन्तु उसमे मोहवश अपने अस्तित्व को खो न दो।"

अनन्त उल्लास, आह्लाद, हर्ष-विमर्ष इन मूर्तियों और चित्रो मे हम पाते हैं। इस कला-क्षेत्र की परिक्रमा करके यात्री अपने को धन्य समझता है। अपने सास्कृतिक उत्तराधिकार के प्रति कृतज्ञता के भार से मस्तक झुक जाता है। कितनी ऊँची उड़ाने इन बौद्ध कलाकारो ने ली थी। उनकी तरल, ज्ञान-संपन्न दृष्टि कितनी पैनी, उदार, गहरी और विशाल थी। इस अतुलनीय विरासत का भार सँभालने की शक्ति और क्षमता हमें प्राप्त करनी है। यह कार्य कितना कठिन लगता है, किन्तु इसे करना ही होगा, क्योकि कोई भी देश और जाति केवल अतीत के प्रयासो की शक्ति से नही जीते, चाहे कितने ही महान वे प्रयास क्यो न रहे हो।

२२

तथागत के प्रति

आज से दो सहस्र पाँच सौ वर्ष पूर्व तुमने अपने नेत्र मूँदे थे। जीवन के दुःख से तुम आकुल और व्यथित हुए थे। सर्वत्र तुमने रुदन और हाहाकार देखा था और राजप्रासाद त्याग कर तुम जन-जन की व्यथा हरने के लिए पथ के भिखारी बने थे!

हे भारत के महान पुत्र, तुम सा दूसरा इस देश ने नही देखा, न विश्व ने ही। अपार करुणा से तुम्हारा हृदय आप्लावित हुआ था। देश-विदेश में और युग-युगान्तर मे तुम्हारी शान्ति-भरी वाणी गूँजी। इतिहास को तुमने अपना वरद् हाथ उठा कर अभय का दान दिया!

इस देश की मिट्टी के कण-कण मे तुम्हारा प्रेम और करुणा का सदेश व्याप्त है। प्रेम से पशु-बल पर विजय प्राप्त करना हमने तुमसे सीखा।

तुमने अपने चरण-चिह्न इस धरती पर कहाँ नहीं छोड़े! गया में तुमने ज्ञान का आलोक पाया, सारनाथ में तुमने धर्म का चक्र घुमाया, उसके बाद, हे तपसी, तुम नगर-नगर और द्वार-द्वार भटकते फिरे। राजगृह और पाटलिपुत्र, कोशाम्बी और काशी के पथ तुम्हारी पद-चाप से शान्त हुए! लुम्बिनी ने तुम्हारा पुण्योदय और कुशीनगर ने दु:खमय अस्त देखा।

हे महाश्रमण, तुमने करुणा का असीम सागर दिशि-दिशि में बहाया। क्रूर, बर्बर शक्तियाँ तुम्हारे बल के सन्मुख नत-मस्तक हुई। तुम धर्म और न्याय के पुत्र थे। तुमने दासता और अन्याय की शक्तियो को धूल में मिलाया।

तुमने मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढाया। तुमने स्वार्थ और तृष्णा के दुर्ग ढहाए।

तुम्हारी अमृत वाणी ने युग-युग के बन्दीगृह खोल दिए। जो त्रस्त और दुखी थे, उन्होंने अपनी शृंखलाएँ तोड़ फेंकी और मनुष्य मात्र की समता का जय-घोष किया। जो ऊँचे आसनो पर प्रतिष्ठित थे, उनके हृदय भय से काँप उठे।

आज फिर असंख्य मानव उठ रहे हैं। शान्ति का जय-घोष आततायियों के हृदय मे कम्पन भर रहा है। समता का शख फूंकती हुई मानवता आगे बढ़ रही है।

तुम्हारा सदेश हमारे प्राणो मे नया आह्लाद भर दे! तुम्हारी वाणी मानवता के लिए आशीष बन कर एक बार फिर दिग-दिगन्त मे गूंजे! शान्ति और समता का मुन्त्र हमे अपराजेय बना दे!

हे शाक्य-सिह, हम तुम्हारी महान-परम्परा के उत्तराधिकारी है। हम भी पशु-बल और स्वार्थ पर विजय पा सकें, करुणा की गगा देश-देश मे प्रवाहित कर सके, तुम्हारी भाँति ही मृत्यु जय बन सकें।

'तुम्हारी वाणी' चिरकाल तक इस धरती का सम्बल बने। तुम्हारे शब्द अमोघ और चिरजीवी हो।

२३

'निराला' के प्रति

१. कवि-गुरु, तुमने गरल का पान किया है!
जीवन की व्याधियो का तुमने अंजुलि भर कर आचमन किया!
तुमने जन-जन के हित हलाहल अपने कंठ मे धारण किया!
तुम नील-कठ हो! तुम शिव हो!

२. तुम्हारे नयन की ज्वाला से दुःख-दारिद्रय भस्म होते हैं;
तुम्हारे चरणों की चाप से भस्मासुर का हृदय दहलता है;
तुम्हारे ताण्डव-नर्तन से वन्धन कट जाते है,
अन्धकार हट जाता है!

३. अन्याय और क्रूरता को तुमने सदा चुनौती दी;
कायरता, कापुरुपता का तुमने सतत निरादर किया।
तुम्हारी हाँक से अन्यायी सदा काँपे हैं।
शोपक और उत्पीडक सदैव तुमसे अप्रसन्न रहे।

४. तुमने अभिजात वर्ग को ठुकरा कर सर्वहारा का पथ अपनाया।
तुमने गुलाव को ठुकराया और कुकुरमुत्ता को अपनाया!
कुल्ली भाट को तुमने हृदय का हार वनाया।
तुम्हारे 'परिमल' से हमारा हृदय सदा सुवासित है।
तुम्हारी 'अनामिका' और 'अणिमा' हमारे जीवन के अक्षय कोप हैं।
तुम्हारे विल्लेसुर हमारे दुख और दैन्य के प्रतीक है।

५. हे शम्भु! जो विप तुमने पिया, वह हमारे लिए अमृत वन गया!
उसने तुम्हारी वाणी में शक्ति भर दी।
असंख्य आँधियाँ चला दी,
उनचास पवन वहाए!
हमारी जीवन-व्यथा को तुमने विप के समान पिया;
वह निरन्तर तुम्हारी वाणी से अमृत-काव्य वन कर वह रही है।
इस विप से तुम घुल-घुल कर मिट रहे हो,
किन्तु तुम्हारी अमृत-वाणी हमे निरन्तर पुनर्जीवित कर रही है!

२४

शान्ति का पथ

मैं शान्ति का पथ हूँ।

मैं नगर, वन, ग्राम-देश, मरुभूमि, नदी और सागर के हृदय को लाँघता हुआ बढता हूँ। मैं अनेक देश और महाद्वीप, जातियाँ, राष्ट्र, सदियाँ और युग पार करता हूँ। मैं अतीत और भविष्य हूँ। मै वर्तमान हूँ। मैं बीता हुआ कल और आज हूँ। और मैं ही आनेवाला कल भी हूँ।

मेरी यात्रा इतिहास के धूमिल आलोक मे शुरू हुई थी। मैं नदी से अपनी झोपड़ियो को पानी ले जाती हुई तरुणियो के पैरो से बनी हुई धागे के समान पतली पगडण्डी था। मेरा अनुसरण करते हुए पशुओं के दल चरागाहो की ओर जाते थे, और फेरीवाले, बच्चो को लुभाने के लिए मिठाई और तरुणियों के लिए चमकीले आभूपण लेकर जाते थे।

मैं फिर विराट् राज-मार्ग बना, जिसे पार करके व्यापारी अपना बहुमूल्य वाणिज्य का माल—रेशम और चन्दन, वन्दर और मोर, मोती और सुगन्ध—ले जाते थे। मुझे पार करके कारवाँ योरप से चीन, और फिर वापिस चीन से योरोप जाते थे। मेरा ही अनुसरण ह्युआन साग, मार्को पोलो और कुमारजीव ने किया। इब्नबतूता और अलबेरूनी का पथ भी मैं ही था।

मेरे सहारे साम्राज्यो के जुलूस चलते थे। उनकी शान और वैभव के पीछे अकथ व्यथा और पीड़ा छिपी पडी थी। उन लहराते हुए शानदार झण्डो और चटख रगो से आँखे झप जाती थी, जब वे स्वर्ण के नगरो और पके हुए नाज के खेतो के वीच से चक्कर काटते हुए निकलते थे। लेकिन इस सव वैभव के पीछे से उठता हुआ वच्चो और वड़ो का क्रन्दन भी मैं सुनता था।

अनेक सेनाएँ मेरा हृदय रौदती हुई निकलती थी। वे रक्त वहाती थी लूट-पाट और वलात्कार करती थी और जिधर से निकलती

थी, उधर ही रक्त-स्वेद और शोक के पद-चिन्ह छोड़ जाती थी। चंगज और तैमूर ने मेरा अनुसरण किया था, तोरमाण और मिहिरकुल ने, और क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने। मैं इतिहास का चिर-परिचित पथ हूँ।

इस पथ से अनेक शताब्दियों और इतिहास के युग गुज़रे हैं। एक वार फिर महान सेनाये मेघो के समान मेरे दृष्टिपथ पर एकत्रित हो रही हैं। वे लूट-मार, रक्त-पात और बलात्कार के लिए उतावली हो रही हैं। वे चीन के मार्ग से गुजरती है, उसकी प्राचीन सस्कृति को धूल-धूसरित करती है, घरों को अफ़ीम के मादक धुएँ से घोंटती हैं, उसके महान, विराट हृदय को अपनी टापो से रौदती हैं, उसके उदार मुख को कुचलती है। क्रमश. वे समुद्र के किनारे ठेल दी जाती है, जहाँ से वे आई थी। प्रशान्त महासागर उन्हें लील लेता है और उसके लिए केवल पैर टेकने भर के लिए एक लघु, अनिश्चित भूमि-विन्दु, ताईवान का द्वीप, छोड़ता है।

वे कोरिया मे घुसती है, उसके आसमान मे गृद्ध-दल मँडराने लगते है, और वहाँ से मृत्यु रोग, विनाश और शोक की वर्षा करते हैं। किन्तु उनका तुमुल नाद शान्ति के गीतो से दब जाता है, फलप्रद मृदुल श्रम के गीतो से, नई सस्कृति के निर्माण, अणु की शक्ति और साम्यवाद के युग से टक्कर खाकर दब जाता है।

मैं इन सेनाओ को हर जगह पीछे हटते देखता हूँ, चीन से, कोरिया से, वीयत-नाम से, जापान और ताईवान से, उन देशो से जहाँ सूर्य उदय होता है, और जहाँ कभी अस्त नही होता।

मैं शान्ति की सेनाओं को आगे बढ़ते हुए देखता हूँ, श्रमिकों, शान्तिप्रिय व्यापारियो, शिक्षकों, छात्रो, वैज्ञानिको की सेनाओ को। वे अधीर चरणो से विपुलता और समृद्धि के युग की ओर बढ़ती हैं, जब कि प्रत्येक मानव की आवश्यकतायें पूरी होंगी, जब दासता, युद्ध, रक्त, स्वेद, और आँसू पृथ्वी से मिट जायेंगे।

शान्ति के कपोत आकाश को अपने पंखो के श्वेत स्वर से भर देते

हैं, और मैं मनुष्य के अतीत के समान ही महत् उसके भविष्य के स्वप्न को देखने लगता हूँ। सुकरात, बुद्ध, और कन्फ्यूशियस का उत्तराधिकार, न्यूटन और गैलीलियो, आइन्सटाइन और टैगोर, मार्क्स और लेनिन का उत्तराधिकार, नई पीढ़ियाँ उच्चतम स्तर और पहुँच तक ले जाती हैं।

शान्ति के कपोत आकाशमे अणु बम द्वारा उड़ाये हीरोशिमा के लौह-स्तम्भों से भी ऊपर उड़ते है। शान्ति-प्रद श्रम के स्वर पृथ्वी का हृदय अपनी जीवनदायिनी स्फूर्ति से भर देते हैं। खेतो और खलिहानो से रगीन चटकीले वस्त्र पहिने तरुणियो के गीत हवा मे गूंजते है और प्रतिध्वनित होते है। बनों मे नए नगर वसते है। एक नई सस्कृति जन्म लेती है, और युद्ध-खोर पीछे ठेल दिये जाते हैं। प्रागैतिहासिक आदिम युग के पशुओ की पक्ति में वह जा मिलते है।

इतिहास के धुंधलके से निकलता हुआ और भविष्य की ओर उन्मुख मैं शान्ति का पथ हूँ। लुटेरो और मृत्युदायको के बावजूद भी शान्ति सेनायें वढती जा रही है। अन्तत. आलोक की सेनायें अन्धकार की शक्ति पर विजय पायेगी ही।

मैं भविष्य का स्वप्न देखता हूँ, जब केवल शान्ति के कारवाँ मेरे हृदय का स्पर्श अपनी कोमल पद-चाप से करेंगे और मेरे पथ पर कभी कोई वर्वर शिकारी पशु न मँडरायेंगे। वह दिन अब बहुत समीप है। उसके अरुण आलोक से अभी आकाश भर चला है।

२५

मेघ की यात्रा

मटमैले आकाश में श्याम मेघ एकत्रित होते है, और उमड़-घुमड़ कर किसी महान सम्राट की विजयिनी सेना की भाँति उत्तर की ओर चल देते है। भूरी, सूखी भूमि उत्सुक प्रतीक्षा मे देखती रहती है, किन्तु

मेघराज का दल-वल त्राहि-त्राहि करते नगरो, खेतो और मैदानो को अकाल-पीड़ित छोड़ कर पर्वत-देश की ओर वढ जाता है। वह कुवेर की अल्का पर गडगडा कर टूटता है।

बगाल सागर से मेघ उठते है। सागर के हृदय को वे मथ डालते है। किन्तु सागर अमृत और लक्ष्मी के स्थान पर विप और दुर्भिक्ष उगलता है। महानगरो के ऊपर तैरते हुए मेघ उत्तर की ओर जाते है। वायु शीतल वन कर सतप्त नागरिको के हृदय को शान्त करती है, किन्तु खेत जल की प्रतीक्षा मे इन धावमान मेघों को देखकर अपना हृदय कूट लेते है। सोने की वँगला भूमि, शस्य-श्यामल खेत, पानी से भरे ताल, यक्ष-वधुओ के नेत्रो के समान सुन्दर कमल—सभी कल्पना के चित्र वन गए है।

अनेक नए और प्राचीन उजाड़ नगरो के ऊपर श्राप-ग्रस्त यक्ष के दूत यह वादल गुज़रते है। वग, मगध, मिथिला, लिच्छवि और शाक्यों के नगरों के ऊपर वक्र दृष्टि डालते हुए वे निकल जाते है। वे राजगृह, पाटलिपुत्र, कपिलवस्तु, वैशाली, काशी और कोशाम्वी के ऊपर होते हुए जाते हैं। वे नालन्द और सारनाथ के उजाड़ खँडहरों पर पल भर दृक्पात करते है, फिर मुगलो के वैभव के अवशेपो पर दो अश्रु-विन्दु टपकाते हुए आधुनिका दिल्ली के ऊपर मँडराते है, और आगे वढ़ जाते है। वे चले ही जाते है, श्राप-ग्रस्त यक्ष के दूत को कही भी क्षण-भर विश्राम का अवसर नही है। इन प्राचीन उजाड़ नगरों अथवा नई, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की नगरियो मे कही भी वे दो-चार दिन अपना आवास नहीं बना सकते।

अरव सागर से उमड़-घुमड कर काले-घने मेघ आकाश मे उठते हैं। अमृत के भाण्ड अपने हाथो में लिए वे नगरो और गाँवो के ऊपर उडते हैं। अमृत के पात्र उनके हाथो से छूट कर सागर में गिर पडते है, फिर यह मेघ रीते हाथों ही उत्तरापथ की यात्रा करते है। वे कालिदास के चिरपरिचित आकाश-मार्ग से उत्तर के नगरो की ओर चल देते है। वे

"वेनी-सरीखे" तन की नदियो, जो कृश शरीर की अभिसारिकाओ-सी लगती हैं, और पीत-वर्ण वनों के ऊपर से निकलते है, वे उज्जयिनी और विदिशा, प्रयाग और अयोध्या के ऊपर मँडराते है, किन्तु तर्जन-गर्जन करती हुई दूरगामी सेनाओ की भाँति वे दल-के-दल यक्षपुरी की ओर वढ जाते हैं। धूप और लू से दग्ध मैदानो के उर को वे क्षण भर शीतल छाया प्रदान करते है किन्तु कही भी वे सुधा नही बरसाते। तृपित धरती की संतप्त पुकार की अवहेलना करते हुए वे पर्वतो के मार्ग पर अपनी हस्ति-सेना वढा देते है। हाथी चिघाडते है, उनके चालको के अकुश तड़ित के समान चमकते हैं; हाथी गरजते हुए, झूमते हुए मस्त चाल से पर्वत-मार्ग पर वढते है।

देवदारु और चीड के वन मेघों की शीतल छाया पाकर रोमाचित होते है। एक अव्यक्त नाद देवदारु के वनों में भर जाता है। सागर का गम्भीर संगीत चीड के वनों को उद्वेलित करता है, किन्तु मेघ और भी उत्तु ग पर्वत-शिखरो की ओर वढते जाते हैं, जहाँ शास्वत हिम-मण्डित गढ-शिखरो के वीच अल्कापुरी वसी है। वे धवलगिरि, त्रिशूल, चौखभा, पचचूलि और नन्दा देवी के हिम-देश पर मँडराते है।

नगर, वन और खेत जल के लिए त्राहि-त्राहि करते है। सर्वत्र अनावृष्टि और दुर्भिक्ष का सकट मनुष्यों को आतकित कर रहा है। क्या श्राप-ग्रस्त यक्ष की मुक्ति इस स्वेच्छाचार से न होगी? क्या विज्ञान की प्रचण्ड शक्ति इन मेघों का कठोर अकुश से शासन करने मे असमर्थ रहेगी? क्या मानव विश्वकर्मा अपने सशक्त करो से प्रकृति का दमन और अनुशासन न कर सकेगा?

नगरों के ऊपर धूप और छाया की ऑखमिचौनी का खेल खेलते हुए मेघ विना क्षण भर का विश्राम किए अविराम आगे वढ़ जाते है। उमड़-घुमड कर गर्जन-तर्जन करते हुए वे मानो कहते है: "मनुष्य ने अणु को तोड़ कर विध्वस की अगणित ज्वालाएँ जला दी है; अग्नि-वाहक असंख्य मेघ मनुष्य ने आकाश मे स्वच्छन्द विचरने के लिए छोड दिए है। यह

अग्नि-पुंज हमारे हृदय की समस्त सचित जल-राशि सोख रहे है। जब तक मनुष्य इन विध्वसक ज्वालाओं का नियन्त्रण करके उन्हे निर्माण के कार्यो मे नही लगाता, तब तक मेघराज का दग्ध हृदय शीतल नही होगा। तब तक पृथ्वी पर सुधा की वृष्टि नही होगी,. और उसके हृदय को अणु की ज्वालाएँ इसी प्रकार जलाती रहेगी।"

मेघराज की सेनाएँ डमरू और मृदग बजाती हुईं, बड़े दल-बल के साथ आकाश मे जुड़ती हैं, और वनो और नगरो पर क्षण भर के लिए छायाओं की वृष्टि करती हुई यक्षराज की पुरी की ओर विजय-यात्रा करती हैं। श्राप-ग्रस्त यक्ष रामगिरि पर हाहाकार और क्रन्दन करता हुआ अवश उनकी ओर देखता रह जाता है।

२६

ग्रीष्म के दिन

दिन भर हम अपने कमरे के अन्दर पड़े रहते है। सब खिड़की और दरवाजे हमने बद कर लिए है और रोशनदान आदि पर काले पर्दे डाल दिए हैं। कमरा अन्ध-गुहा सदृश हो जाता है। आदिम युग की मानवता के समान मानो गुफाओं मे हम रहते हैं। दिन भर हम बन्द रहते है और रात्रि मे बाहर निकलते हैं, जैसे वन-पशु शिकार की खोज में!

सुबह होते ही सूर्य का प्रखर ताप झुलसाने लगता है। हवा क्रमशः गर्म होने लगती है, फिर दोपहर भर हू-हू करके गरजती रहती है। एक अंधड़-सा दिन भर चलता है। बाहर मानो धधकती भट्टी में विश्व जलता है। पेड़ सुनसान,खड़े रहते हैं, उनके नीचे कुछ पशु बैठे जुगाली करते है। कभी-कभी कोई राहगीर निकल जाता है; इक्के और बसे बीच-बीच मे जाती है। सड़क पर पेड़ो की छाया मे अकसर बजारे भी आ पड़ते है। उनका चौका-चूल्हा सब सडक पर होता है। स्त्रियाँ जूँ बीनती हैं, बच्चो को दूध पिलाती है। कभी-कभी कर्कश स्वर मे वाक्-युद्ध छिड

जाता है। तब सोई हुई यह माया की नगरी जाग उठती है। छोटी-सी भीड़ जुड जाती है। सब कोई पूछते है : "क्या हुआ? क्या हुआ?" पता लगता है, बाप-बेटे की लड़ाई है! सास-बहू की लड़ाई है। भीड़ छँटने लगती है। जीवन का क्रम पुनः अपनी सामान्य गति धारण करता है।

हम अपनी अन्ध-गुहा मे लेटे हुए सोने का उपक्रम करते है। खस पर हम पानी छिडकते है, वायु का शीतल झोंका आता है और पानी को सुखा जाता है। कमरा गर्म हो उठता है, हम फिर खस पर पानी डालते है। दिन भर हम खस पर पानी छिड़कते है, किन्तु गर्मी पर विजय नही पा सकते। शाम होते-होते हम काफी थक जाते है।

लैम्प जला कर हम पढ़ने की चेष्टा करते है, किन्तु बीच-बीच मे उनीदे हो जाते है। हम सोने का प्रयत्न करते है, किन्तु गर्मी हमे जगा देती है।

बाहर भीषण आग बरसती है। कोई हारा-थका मित्र दोपहर मे आ जाता है, तो काफी आराम अनुभव करता है। कहता है, कमरा ठंडा है! द्वार खुलते ही लगता है, जैसे किसी 'फर्नेस' का दरवाजा खुला हो। आँखें झप जाती है, मुँह और शरीर पर लू के कोडे लगते हैं!

बीच-बीच मे कोई-न-कोई आता ही रहता है। डाकिया पत्र लाता है; फलवाला आवाज लगाता है। गाय-बकरी बाड़ चरने आती है। उन्हे जगल-जलेबी बहुत पसद है। कोई किसी का घर पूछने आता है। कोई नम्बर बढवाने ठीक दोपहरी मे आता है! भीषण गर्मी से व्याकुल होकर यद्यपि जीवन श्रान्त है, फिर भी हल्की-हल्की उसकी साँस चलती ही रहती है! अर्द्ध-सुप्त अवस्था मे जीवन की गति मन्द पड जाती है, किन्तु उसकी हरकत जारी रहती है।

शाम होती है। हम डरते-डरते गुफा से बाहर निकलते है। हवा अब भी गर्म है और वेग से चल रही है। धीमे-धीमे इसकी उष्णता कम हो रही है। क्रमशः अँधेरा बढ़ने लगता है, तारे निकल आते है। वन-

अग्नि-पुंज हमारे हृदय की समस्त सचित जल-राशि सोख रहे है। जव तक मनुष्य इन विध्वंसक ज्वालाओ का नियन्त्रण करके उन्हे निर्माण के कार्यों में नही लगाता, तव तक मेघराज का दग्घ हृदय शीतल नही होगा। तब तक पृथ्वी पर सुधा की वृष्टि नही होगी, और उसके हृदय को अणु की ज्वालाएँ इसी प्रकार जलाती रहेगी।"

मेघराज की सेनाएँ डमरू और मृदंग वजाती हुई, वड़े दल-वल के साथ आकाश मे जुड़ती है, और वनो और नगरो पर क्षण भर के लिए छायाओ की वृष्टि करती हुई यक्षराज की पुरी की ओर विजय-यात्रा करती है। श्राप-ग्रस्त यक्ष रामगिरि पर हाहाकार और क्रन्दन करता हुआ अवश उनकी ओर देखता रह जाता है।

२६

ग्रीष्म के दिन

दिन भर हम अपने कमरे के अन्दर पड़े रहते है। सव खिड़की और दरवाजे हमने वद कर लिए हैं और रोशनदान आदि पर काले पर्दे डाल दिए हैं। कमरा अन्ध-गुहा सदृश हो जाता है। आदिम युग की मानवता के समान मानो गुफाओं मे हम रहते हैं। दिन भर हम वन्द रहते है और रात्रि मे वाहर निकलते है, जैसे वन-पशु शिकार की खोज मे!

सुवह होते ही सूर्य का प्रखर ताप झुलसाने लगता है। हवा क्रमश: गर्म होने लगती है, फिर दोपहर भर हू-हू करके गरजती रहती है। एक अंधड़-सा दिन भर चलता है। वाहर मानो धधकती भट्टी में विश्व जलता है। पेड़ सुनसान, खड़े रहते है; उनके नीचे कुछ पशु वैठे जुगाली करते है। कभी-कभी कोई राहगीर निकल जाता है; इक्के और वसे वीच-वीच मे जाती हैं। सड़क पर पेडों की छाया में अकसर वंजारे भी आ पड़ते है। उनका चौका-चूल्हा सव सडक पर होता है। स्त्रियाँ जूँ वीनती है, वच्चों को दूध पिलाती हैं। कभी-कभी कर्कश स्वर मे वाक्-युद्ध छिड़

जाता है। तब सोई हुई यह माया की नगरी जाग उठती है। छोटी-सी भीड़ जुड जाती है। सब कोई पूछते हैं : "क्या हुआ ? क्या हुआ ?" पता लगता है, बाप-बेटे की लड़ाई है! सास-बहू की लड़ाई है। भीड़ छँटने लगती है। जीवन का क्रम पुन: अपनी सामान्य गति धारण करता है।

हम अपनी अन्ध-गुहा मे लेटे हुए सोने का उपक्रम करते हैं। खस पर हम पानी छिड़कते है, वायु का शीतल झोका आता है और पानी को सुखा जाता है। कमरा गर्म हो उठता है, हम फिर खस पर पानी डालते हैं। दिन भर हम खस पर पानी छिड़कते है, किन्तु गर्मी पर विजय नहीं पा सकते। शाम होते-होते हम काफी थक जाते है।

लैम्प जला कर हम पढ़ने की चेष्टा करते हैं, किन्तु बीच-बीच मे उनीदे हो जाते है। हम सोने का प्रयत्न करते है, किन्तु गर्मी हमे जगा देती है।

बाहर भीषण आग बरसती है। कोई हारा-थका मित्र दोपहर मे आ जाता है, तो काफी आराम अनुभव करता है। कहता है, कमरा ठंडा है! द्वार खुलते ही लगता है, जैसे किसी 'फर्नेस' का दरवाजा खुला हो। आँखें झप जाती है, मुँह और शरीर पर लू के कोडे लगते है!

बीच-बीच मे कोई-न-कोई आता ही रहता है। डाकिया पत्र लाता है; फलवाला आवाज़ लगाता है। गाय-बकरी बाड़ चरने आती है। उन्हें जगल-जलेबी बहुत पसंद है। कोई किसी का घर पूछने आता है। कोई नम्बर बढ़वाने ठीक दोपहरी मे आता है! भीषण गर्मी से व्याकुल होकर यद्यपि जीवन श्रान्त है, फिर भी हल्की-हल्की उसकी साँस चलती ही रहती है! अर्द्ध-सुप्त अवस्था मे जीवन की गति मन्द पड़ जाती है, किन्तु उसकी हरकत जारी रहती है।

शाम होती है। हम डरते-डरते गुफा से बाहर निकलते है। हवा अब भी गर्म है और वेग से चल रही है। धीमे-धीमे इसकी उष्णता कम हो रही है। क्रमशः अँधेरा बढ़ने लगता है, तारे निकल आते हैं। वन-

अग्नि-पुंज हमारे हृदय की समस्त संचित जल-राशि सोख रहे हैं। जब तक मनुष्य इन विध्वंसक ज्वालाओं का नियन्त्रण करके उन्हे निर्माण के कार्यों में नहीं लगाता, तब तक मेघराज का दग्ध हृदय शीतल नहीं होगा। तब तक पृथ्वी पर सुधा की वृष्टि नही होगी,. और उसके हृदय को अणु की ज्वालाएँ इसी प्रकार जलाती रहेंगी।"

मेघराज की सेनाएँ डमरू और मृदंग बजाती हुई, बड़े दल-बल के साथ आकाश मे जुड़ती है, और वनों और नगरो पर क्षण भर के लिए छायाओं की वृष्टि करती हुई यक्षराज की पुरी की ओर विजय-यात्रा करती है। श्राप-ग्रस्त यक्ष रामगिरि पर हाहाकार और क्रन्दन करता हुआ अवश उनकी ओर देखता रह जाता है।

२६

ग्रीष्म के दिन

दिन भर हम अपने कमरे के अन्दर पड़े रहते है। सब खिड़की और दरवाज़े हमने बद कर लिए है और रोशनदान आदि पर काले पर्दे डाल दिए हैं। कमरा अन्ध-गुहा सदृश हो जाता है। आदिम युग की मानवता के समान मानो गुफाओं मे हम रहते हैं। दिन भर हम बन्द रहते हैं और रात्रि मे बाहर निकलते है, जैसे वन-पशु शिकार की खोज में!

सुबह होते ही सूर्य का प्रखर ताप झुलसाने लगता है। हवा क्रमशः गर्म होने लगती है, फिर दोपहर भर हू-हू करके गरजती रहती है। एक अंधड़-सा दिन भर चलता है। बाहर मानो धधकती भट्टी में विश्व जलता है। पेड़ सुनसान,खड़े रहते हैं; उनके नीचे कुछ पशु बैठे जुगाली करते है। कभी-कभी कोई राहगीर निकल जाता है; इक्के और बसे बीच-बीच में जाती हैं। सड़क पर पेडो की छाया मे अक्सर बंजारे भी आ पड़ते हैं। उनका चौका-चूल्हा सब सडक पर होता है। स्त्रियाँ जूँ बीनती हैं, बच्चो को दूध पिलाती हैं। कभी-कभी कर्कश स्वर में वाक्-युद्ध छिड

किनारे वह वसा था और चारो ओर जंगलो से घिरा था। अकवर के दरवारी वीरसिंह ने इसे बसाया था और तव से यह शायद बिलकुल भी वदला न था। एक सड़क कुट-पिट कर पक्की वन गई थी, या वह भी शायद उसी प्राचीन मुगल काल की विभूति थी। गंगा के कारण कार्त्तिक मास में यहाँ असंख्य पुण्यार्थी आते थे और गंगा की रेती पर वडा भारी मेला जुडता था। वीरपुर नाज की भी एक वड़ी मंडी था। यहाँ अनेक सेठ लोग व्यापार की उथल-पुथल मे अपनी मोटी-मोटी तोदे लिए लगे रहते थे।

एक वड़ी सड़क को छोडकर वाकी यहाँ पतली, सकड़ी गलियाँ ही थी। ऐसी ही एक गली मे चन्द्रा का घर था। यहाँ मोरियो से निकलकर दुर्गन्धिपूर्ण पानी गली मे वहता था और यही बीच मे वैठकर बच्चे नित्य-कर्म से निवृत्त होते थे।

यहाँ के लोग ऊँचे ढग की धार्मिक वातें करते थे, किन्तु उनका जीवन कलह और द्वेप से परिपूर्ण था। दोपहर मे जव स्त्रियो को भोजन आदि से विश्राम मिलता, तव वे मोहल्ले मे लड़ने के लिए निकलती थी। जरा सी वात तूल पकड़ लेती और शव्दो के चीत्कार और कोलाहल से वातावरण गूंज उठता। अपने-अपने दरवाजो पर खड़ी होकर सभी स्त्रियाँ इस वाग्युद्ध में योगदान देती।

चन्द्रा के पिता दूर परदेश मे नौकरी के लिए गए थे। घर मे वह छोटे भाई के साथ पढाई के विचार से चाची के साथ छोड़ दी गई थी। परदेश मे वरावर पिता की वदली हुआ करती थी और वहाँ की पढाई भी हिन्दी मे न होकर अन्य भापाओ मे होती थी।

चन्द्रा घर का सभी काम करती थी। खाना वनाती थी, वर्त्तन माँजती थी, चाची की सेवा करती थी। फिर भी उसे निरन्तर अश्लील गालियाँ सुननी पड़ती थी और कठोर मार सहनी पड़ती थी। स्कूल का काम घर पर न कर सकने के कारण उसे स्कूल मे मार पडती थी।

जो हाल चन्द्रा का था, उससे वेहतर अवस्था तो गली के सभी वच्चो

पशु अपनी माँद से वाहर निकलते हैं। शिकार की खोज में वे इधर-उधर चक्कर काटते है। दिन भर का सोया और थका हुआ ससार जाग उठता है।

ग्रीष्म के भीपण दिन का अन्त हुआ। अव पल भर के लिए इस ज्वाला से मुक्ति मिलेगी। फिर कुछ ही घटे भर वाद दूसरा आग्नेय दिवस शुरू होगा। रात भर का जगा प्राणी अपनी अँधेरी गुफा में फिर शरण लेगा!

अनेक सूर्य अपनी ही आग मे झुलस कर वुझ रहे हैं। हमारा सूर्य भी अव वुझने वाला है, किन्तु फिर भी कितनी प्रचण्ड उसकी शक्ति है! कितनी भीपण उसकी ज्वाला है! इस ज्वाला से ही विश्व की गति परिचालित है। सृष्टि की शक्ति का भी यही रहस्य है। विना इस शक्ति के न फूल खिले, न अन्न उपजे, न जीवन हँस-खेल सके। फिर भी प्रति क्षण और प्रति पल सूर्य की इस ज्वाला मे कितनी शक्ति नष्ट होती रहती है! क्या इसका कोई उपयोग मानव नहीं कर सकता?

अणु के हृदय को वेध कर मनुष्य ने शक्ति का अखण्ड स्रोत खोज लिया है। सहस्र सूर्यों की शक्ति पर उसने विजय पा ली है। यदि इस अमोघ शक्ति से वह अपना ही अन्त न कर ले, तो अवश्य ही वह नए जीवन और संसार की सृष्टि करेगा।

सूर्य हमे अग्नि-कुण्ड मे डाल कर झुलसा रहा है। हम इस प्रज्वलित अग्नि को सृजन के कार्य मे लगा लेगे, सूर्य के हृदय की अग्नि को वाँध लेगे, उसके घोडो की रास खीच कर उन्हे वाछित दिशा मे मोड़ लेगें। तव यह ज्वाला हमे सता न सकेगी और शक्ति का यह अभिशाप वरदान वन जाएगा।

२७

शैशव

वीरपुर एक छोटा-सा पुराना शहर था। न यहाँ अभी पानी का नल आया था, न विजली। फिर भी यह एक सुप्रसिद्ध नगर था। गगा के

किनारे वह बसा था और चारो ओर जंगलो से घिरा था। अकबर के दरबारी वीरसिह ने इसे बसाया था और तब से यह शायद बिलकुल भी बदला न था। एक सडक कुट-पिट कर पक्की बन गई थी, या वह भी शायद उसी प्राचीन मुगल काल की विभूति थी। गगा के कारण कार्त्तिक मास मे यहाँ असंख्य पुण्यार्थी आते थे और गगा की रेती पर बडा भारी मेला जुडता था। वीरपुर नाज की भी एक वड़ी मडी था। यहाँ अनेक सेठ लोग व्यापार की उथल-पुथल मे अपनी मोटी-मोटी तोदे लिए लगे रहते थे।

एक बडी सडक को छोडकर बाकी यहाँ पतली, सकड़ी गलियाँ ही थी। ऐसी ही एक गली मे चन्द्रा का घर था। यहाँ मोरियो से निकलकर दुर्गन्धिपूर्ण पानी गली मे बहता था और यही बीच मे वैठकर बच्चे नित्य-कर्म से निवृत्त होते थे।

यहाँ के लोग ऊँचे ढग की धार्मिक बाते करते थे, किन्तु उनका जीवन कलह और द्वेप से परिपूर्ण था। दोपहर मे जव स्त्रियो को भोजन आदि से विश्राम मिलता, तब वे मोहल्ले मे लड़ने के लिए निकलती थी। जरा सी वात तूल पकड़ लेती और शव्दो के चीत्कार और कोलाहल से वातावरण गूँज उठता। अपने-अपने दरवाज़ों पर खड़ी होकर सभी स्त्रियाँ इस वाग्युद्ध मे योगदान देती।

चन्द्रा के पिता दूर परदेश मे नौकरी के लिए गए थे। घर मे वह छोटे भाई के साथ पढाई के विचार से चाची के साथ छोड़ दी गई थी। परदेश मे बरावर पिता की बदली हुआ करती थी और वहाँ की पढ़ाई भी हिन्दी मे न होकर अन्य भापाओ मे होती थी।

चन्द्रा घर का सभी काम करती थी। खाना बनाती थी, वर्त्तन माँजती थी, चाची की सेवा करती थी। फिर भी उसे निरन्तर अश्लील गालियाँ सुननी पड़ती थी और कठोर मार सहनी पडती थी। स्कूल का काम घर पर न कर सकने के कारण उसे स्कूल मे मार पडती थी।

जो हाल चन्द्रा का था, उससे वेहतर अवस्था तो गली के सभी वच्चों

की थी। उनके माँ-बाप पास थे और कुछ-न-कुछ स्नेह उनके पात्रों मे अवश्य पड़ता था, किन्तु चन्द्रा को लगता था कि उसका पात्र सर्वथा ही रीता था।

उसके घर के सामने दो-तीन बच्चे बिना माँ के थे। उनकी माँ हाल मे ही किसी बीमारी से मर गई थी। सब लोग उन बच्चो पर तरस खाते थे। पिता उनके लिए सुबह ही खाना बनाकर रख जाता था, उसे ही वे दिन मे खाते थे। किन्तु उन्हे बात-बात पर गाली और मार तो न सहनी पड़ती थी।

चन्द्रा की चाची विधवा थी। विवाह के कुछ ही काल बाद उनके पति की मृत्यु हो गई थी। तभी से उनके मन की सम्पूर्ण ममता विष में परिणित हो गई थी। उनके मन मे भारी अवसाद और क्लेश की सरिता जम कर पत्थर के समान कठोर हो गई थी। वह कभी-कभी अपने पति के पत्रो को एकान्त मे बैठकर पढ़ती थी और तब उनकी आँखो से आँसू निकलते रहते थे। इस रहस्य को समझने के लिए चन्द्रा और उसके भाई ने भी चोरी से इन पत्रों को पढ़ा था, किन्तु वे पत्र उनके लिए केवल कौतूहल का विषय बने रहे थे।

चन्द्रा के भाई की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक सुखप्रद थी। वह दिन भर खेलता था और घर जल्दी न लौटने पर ही मार खाता था। स्कूल वह सुबह ही निकल जाता था और वहाँ पहुँच कर कबड्डी अथवा गुल्ली-डंडा खेलता था। शाम को भी वह देर करके ही लौटता था। रात को दोनो भाई-बहिन मिल कर चाची के सिर और पैर दबाते थे।

जब चाची दोपहर को मोहल्ले की स्त्रियो से गप करने के लिए जाती और घर मे छुट्टी के दिन दोनो भाई-बहिन अकेले होते, तब वे इस नादिर-शाही हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह के स्वप्न देखते। वे सोचते कि छत के ऊपर से घर के आँगन मे कूद कर मर जायँ, तब हमारे माँ-बाप समझेंगे कि हमको क्या सहना पडा था! किन्तु अनेक योजना बनाकर भी कुछ करने का साहस न होता। चन्दा भाई से कहती · "पहले तू कूद। फिर

मैं भी जरूर कूदूंगी।" भाई कहता : "पहले तू कूद ! फिर मुझे कूदना ही पड़ेगा।" कूदने के विचार की अगम खाई तक पहुँच कर ही दोनो रुक जाते और अन्तिम पग बढाने का उनका साहस न होता।

चन्द्रा के भाई को तो बाहरी ससार की वायु सूँघने को मिल भी जाती थी, किन्तु चन्द्रा के लिए घर ही बन्दी-गृह था। निरन्तर उसको मार पड़ती थी, किन्तु जितनी ही वह पिटती थी, उतनी ही ढीठ होती चली जा रही थी। बर्त्तन माँजते समय चाची उसकी पीठ पर लोटा मार कर कहती, "ससुरी ! तुझपै ये बर्त्तन भी नही मँजते साफ ! किसी मेहतर से तेरा व्याह रचाऊँगी !"

चन्द्रा वेदना से तड़प कर रह जाती, किन्तु कुछ न कहती। जितना ही अधिक वह पिटती, उतना ही वह मौन साध लेती। चाची चाहती थी कि वह गिड़गिड़ाये, क्षमा माँगे और तब चाची उसे माफ कर दे। किन्तु यही सतोप चाची को न मिलता।

इस मोहल्ले की परम्परा भी इसी क्रूरता की थी। यहाँ सास बहुओं को यत्रणा देती, माँ बच्चो को निरन्तर मारती और पति अपनी पत्नियो को लात-घूसो से मारते रहते थे। मोहल्ले मे कोहराम और चीत्कार का स्वर अविराम गूंजता था। लोग और कुछ जानते भी तो न थे। वे अशिक्षित थे, इसी अन्धकार-भरी परम्परा मे पले थे। जो उन्होंने बड़ों से सीखा था, उसे ही दोहराते थे।

पड़ोस मे एक मास्टर का परिवार आया था। उनका बड़ा लड़का कही दूर नौकरी पर था और पुत्र-वधू उनके साथ रहती थी। घर का सब काम यही लड़की करती थी। वह पिटती जाती थी, रोती थी और काम करती जाती थी। ऐसे क्रूर बर्बर व्यक्ति इस मोहल्ले मे भी इसके पूर्व न देखे गए थे। कहते है कि सास और श्वसुर दोनों ही मिलकर उस निरीह लड़की को निरन्तर पीटते थे। बर्तन वह माँजती थी, चौका वह लगाती थी, खाना वह पकाती थी, कपड़े वह धोती थी; फिर भी इस सब के पुरस्कार-स्वरूप मार ही उसके भाग्य मे लिखी थी। उसे वे लोग लकडियो

से मारते थे, जलते चैलो से उसके अंग दाग देते थे, उसे नंगी करके उससे घर का काम करवाते थे।

एक वारचन्द्रा और उसका भाई मास्टर साहव के यहाँ किसी कार्यवश गए। अन्दर दालान मे मास्टरनी जी खाट पर वैठी थी और वहू एंकदम निर्वस्त्र चौका लगा रही थी और सुवक रही थी। उसका सुवकना सुनकर वच्चो का ध्यान उधर गया। उन्होने मास्टरनी जी से पूछा :

"चाचीजी, यह भाभी कपड़े क्यों नही पहने है? और यह रोती क्यो है?"

मास्टरनी जी ने कहा : "यह काम ठीक नही करती, इसीलिए हमने इसे सज़ा दी है।" और उठकर एक लात उन्होने वहू की पीठ मे मारी। कड़ककर वोली :

"खवरदार! जो जरा सी साँस भी मुँह से निकाली। नही तो तुझे घर के वाहर निकाल कर खडी कर दूंगी नगी ही।"

लात की मार से वहू गिर पड़ी थी। वह गिरी की गिरी ही रह गई। उसका साँस वीच मे रहा, न ऊपर खीच सकी, न नीचे आ सका।

चन्द्रा और उसका भाई घर लौट आए। किन्तु उनके मन मे इस विपय मे कौतूहल वना ही रहा। मास्टर साहव की वदली हो गई और वह किसी और जगह चले गए। वाद मे सुना गया कि वह वहू मर गई। मार से उसकी कमर टूट गई थी और वह किसी योग्य न रह गई थी। कितना भीपण उसका जीवन रहा था और उससे भी भीपण उसकी मृत्यु भी होगी।

इसी वातावरण मे चन्द्रा की चाची भी अपना जीवन विता रही थी। उसके मन मे भी ममता रही होगी, किन्तु कठोर पत्थरो के अन्दर-ही-अन्दर वहती हुई वह अन्त सलिला रही होगी।

ऐसी वात नही कि इस गली मे सभी पापाण-हृदय थे। चन्द्रा और उसके भाई के प्रति उनकी चाची के दुर्व्यवहार से अनेक पड़ोसी असतुष्ट थे। सामने के ही घर मे दूर के रिश्ते की उनकी एक मौसी थी। वह वच्चो

को दुलारती थी और रोती थी। कहती थी : "कैसे इनके माँ-बाप के मन है कि फूल से बच्चो को कसाइन के पास छोड दिया।" उन्होने चाची से भी कुछ कहने का प्रयत्न किया था किन्तु ऐसी कठोर डाँट पड़ी कि वे बेचारी भाग खड़ी हुईं। चाची ने गालियो और अपशब्दो की वह बौछार की कि गृहिणी के रोगटे खड़े हो गए।

गली के कोने मे एक अधेड अवस्था के दम्पति रहते थे। इनके अनेक बच्चे हुए थे, किन्तु वे जीवित न रह पाते थे। केवल एक लड़की बची थी। वह भी विधवा हो गई थी और ससुराल मे ही रहती थी। इन्हे सब लोग बौहरेजी कहते थे। इनके मन मे अखड ममता का स्रोत बहता था और यहाँ भी बच्चो को स्नेह और दुलार मिलता था।

घर मे भाई-बहिन बैठ कर गुड़ियो से खेला करते थे, उनकी शादी रचाते थे, सेनाओ मे सघर्ष होते थे, प्रेम और विछोह की गाथाएँ होती थी। वे दर्जियो के यहाँ से कतरन बटोर लाते थे और इन्ही से चुन-चुन कर गुड़ियो के कपडे बनाते थे। वे देवी-देवताओं की पूजा भी करते थे और उनका विश्वास था कि देवता उन्हे अभय का वरदान देंगे। चन्द्रा ने एक दिन अपने भाई से कहा था : "रात मे मुझे हनुमान जी ने दर्शन दिए और कहा : 'शीघ्र ही तुम्हारे सब दु.ख दूर होगे और तुम्हारे माँ-बाप आकर तुम्हे अपने साथ ले जायँगे।"

इससे उनके मन मे बड़ी आशा उदय हुई थी और वे प्रसन्न रहने लगे थे। चाची के प्रति भी उनका एक अजब—सा रुख हो गया, जिसका तात्पर्य था · "कुछ दिन और सता लो। अब तुम्हारे शासन का अन्त निकट ही है।"

चाची बच्चो की इस मुद्रा से काफी चकित हुई थी। वह उन्हे खूब डराती थी : "जेठजी से चूँ भी की, तो खाल उधेड़ कर रख दूंगी! भुर्ता कर दूंगी।"

उस रात चाची ने बच्चो को ताश खेलने के लिए बुलाया। घर का सब काम पूरा हो गया था। बच्चे सोने की तैयारी में थे। चन्द्रा का भाई

उठकर आ गया, किन्तु चन्द्रा न उठी। चाची ने गालियाँ दीं, दाँत किट-किटाए, किन्तु चन्द्रा टस से मस न हुई। तब चाची क्रोध से हुँकारती हुई उठी : "आज मैं तुझे छटी का दूध तक याद दिलाऊँगी! तूने समझा क्या है? देखूँ, तेरी कौन माँ-मौसी तुझे बचाने आती है।"

और एक वेंत उठाकर उन्होने चन्द्रा के ऊपर सड़काना शुरू किया। चन्द्रा पिटती रही और सिसकती रही, पर अपनी जगह से न हिली। चाची वेंत मार कर कहती, "उठ!", पर चन्द्रा हिलती भी न थी। वेंत पुराना था। आखिर एक क्रूर वार से वह टूट गया। तव चाची भी सहम कर रुक गई और चन्द्रा भी मार मे इस विराम से चकित होकर एक क्षण को चुप हो गई।

चन्द्रा के पास एक लोहे की आलमारी रखी थी। चाची ने कहा : "वेंत आल्मारी मे लग कर टूट गया।"

चन्द्रा चीख कर बोली "मेरे ही लग कर टूटा है।" चन्द्रा के भाई को अलग ले जाकर चाची फुसलाने लगी। "तुझसे अगर जेठ जी या जेठानी जी कुछ पूछें कि क्या हुआ था, तो यही कहना कि वेत आलमारी मे लग कर टूट गया था। नही तो उनके जाने के बाद तेरी हड्डी-पसली तोड़ दूंगी।"

चाची के मन मे अब यही एक डर था कि चन्द्रा के माँ-बाप के आने पर उसके कठोर शासन का रहस्य न खुल जाए।

इस विषैले वातावरण से बचने के लिए चन्द्रा का भाई अधिक-से-अधिक देर तक स्कूल में रहता था। वह कहता "आज मैच है। उसमें सभी को रहना है। जो गैर-हाजिर होगा, उस पर जुर्माना होगा।" या ऐसे ही कोई और बहाने वह बनाता। स्कूल में वह छोटे लडको के साथ क्रिकेट खेलता। उसके पिता ने उसके लिए अपने बढ़ई से छै विकिट और एक बल्ला बनवा दिया था। अन्य लड़के गेंद ले आते थे। स्कूल के पास मैदानो मे उनका खेल जमता था। छुट्टी के दिन तो वे दिन भर खेलते थे। कभी-कभी वे गंगा के कछार मे कबड्डी खेलते थे, ककड़ी-खरबूजे

खेतो मे से चुरा कर खाते थे और कार्त्तिकी के मेले पर खूब सैर करते और सीटी-पीपनी आदि खरीद कर प्रसन्न होते थे।

स्कूल की नई इमारत का उद्घाटन था। वाहर से बहुत से लोग आ रहे थे। स्कूल झडियो से सजाया गया था। चन्द्रा के भाई को एक अँग्रेजी "डायलॉग" मे भाग लेना था। उसी दिन वीरपुर से कोई दस मील वाहर जगलों में अमन्तका देवी का मेला था। सुवह से ही वैलगाडियो पर बैठ-वैठ कर मोहल्ले-टोले की स्त्रियाँ गाती हुई चल दी थी। लडके को स्कूल जाना था। पूरियाँ रात को ही वनाकर रख दी गई थी। तडके ही उठ कर खाना खाकर वह स्कूल चला गया। वहाँ पता लगा कि जलसा तो शाम को होगा। कुछ मित्रों ने कहा : "चलो, मेला देख आएँ।"

वे सव पैदल ही चल दिए। वे बहुत तेजी से चल रहे थे। मार्ग में उन्होंने गगा का पानी पिया, हाथ-मुँह धोए और रेती ही रेती मदिर की ओर चल दिए। वहाँ भारी भीड/लगी थी। एक ऊँचे टीले पर पेडो के नीचे वैलगाड़ियाँ खुली थी। सब लोग खाना खा रहे थे। पीपनी आदि विक रही थी। मेहतरानियाँ मुर्गे लिए गृहस्थो के पास चक्कर काट रही थी। वह कहती थी : "वच्चे से देवी उतरवा लो माँ।" मुर्गे को वच्चे के सामने वे ऊपर-नीचे आरती की तरह घूमाती और पैसा लेकर कही और वढ़ जाती।

मदिर वहुत पुराना और टूटा-फूटा-सा था। यहाँ दर्शनार्थियो की वड़ी भीड़ थी। सभी का विश्वास था कि देवी के प्रताप से उन्हे प्रसन्न करके शीतला के कोप से वचा जा सकता है। उन्हे सव लोग 'वड़ी माता' कहते थे। किन्तु वच्चे तो मेले के लोभ से ही वर्प भर इस उत्सव की प्रतीक्षा किया करते थे।

शाम को वे जल्दी-जल्दी लौटे, किन्तु आते समय काफी थक चुके थे। अतएव वैलगाडियो की शरण ली। जब शहर के अन्दर घुसे, तो वत्तियाँ जल चुकी थी। स्कूल का उद्घाटन समारोह अव तक कभी का समाप्त हो चुका होगा।

एक दिन चन्द्रा का भाई स्कूल जल्दी ही पहुँच कर खेल-कूद में मग्न था। किसी ने कहा : "अभी-अभी इधर से तुम्हारे बाबूजी घोड़ागाड़ी मे गए है। तुम्हें बुला गए हैं! तुम छुट्टी लेकर घर जाओ।"

वह आश्चर्य मे पड़ गया। बिना खबर के वे कैसे आ गए? किन्तु फिर भी वह प्रसन्न होकर छुट्टी लेकर जल्दी-जल्दी घर पहुँचा। वहाँ सचमुच उसके माँ-बाप मौजूद थे। चन्द्रा माँ की गोद मे पड़ी सुबक-सुबक-कर रो रही थी और वे उसकी पीठ सहला रही थी। उसने पूछा :

"बाबू जी, तुमने खत क्यो नही डाला कि आ रहे हो? मुझे स्कूल से छुट्टी न मिलती, तो?"

वे बोले : "बिना खबर दिए तुम्हारा हाल-चाल देखने आए है। हमे पता लगा था कि तुम लोग बड़ी तकलीफ मे हो।"

तब न जाने क्यों वह रोने लगा था। और एक बडे आश्चर्य की बात यह हुई कि चन्द्रा की चाची भी फूट-फूट कर रोने लगी।

२८

गगा का तट

उस पुराने शहर के चरणों को धोती हुई गगा आगे बढ़ती है। पहले वह उस विशाल मैदान से गुजरती थी, जहाँ अब रेती में रामलीला होती है, किन्तु बाद में उसकी धारा पीछे हट गई थी। दूर वन-प्रदेश मे वह मन्द, श्लथ चरणो से आती है, और अनेक ऊँचे-ऊँचे मन्दिरों, घाटो और भवनो के नीचे से गम्भीर स्वर करती हुई निकलती है। इस शहर में उसके अनेक घाट है। ऊँची-ऊँची सीढियो से हम उतरते हैं, और उतरते ही गगा के शीतल, पावन जल मे पैर भिगोते है। आगे घाट टूट गए है। यहाँ धारा की गति तेज है, और उसने अपनी तलवार-सी धार से प्रस्तर के बुर्ज भी काटकर गिरा दिए है। फिर धारा की गति कुछ मन्द पड़ती है इन घाटों पर सबसे अधिक शोर रहता है। यहाँ गगा ने तट छोड़ा है

और स्नान करनेवालों की भीड यहाँ निरन्तर लगी रहती है। इसी प्रकार गंगा हमारे नगर के किनारे-किनारे दूर तक गई है। लाला बाबुओ की कोठी, तहसीली स्कूल, खुर्जावालो की धर्मशाला, आदि को छूती हुई गगा आगे वढ गई है।

हिमालय से समुद्र तक गंगा की अखण्ड यात्रा भारतीय इतिहास की ही अद्भुत यात्रा है। अनेक सस्कृतियाँ गगा की गोद मे पली है। और नष्ट हुई है। प्राचीन काल मे इसी पवित्र नदी के तट पर भारतीय सस्कृति का प्रौढतम रूप विकसित हुआ था। इसी के तट पर अनेक साम्राज्यो की राजधानी, पाटलिपुत्र, वसा था। यहाँ मौर्य, गुप्त, शुग, शातवाहन आदि अनेक वंशो की पद-चाप गगा ने सुनी थी। गगा के तट पर ही प्रयाग और काशी के समान प्राचीन नगर वसे है, जिनके राजपथो पर खडे होकर हम आज भी प्राचीन इतिहास की प्रतिध्वनियाँ सुन सकते है।

पहाडो से घोर रव करती नीचे उतरती हुई गंगा, लक्ष्मणझूला और स्वर्गाश्रम जहाँ निर्मल, स्वच्छ, हिम-शीत जल में यात्री स्नान करते है, हृपीकेश, जहाँ ऊँचे कगारो से उतर कर यात्री आता है और तट पर पालतू-सीं, रग-बिरंगी मछलियाँ उसके पैरो मे टकराती है, हर-की-पैंड़ी और नील-गगा जहाँ जल शीतल तो अवश्य है किन्तु अगणित मोक्ष के आकांक्षियो के पापो को धोकर मलिन पड़ चुका है, फिर कनखल जहाँ से गगा अपनी अविराम लम्वी यात्रा पर अग्रसर होती है। फिर इस पुराने नगर के चरण धोती हुई वह प्रयाग और काशी की ओर बढ़ गई है। प्रयाग मे वह यमुना से गले मिलती है। अद्भुत दृश्य इस सगम पर गगा ने देखे है। महाकुम्भ, जब सैकड़ो के प्राण होम हुए, गाँधी का अस्थि-प्रवाह, जव मानो सम्पूर्ण देश की जनता यहाँ उमड़ पड़ी थी; अकवर का किला, वाँध, अक्षयबट, अशोक स्तम्भ सभी गगा अपने प्रवाह-मार्ग मे यहाँ देखती है। काशी, जहाँ "भार-शिव" नागों ने दस अश्वमेघ किए थे; जहाँ हर शाम नागरिको की भीड़ें घाटों पर जुडती हैं, स्नान करती है, भंग घोटती है, वजरो और नावों पर सैर के लिए
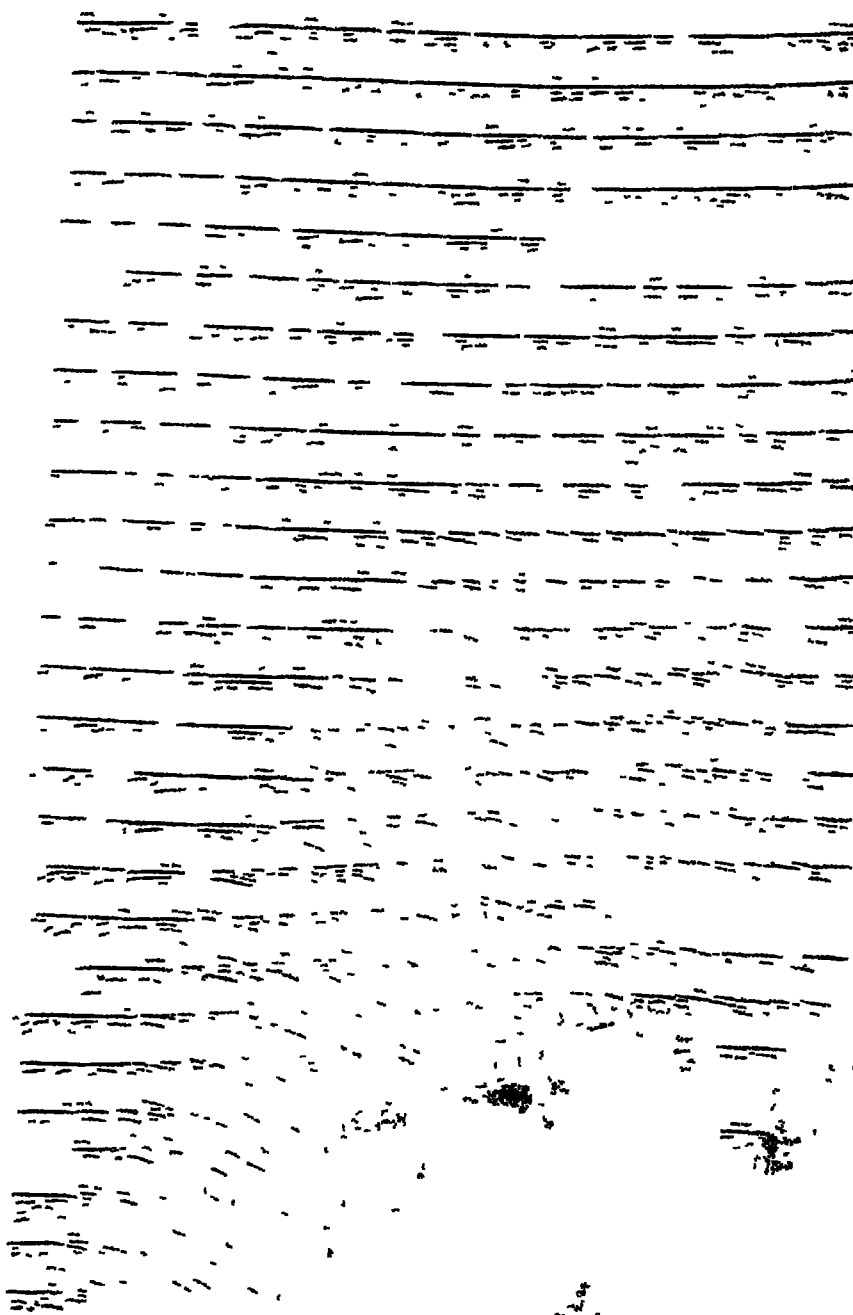
ना और नुकीला मुँह धार के ऊपर उठता है, वातावरण भय-मिश्रित कौतूहल से स्पंदित हो जाता है। कितनी बार सुना गया है कि मगर यहाँ से किसी स्त्री अथवा बच्चे को घसीट ले गया था। स्नान करने वाले जल्दी से वाहर निकल आते है और कपडे वदलते है।

काल की भॉति ही अविरल प्रवाह मानो गगा की धारा का है। कभी यह रुकता नही। मन्द, धीर गति से यह सदा आगे वढती रहती है। भारत के इतिहास की ही यह अखण्ड यात्रा है। राष्ट्र के अविराम वहते जीवन की यह प्रतीक है। जल मे भॅवर बनते है, तट से टकराकर धारा तरगित होती है, कही-कही ऐसे स्थल भी हैं, जहॉ प्रवाह मानो रुक गया है, किन्तु फिर भी गज की सी मत्त चाल से भारतीय जीवन और इतिहास की प्रतीक यह गगा की धारा निश्चित गति से, धीर-गम्भीर डगो से आगे वढी ही जाती है। अनेक जनपदो और राज्यो, शताब्दियो और सस्कृतियो के उत्थान और पतन देखती हुई यह महासिन्धु से मिलन की आकाक्षा मे आगे वढती रहती है। इस गगा ने सम्पूर्ण उत्तर भारत का जीवन समृद्ध किया है, धन-धान्य से उसे परिपूर्ण किया है। भारतीय जीवन की प्रत्येक श्वास मे गगा का प्रवाह है।

निकलती है। धनुष के रूप में यहाँ गगा का प्रवाह है, तट पर अनेक ऊँचे प्रासाद और मन्दिरों के शिखर आकाश को वेधते हैं और दूर से ही औरंगजेब की मस्जिद के मीनार आकाश पर चित्र की भाँति खिंचे से दीखते हैं; धीरे-धीरे गंगा इन प्रासादों को काट रही है, और औरगजेब की मस्जिद का भी एक मीनार उदरस्थ कर चुकी है।

अनेक मेले गगा के तट पर होते हैं। प्रयाग मे माघ मेला अथवा कुम्भ वडी धूमधाम से होता है। हमारे शहर मे कार्त्तिक के अवसर पर एक विराट मेला लगता है। दूर-दूर से स्नान के लिए अधीर यात्रियो की भीड़े पैदल अथवा वैलगाडियो मे गीत गाती हुई आती हैं और धर्म-शालाओ मे अथवा सड़को के किनारे ही पड रहती है। अनेक दूकानें दूर-दूर से आती है और किसी वडे महोत्सव का वातावरण शहर पर छा जाता है। गगा की वालू पर भी मीलो दूर तक मेला लगता है। पीपनी, कागज़ के साँप, पैसे-पैसे की मीटियाँ, चरख, सत्तर मन की धोविन, आदि खेल-तमाशो मे वच्चे रमे रहते है। सस्ती कितावे सभी कही विकती है, वारहमासा, गोपीचन्द, भक्त प्रहलाद, सिंहासन वत्तीसी, वैताल पच्चीसी, आदि। चाट और मिठाई की दूकानों पर अनवरत भीड रहती है। और लोग निरन्तर चलते रहते हैं, मानो किसी को पल भर विश्राम का अवकाश नही। स्कूल के लड़को का मन मेले मे रमा रहता है और वड़ी कठिनाई से ही वे मन मारकर क्लास मे वैठ पाते है।

पुण्यार्थी लम्वे-लम्वे डगो से गगा की ओर वढ़ते है, उल्लास और उत्साह से स्नान करते है, मटमैले पानी पर फूल और वताशे चढ़ाते हैं; स्नान करके लौटते हुए तट के मन्दिरो की घण्टियाँ वजाते हैं, मानो सव पापो से मुक्ति पाकर हल्के मन से घर आते हैं।

नित्य-प्रति सुवह-शाम भक्तगण गगा के तट पर एकत्रित होते हैं। सुवह वे स्नान करते है, शाम को मन्द-मन्द वहती हुई कोमल, शीतल वायु के स्पर्श से सुख पाते हुए वे सन्ध्या करते है, मछलियों को आटे की छोटी-छोटी गोलियाँ चुगाते है। दूर पर किसी घड़ियाल का आरे-सा

पैना और नुकीला मुँह धार के ऊपर उठता है, वातावरण भय-मिश्रित कौतूहल से स्पदित हो जाता है। कितनी वार सुना गया है कि मगर यहाँ से किसी स्त्री अथवा वच्चे को घसीट ले गया था। स्नान करने वाले जल्दी से बाहर निकल आते है और कपडे वदलते है।

काल की ााँति ही अविरल प्रवाह मानो गगा की धारा का है। कभी यह रुकता नही। मन्द, धीर गति से यह सदा आगे वढती रहती है। भारत के इतिहास की ही यह अखण्ड यात्रा है। राष्ट्र के अविराम वहते जीवन की यह प्रतीक है। जल मे भँवर वनते है, तट से टकराकर धारा तरगित होती है, कही-कही ऐसे स्थल भी है, जहाँ प्रवाह मानो रुक गया है, किन्तु फिर भी गज की सी मत्त चाल से भारतीय जीवन और इतिहास की प्रतीक यह गगा की धारा निश्चित गति से, धीर-गम्भीर डगो से आगे वढी ही जाती है। अनेक जनपदो और राज्यो, शताब्दियो और सस्कृतियो के उत्थान और पतन देखती हुई यह महासिन्धु से मिलन की आकाक्षा मे आगे वढती रहती है। इस गगा ने सम्पूर्ण उत्तर भारत का जीवन समृद्ध किया है, धन-धान्य से उसे परिपूर्ण किया है। भारतीय जीवन की प्रत्येक श्वास में गगा का प्रवाह है।

पुरानी स्मृतियाँ

(१)

मैं बड़े यत्न से अपने लम्बे, पुराने, लिपटे हुए स्मृति-पट को खोलकर देखता हूँ। उस पर अकित सुस्पष्ट, दृढ़, गहरी रेखाएँ मेरी आँखो पर छा जाती है। पुराने घर, पेड़, नदी, खेल, वन, साथी नए होकर जी उठते है। गंगा की गहरी, गम्भीर धार, नावो का पुल, शव उठाकर भागते मगर, कछुओ के छोटे-छोटे बच्चे, विस्मय-पुलक संसार को देखते हुए; झाऊ के वन, कछार, ककड़ी और खरबूजो के खेत, पक्के घाट, तिलक-छापा लगाये नर-नारी। इमली के भारी-भारी पेड़, किलकते बन्दर और लगूर, हलवाई और बिसाती, पसारी और बजाज, पुराने टूटे घर, खँडहर, देवी का मन्दिर। सुख-दुख भरी अनेक स्मृतियाँ जाग उठती हैं। एक नष्टप्राय टूटती सामाजिक परम्परा पल भर के लिए मन मे मोह पैदा करती है। उसका दयनीय स्वरूप मन मे क्षणिक पछतावा पैदा कर देता है। बड़े विशाल, आधुनिक नगर के क्षुब्ध तरगित जीवन और हलचल मे वह स्मृतियाँ फिर धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।

(२)

वह छोटा-सा कस्बा रेल-पथ से दूर अन्तर्देश मे गगा के किनारे बसा है। गगा के सहारे ही उसके प्राण स्पन्दित है। ऊँची-ऊँची सीढियाँ पार कर शहर के घर और रास्तो तक हम पहुँचते है और तब यह भूल जाते है कि पग भर की दूरी पर नदी है, किन्तु नदी की लहरो से खेलकर आती हवा और रात के सुनसान अन्धकार मे बड़ी-बड़ी ढाहे कट कर धड़ाम-धड़ाम शब्द कर नदी मे गिरती हुई हमे ,बरबस उसके अस्तित्व

का ध्यान दिलाती है। बड़े-बड़े जटा-जूट धारी पाखण्डी यहाँ इकट्ठे होते हैं और जीवन से विरक्त उदासीन प्राणी, जो चरम सत्य की भूलभुलैयाँ मे फँसे है। कतकी के मेले पर यहाँ अगाध जनराशि उमड़ पड़ती है और पैर सीधा नही पड़ता। उस भारी उत्सव पर कस्बा अपनी लम्बी वर्ष भर की निद्रा से जाग पड़ता है। शिकारी शिकार की तलाश मे, पण्डे धन की, वैरागी मोक्ष की और साधारण यात्री पाप की गठरी धोकर वहाने की लालसा मे जुड़ते है। दो दिन बाद मैदान उजड़ जाता है। और तमाशे की लालच मे फँसे बालक निराश होकर बैठ रहते हैं।

कस्बे की सड़को के ईंट-पत्थर आते-जाते यात्रियो के पदाघात से घिस चुके है। सुबह-शाम वे आटा लेकर नदी-तट जाते है और बन्दरों तथा मछलियो को चुगा कर लौटते है। बन्दर आदमियो से इतने हिल गये है कि हाथ से खाना छीनकर भागते है।

नदी के किनारे लोग इकट्ठे होकर स्नान करते है, तूंबे बाँधकर तैरते हैं, नदी के बीच पड़ी रेती पर कबड्डी खेलते हैं। ककड़ी-खरबूजे खाते है और चीख-पुकार मचाते है। अन्त मे नहाकर लौटते समय शिव जी पर बेल-पत्र चढ़ाकर परलोक-जीवन के प्रति निश्चिन्त हो जाते है। नित्य-प्रति का ढर्रा इस नगर मे चलता है। गर्मी मे जल के अन्दर और जाड़े में रेती पर घण्टो भक्त-जन जप-तप मे बिताते है।

... ...

नगर मे इमली का एक बडा भारी पेड़ है। यह मानो पाताल फोड निकला हो, और उसके आकाश-चुम्बी छत्र की छाया में दो-तीन मुहल्लो के रहने वाले आराम करते है। पेड़ के नीचे हलवाइयो की दूकान हैं और यह मिठाइयाँ पास-पड़ोस के गाँव-कस्बो मे प्रसिद्ध हैं। लड़के खेल-कूद के समय बिना सोचे यह पक्तियाँ गा उठते है :—

'पूरन हलवाई,
तेरी तेल की मिठाई,
तेरे गोबर के बताशे

पुरानी स्मृतियाँ

(१)

मैं वडे यत्न से अपने लम्वे, पुराने, लिपटे हुए स्मृति-पट को खोलकर देखता हूँ। उस पर अंकित सुस्पष्ट, दृढ, गहरी रेखाएँ मेरी आँखो पर छा जाती है। पुराने घर, पेड़, नदी, खेल, वन, साथी नए होकर जी उठते है। गंगा की गहरी, गम्भीर धार, नावो का पुल, शव उठाकर भागते मगर, कछुओं के छोटे-छोटे वच्चे, विस्मय-पुलक संसार को देखते हुए, झाऊ के वन, कछार, ककड़ी और खरबूजो के खेत, पक्के घाट, तिलक-छापा लगाये नर-नारी। इमली के भारी-भारी पेड़, किलकते वन्दर और लगूर, हलवाई और विसाती, पसारी और बजाज, पुराने टूटे घर, खँडहर, देवी का मन्दिर। सुख-दुख भरी अनेक स्मृतियाँ जाग उठती हैं। एक नष्टप्राय टूटती सामाजिक परम्परा पल भर के लिए मन मे मोह पैदा करती है। उसका दयनीय स्वरूप मन मे क्षणिक पछतावा पैदा कर देता है। वड़े विशाल, आधुनिक नगर के क्षुव्ध तरगित जीवन और हलचल में वह स्मृतियाँ फिर धीरे-धीरे विलीन हो जाती हैं।

(२)

वह छोटा-सा कस्वा रेल-पथ से दूर अन्तर्देश मे गगा के किनारे बसा है। गगा के सहारे ही उसके प्राण स्पन्दित हैं। ऊँची-ऊँची सीढियाँ पार कर शहर के घर और रास्तो तक हम पहुँचते हैं और तब यह भूल जाते है कि पग भर की दूरी पर नदी है, किन्तु नदी की लहरो से खेलकर आती हवा और रात के सुनसान अन्धकार मे वड़ी-वड़ी ढाहे कट कर धड़ाम-धड़ाम शब्द कर नदी मे गिरती हुई हमे वरवस उसके अस्तित्व

का ध्यान दिलाती हैं। बड़े-बड़े जटा-जूट धारी पाखण्डी यहाँ इकट्ठे होते है और जीवन से विरक्त उदासीन प्राणी, जो चरम सत्य की भूलभुलैयाँ मे फँसे है। कतकी के मेले पर यहाँ अगाध जनराशि उमड़ पड़ती है और पैर सीधा नही पडता। उस भारी उत्सव पर कस्वा अपनी लम्वी वर्ष भर की निद्रा से जाग पडता है। शिकारी शिकार की तलाश मे, पण्डे धन की, वैरागी मोक्ष की और साधारण यात्री पाप की गठरी धोकर वहाने की लालसा मे जुडते है। दो दिन वाद मैदान उजड़ जाता है। और तमाशे की लालच मे फँसे वालक निराश होकर वैठ रहते है।

कस्वे की सड़को के ईंट-पत्थर आते-जाते यात्रियो के पदाघात से घिस चुके है। सुबह-शाम वे आटा लेकर नदी-तट जाते है और बन्दरों तथा मछलियो को चुगा कर लौटते है। बन्दर आदमियो से इतने हिल गये है कि हाथ से खाना छीनकर भागते है।

नदी के किनारे लोग इकट्ठे होकर स्नान करते हैं, तूंवे बाँधकर तैरते है, नदी के वीच पडी रेती पर कवड्डी खेलते है। ककड़ी-खरवूजे खाते हैं और चीख-पुकार मचाते है। अन्त मे नहाकर लौटते समय शिव जी पर वेल-पत्र चढाकर परलोक-जीवन के प्रति निश्चिन्त हो जाते हैं। नित्य-प्रति का ढर्रा इस नगर मे चलता है। गर्मी मे जल के अन्दर और जाड़े मे रेती पर घण्टो भक्त-जन जप-तप मे विताते है।

... .

नगर मे इमली का एक वडा भारी पेड़ है। यह मानो पाताल फोड निकला हो, और उसके आकाश-चुम्वी छत्र की छाया मे दो-तीन मुहल्लो के रहने वाले आराम करते है। पेड़ के नीचे हलवाइयो की दूकान है और यह मिठाइयाँ पास-पड़ोस के गाँव-कस्वो मे प्रसिद्ध हैं। लड़के खेल-कूद के समय विना सोचे यह पक्तियाँ गा उठते है :—

'पूरन हलवाई,
तेरी तेल की मिठाई,
तेरे गोवर के वताशे,

तेरी बुढ़िया करे तमाशे।'

यदि पूरन सुन लेता है, तो लाठी लेकर उन्हें मारने दौड़ता है और तब वह मक्खियो-सी भीड़ पल भर में भ्न-भ्न कर वायु में तितर-वितर हो जाती है।

इसी इमली बाजार मे पल कर अनेक लड़के बड़े हुए। इमलियाँ खाईं, बन्दरो पर ढेले फेके और कबड्डी, गुल्ली-डडा और क्रिकेट तक इसकी विशाल छाया मे खेले। गुड की रेवड़ी बनानेवाला कल्यान हलवाई और बूढे वैद्य जी जो छोटे-मोटे जूड़ी-बुखार की दवा कर पेट पालते थे, लड़को के विशेप कूतूहल के पात्र थे। उन गुड़ की रेवड़ियो और वैद्यजी के चूरन का चटपटा स्वाद अब भी उन लड़को को याद है। एक पनचक्की भी इस मुहल्ले मे लगी थी, जो किसी विशाल आधुनिक दानव की भाँति कस्बे के जीवन मे हलचल लाने का विफल प्रयास कर बन्द हो गई; किन्तु जब तक वह चली, उसके इञ्जिन ने पास-पड़ौस के मकान-दूकानो मे हड़कम्प की गति पैदा की और मृदु-थपक ताल से उसके गीत का स्वर आकाश को गुञ्जरित करता रहा।

यह इमली का पुराना पेड़ किसी पुराने युग मे धरती पर जमा था, जब यहाँ बाजार—हाट कुछ भी न थे। अकबर के दर्बारी अनूपराय ने ही शायद इसे लगाया हो। अब पेड़ के चारो ओर पक्की ईंट जमी है और लाल-पीले रग के बीच यही एक हरियाली ओसिस है। ऊपर आँख उठाने पर इसके सघन तने को पार कर हम आकाश भी नही देख सकते, केवल ऊंपर बैठे बन्दर अवश्य एक विद्रूप की मुद्रा धारणकर कूँ-कूँ कर उठते है।

यह पेड़ हमारे जीवन का चिर-सगी बन उठा है और उठते-बैठते, चलते-फिरते इसकी सघन छाया हमारे ऊपर पड़ती रहती है। इतने परिवर्तन होने पर भी एक अमूल्य विरासत, अतीत की यह स्मृति हमारे साथ है। हम आगे बढते हैं, बदलते हैं, विकसित होते है। बहुत-सा कूड़ा-करकट पीछे छोड़ देते है; तहसीली स्कूल के मास्टर, घर के

अत्याचार, समाज के दम घोटनेवाले प्रतिवन्ध, किन्तु बहुत-सी मधुर स्मृतियों का भार भी सहर्ष हम अपने कन्धो पर लिए है।

"इन मीठी स्मृतियो मे किसी भू-दर्शी निशान के समान यह इमली का पेड़ खड़ा है। घर-द्वार, सखा-सम्बन्धी हिल-डुल चुके हैं, किन्तु यह धीर और अचल है।

बड़े बाजार मे हमारी हवेली के खँडहर अवशिष्ट है। चारों ओर जीवन का उमड़ता स्रोत है, किन्तु खँडहर के प्राण जैसे दीये की वाती जल जाने के वाद दिन-प्रति-दिन क्षीण पडते जा रहे हैं। हवेली के अनेक खण्ड हैं। कुछ मे एकाध परिवार बसते है, बाकी ऊजड ग्राम हैं। विना मरम्मत के हवेली के अनेक भाग गिरकर चूर-चूर हो रहे है।

ग़दर के समय इस कुल के पितामह भागकर देहली से आये थे। यहाँ आकर उन्होने अपनी गृहस्थी फिर से जमाई और यह हवेली खरीद ली। अव हवेली का वटवारा हो चुका है और उस पुराने कुल मे परस्पर भयकर फूट और वैमनस्य है। कुछ लोग गरीब और फ़ाकेमस्त है, कुछ खुशहाल है और दुनिया मे बडे हो रहे हैं। एक का गिरना देख दूसरे प्रसन्न होते है। और दूसरे का बढना देख पहले उदास होते है। पसारे और सट्टे से रुपया कमा जब चचा ने नये कमरे बनवाये, तो हमारे यहाँ मातम-सा मना, जब बरसात मे एक कमरा सामान समेत नीचे की खत्ती मे वैठ गया, तव हमने आनन्द मनाया। 'धरती पर पैर न पडते थे। वुड्ढा कैसा इतराया था, मूँछ वट-बट कर रस्सी वना ली। हम कहते थे, गुमान न करो। भगवान इतना गुमान न रहने देगे। अव गिरे न ठोकर खाकर।' भयकर गाली-गलौज हुई। वच्चो मे परस्पर मार-पीट और वडो मे वातचीत वन्द। शहर मे कलह का धुंआ छा गया।

एक साहव आगरा चले आये और अपार धन-राशि उनके यहाँ फूट पड़ी। हवेली मे उनका छोटा-सा हिस्सा था, उसी के ऊपर हटरी के समान नए खंड वनने लगे। खँडहर मे इस मीनार को उठते देख

ंवन्धियो की छाती पर सॉप लोटने लगे। किन्तु इस वन का अधिकारी
ोई वच्चा इस परिवार मे न था। वह वच्चो को कोसते थे, हम उनके
न को।

हमारे परिवार का वुरा हाल था। एक भाई वैंक के मैनेजर होकर
ले गये, दूसरे रेल के प्लेटियर। यह प्रवासी हो गये और पुराने देश
उन्होने सव नाता तोड लिया। वूढे चचा समय की गति से जर्जर घर
ो अपने सतत जी-तोड़ परिश्रम से रोकथाम कर वचाने की चेष्टा मे
ल्लीन रहने लगे, किन्तु वूढा घर खिसका ही पड़ता था। अव वह
ृतप्राय अपनी अन्तिम सासें ले रहा है। वूढ़े चचा की ऑखे वन्द होते
ी घर भी वैठ जायगा और फिर खँडहर मे चमगीदड़ और सॉपो का
खण्ड साम्राज्य हो जायगा।

अव भी हवेली मे अनेक साँप निकलते है और पुराने मृत सम्वन्धियो
े साथ उनकी तुलना की जाती है। कहा जाता है कि हवेली मे माया
ढी है जो कभी-कभी बोल उठती है। उसका मृदु स्वर अनेक लोगों ने
ुना, किन्तु खोद-खाद करने पर एकाध साँप ही मिले, कुछ किसी के
ाथ न आया।

हवेली के पीछे एक वड़ी वगीची है जिसमे विचित्र जन्तु आ जाते
ै। वगीची भी उजाड़ पड़ी है और सुवह-शाम कुछ एकान्त-सेवी ही
ोटा लेकर उसका प्रयोग करते है। वगीची का वडा हिस्सा हमारे
धिकार मे है किन्तु उसका काया-कल्प नही हो पाता। भाइयो मे फूट
ै, एक दूसरे पर दावा करने के लिए तैयार रहते हैं। यदि कुछ
हस्सा-वॉट हो जाय, तो मरम्मत हो। वूढ़े चचा वगीची के वारे मे वड़े
किस्से सुनाते है। जव पिछली रौ आई थी तो तमाम जगली जानवर
समे वह आये थे। उन्होने वगीची में शरण ली। भेड़िए, गीदड़
हरन सभी वगीची के मेहमान वने। वाढ़ उतरने पर फिर वह वनवासी
पने ठिकानो पर जा लगे। केवल एक वारहसिगा रह गया। वह छोटा

बच्चा ही था और भटक कर यही रह गया। एक दिन झुटपुटे मे उसने एक एकान्तवासी पर पीछे से आक्रमण कर दिया और हाथापाई में उसके कोमल सीग उखड आये; फिर वह बारहसिंगा भी कही भाग गया, या ईंट-पत्थरो से मार डाला गया—ठीक याद नही पडता।

(२)

बूढे चाचा का कस्बे मे बडा मान है। वह इतने बूढे हो गये है, इतने विवाह और शवदाह उन्होने किये हैं कि पूरा शहर ही उनके लिए एक बृहद परिवार बन गया है। सब के झगड़े वह सुलझाते है, सबके सुख-दुख मे हाथ बँटाते है। बडी उदारता से वह सामाजिक पचडो मे राय देते हैं। उनकी उदारता अवस्था के साथ बढती ही जाती है और जीवन के प्रति उनका मोह कम होता जा रहा है। अपने फूटे मकान के प्रति अवश्य उनका मोह कम नही होता और उस पर आघात की आशका से ही वह व्याकुल हो जाते है। उन्हे लगता है कि सब कोई उनके घर को हडप लेना चाहते है और वह कलह और शब्द की चोट के लिए तत्पर हो जाते हैं। हरिजन आन्दोलन और विधवा-विवाह का समर्थन उन्होने किया और बडे-बडे सामाजिक तूफान उनके सर के ऊपर से निकल गये। इमली के पेड के समान उनका मस्तक आँधी-पानी के सामने तना ही रहा।

एक बार स्वय उनके परिवार मे विकट समस्या उठ खड़ी हुई थी। उनके भतीजे की विधवा कुनबे के एक अधेड़ अविवाहित पुरुप के प्रेम में फँस गई। उसे विधवा हुए अधिक दिन न हुए थे, किन्तु वह अपने पति की तीसरी बहू थी। वह तरुणी थी और लोहे के समान कठोर यौवन उसके शरीर पर चढ़ा था, उसके पति बडे उडाऊ थे और अन्त मे क्षय-ग्रस्त हो गंगा के किनारे शरीर छोडने आ बसे थे। उनकी विधवा एक समस्या हो गई। बूढ़े चचा ने उसके लिए एक दूकान का किराया बाँध दिया, किन्तु उस तरुणी के कुण्ठित यौवन के लिये कौन-सा बाँध बनाते? कही कोई बीमार होता, तो विधवा खाना बनाने के लिए बुलाई जाती। पूरे

बर्तन माँजती, खाना बनाती, झाड़ू-बुहारी लगाती। खाना खाकर चाची मुहल्ले मे गपशप की टोह मे चक्कर लगाती। उनका विशेष कौतूहल इस विषय मे था कि पड़ोस के स्त्री-पुरुषो का परस्पर कैसा व्यवहार है। चाची नि सन्तान थी। जब उनके पति आगरा कॉलिज मे बी० ए० की शिक्षा पा रहे थे, अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई। अब चाची बड़े यत्न से सहेज कर रक्खे उनके पत्रो को कभी-कभी बाँचती और आँसू बहाती थी।

घर मे बच्चो के दूध के लिए एक बडी गाय पाली गई थी। चाची कभी-कभी कटोरी भर दूध बच्चो को देती, किन्तु अधिकतर उसे एक पड़ोस की दूकान पर बेच डालती, या जमाकर घी निकाल लेती और वह भी बाज़ार मे पहुँच जाता। एक बार जब घर का काम करने के लिए गाँव का नौकर रक्खा गया, चाची ने उसके हाथ गंगा के तट पर बीरा बताशे बिकवाये और जब दूध न रहा, तो मट्ठा ही पानी मे मिला दिया।

धन के लिए चाची की अतृप्त तृष्णा भयकर रूप धारण कर निकली। उसने बच्चो को बाजार से पान आदि चुरा लाने की सलाह दी और जब विमला एक बार लगभग पकड़ गई, तभी इस व्यापार का अन्त हुआ। चाची के पास हजार-दो-हजार रुपया जरूर था और उसे वह सूद पर चलाती थी। एक बार उस रुपये को एक सबन्धी ले बैठे और उनका दिवाला निकल गया। तब चाची फूट-फूट कर रोई थी। सम्बन्धी ने जहर खा लिया और अपने कर्मो का बोझा सर पर लाद दूसरी दुनिया मे उसे हल्का करने की आशा से चल दिये।

जेठ ने आखिर बच्चो को चाची के पास से हटा लिया और वह दूसरे शहर मे नानी के पास रक्खे गये। चाची परलोक की तैयारी करने बद्रीनाथ गई और वहाँ से पहाड का भयकर रोग सग्रहणी साथ बाँध लाई। उसी ने क्रमश. उनके शरीर को खा डाला और बडी तीखी, कड़वी स्मृतियो की विरासत हमारे लिए छोड़कर वह चल बसी।

हो गये। पहले हम हिसाब में तेज और अँग्रेजी में कोरे थे। जब स्कूल छोडा, तब अँग्रेजी मे तेज और हिसाब मे कोरे थे!

अँग्रेजी स्कूल की अनेक मधुर स्मृतियाँ अभी जीवित हैं। जल्दी-जल्दी खाना खा हम लोग स्कूल दौडते और स्कूल शुरू होने से घटा, आध घटा पहले पहुँच खूब कबड्डी और गुल्ली-डंडा खेलते। बीच की छुट्टी मे खोचे पर टूट पडते और शाम को 'कम्पलसरी' खेल मे खुश-खुश शामिल होते। परिवार और मिडिल स्कूल के कुण्ठित व्यक्तित्व को पहली बार प्रसार और विकास का अवसर मिला।

स्कूल की पढाई मे काफी सख्ती थी। मास्टर बाँकेलाल और मास्टर बिहारीलाल से हम लोग काँपते थे। परन्तु मास्टर रामकृष्ण सदय और कुशल शिक्षक थे। उनके चतुर हाथो ने अच्छे कारीगर की भाँति हमारे नरम व्यक्तित्वो को यत्न से गढ़ा और अनेक भौंडे वर्तन भी कलापूर्ण पात्र वन गये। स्कूल के अनेक शिक्षक असाधारण व्यक्ति थे, जिनके सम्पर्क मे आना गर्व की वात थी।

महाशय जी स्कूल के मैनेजर थे और दूर के सम्बन्धी। उनका शहर में वड़ा मान था; वह बडे सरल और मधुर व्यक्ति थे। अवस्था मे कम होने पर भी उन्होने हमें स्कूल मे दाखिल कर लिया था। उनके पिता के दान से ही यह स्कूल चल रहा था और स्वय उनके परिश्रम और मनोयोग के कारण इतनी उन्नति कर रहा था।

महाशयजी ने अनेक वर्षो तक स्कूल की हेड-मास्टरी भी की। अन्त मे बाबू होतीलाल को लाकर वह इस भार से मुक्त हुए। नए हेड-मास्टर शीघ्र ही नगर-जीवन के एक प्रमुख स्तम्भ बन गये। वह लड़को के साथ स्नेह का व्यवहार करते और सख्ती भी कर सकते थे। उनके साथ क्रिकेट आदि खेलों मे शामिल होते और जब एक वार वर्षा के कारण स्कूल वन्द हो गया, तो लड़को को साथ लेकर एक आम के वाग गये और वहाँ सबो ने खूब आम खाये। इतना आनन्द हम लोगो ने पहले कभी जीवन में न उठाया था।

' चाची के मन में स्नेह अवश्य था किन्तु अन्दर ही अन्दर वह घुटकर जहर वन गया था। समाज ने शुरू में ही उनकी सव अभिलापाओं का द्वार वन्द कर दिया और वह कुण्ठित नारी, जो दूसरी परिस्थितियो मे शायद अच्छी गृहिणी और माँ वनती, विधवा होकर अपने कुटुम्व के लिए एक भारी समस्या और अभिशाप वन गई। अव घोर प्रयत्न करने पर भी मन मे केवल कटुता उठी है और स्नेह-रिक्त मरु-भूमि से हृदय मे कोई पानी की झलक नही मिलती।

(३)

हमारी शिक्षा तहसीली स्कूल मे शुरू हुई। यहाँ हिसाव, हिन्दी आदि की शिक्षा सस्ते मे मिल जाती थी, किन्तु शरीर को इसका कठोर दण्ड देना पडता था। एक ही मास्टर साहव सुवह से शाम तक एक क्लास को रगड़ते थे और सभी विपयो के पारगत समझे जाते थे। यहाँ सवसे कठोर दण्ड था मुर्गा वना देना और ऊपर से कमची की मार। जव इन्सपेक्टर साहव स्कूल का निरीक्षण करने आते, तब एक मेले-सी धूमधाम स्कूल मे हो जाती। लडके और मास्टर वढिया-वढिया कपड़े पहिन कर आते और मार-पीट उस दिन कम होती। इस जीवन की भयंकर एकरसता मे यही कुछ व्यतिक्रम होता। मिडिल क्लास के छात्रो पर अत्याचार के हम रोमांचकारी विवरण सुनते और काँपते थे। यह मिडिल पास करने के अभिलापी आँखो मे कड़वा तेल लगाकर रात भर जागते। उनकी चोटियाँ खूँटी से वाँध दी जाती जिसमे ऊँघते ही उन्हे झटका लगे और वह जाग पड़ें। इस स्कूल के एक मास्टर कुछ अँग्रेजी पढे थे। वह लड़को से मनुष्य-सा वर्ताव करते और उनसे हँसकर वोलते थे। वाद मे वह अँग्रेजी स्कूल के स्टाफ पर चले गये और यहाँ का वातावरण उनके व्यक्तित्व के अनुकूल अधिक था।

अपने चचेरे भाई से यह सुनकर कि अँग्रेजी स्कूल मे मार नही पड़ती और खेल-कूद की अधिक सुविधा है, हम लोग जिद कर वहाँ भर्ती

हो गये। पहले हम हिसाब मे तेज और अँग्रेजी मे कोरे थे। जब स्कूल छोड़ा, तब अँग्रेज़ी में तेज और हिसाब मे कोरे थे !

अँग्रेजी स्कूल की अनेक मधुर स्मृतियाँ अभी जीवित हैं। जल्दी-जल्दी खाना खा हम लोग स्कूल दौड़ते और स्कूल शुरू होने से घटा, आध घटा पहले पहुँच खूब कबड्डी और गुल्ली-डडा खेलते। बीच की छुट्टी मे खोचे पर टूट पडते और शाम को 'कम्पलसरी' खेल मे खुश-खुश शामिल होते। परिवार और मिडिल स्कूल के कुण्ठित व्यक्तित्व को पहली बार प्रसार और विकास का अवसर मिला।

. स्कूल की पढाई मे काफी सख्ती थी। मास्टर बाँकेलाल और मास्टर बिहारीलाल से हम लोग काँपते थे। परन्तु मास्टर रामकृष्ण सदय और कुशल शिक्षक थे। उनके चतुर हाथो ने अच्छे कारीगर की भाँति हमारे नरम व्यक्तित्वो को यत्न से गढ़ा और अनेक भौंडे बर्तन भी कलापूर्ण पात्र बन गये। स्कूल के अनेक शिक्षक असाधारण व्यक्ति थे, जिनके सम्पर्क मे आना गर्व की बात थी।

महाशय जी स्कूल के मैनेजर थे और दूर के सम्बन्धी। उनका शहर मे बडा मान था; वह बडे सरल और मधुर व्यक्ति थे। अवस्था मे कम होने पर भी उन्होने हमें स्कूल मे दाखिल कर लिया था। उनके पिता के दान से ही यह स्कूल चल रहा था और स्वय उनके परिश्रम और मनोयोग के कारण इतनी उन्नति कर रहा था।

महाशयजी ने अनेक वर्षो तक स्कूल की हेड-मास्टरी भी की। अन्त मे बाबू होतीलाल को लाकर वह इस भार से मुक्त हुए। नए हेड-मास्टर शीघ्र ही नगर-जीवन के एक प्रमुख स्तम्भ बन गये। वह लड़को के साथ स्नेह का व्यवहार करते और सख्ती भी कर सकते थे। उनके साथ क्रिकेट आदि खेलों मे शामिल होते और जब एक बार वर्षा के कारण स्कूल बन्द हो गया, तो लड़को को साथ लेकर एक आम के बाग गये और वहाँ सबो ने खूब आम खाये। इतना आनन्द हम लोगो ने पहले कभी जीवन मे न उठाया था।

एक दिन अनायास ही पिता जी बगाल से छुट्टी लेकर आये। हम लोग स्कूल से उठा लिये गये और एक दिन दोपहर को दोपहियों मे बैठ रेल की ओर चल दिये। उस दिन के बाद फिर कभी उस नगर के दर्शन न हुए। उसकी स्मृतियाँ ही फूल की सुगन्ध के समान मन में उठा करती हैं।

इस प्रकार हमारे जीवन का एक पृष्ठ बन्द हुआ और दूसरा खुला।

(४)

पैंतीस मील का लम्बा सफर दोपहिये पर तय कर हम अँधेरा होने के बाद अलीगढ स्टेशन पहुँचे। अँधेरे मे स्टेशन की बिजलियाँ दूर से ही जगमग कर रही थी। उन्हे देख हमारी आँखो को अकथ आराम मिला। एक मजिल पार कर हम पडाव पर पहुँचे थे। दूसरी मजिल सामने थी। इतना लम्बा सफर हमने पहले कभी न किया था।

गर्जन-तर्जन करती रेल भयकर हुकार कर स्टेशन पर रुकी और भीम गति से फिर आगे बढ़ी। अनेक स्टेशन छोडती, वन-नदी लाँघती रात्रि के अन्धकार मे वह निशाचरी बढ रही थी। पलक मारते वह मील पार कर रही थी। हमारी आँख झपी और खुली। सवेरा हो गया था और हम कानपुर पहुँच रहे थे। यही हमारे जीवन के अगले चार-पाँच वर्षों की रूप-रेखा अकित होने वाली थी।

कानपुर भारी शहर था। यहाँ हम खुले समुद्र मे थे। इससे पहले हमारी जीवन-तरी तट से लगी चल रही थी। कानपुर की हलचल, क्षुब्ध तूफ़ान-सी जीवन तरगे सभी कुछ एक नवीन प्रयोग की सूचना थे। हमने पहले भी बड़े शहर देखे थे, लेकिन उनकी स्मृति धुँधली पड़ चुकी थी। दिल्ली-सराय-रोहिल्ला से दिल्ली, स्टेशन से स्कूल, स्कूल से स्टेशन। पल भर के लिए एक झलक। यहाँ पढी अ-आ इ-ई के साथ हम शहर की स्मृति भी बिसार चुके थे।

गंगा-तट के उस छोटे से क़स्बे के सामने कानपुर एक विशाल नगर

था। और सन् '२० का कानपुर भूचाल के सागर से कम न था। सन् २० के सत्याग्रह आन्दोलन की प्रतिध्वनि हमारे कस्बे मे वहुत हल्की होकर पहुँची थी। रघुवीर वुकसैलर सब सार्वजनिक कामो मे आगे रहते थे। आर्य-समाज की दौड-धूप भी वही करते थे। अव सन् '२० में उन्होंने क्रिस्ती की काली टोपी उतार कर गाधी टोपी धारण कर ली थी। और सुनते है जिन दो सज्जनो ने सत्याग्रह किया भी, वह माफी माँगकर छूट आए। यह है हमारे कस्बे के रेकार्ड का काला इतिहास।

किन्तु कानपुर मे सब-कुछ इसके विपरीत था। शहर के नाको पर वड़े-वड़े नेताओ के तैल-चित्र लगे थे। चारो ओर शुभ्र खद्दर के दर्शन आँखो को आकर्षित करते थे। कस्बे के लोग तहसीलदार और दरोगा के भय से काँपते रहते थे। कानपुर मे एक खुला, स्वतन्त्र वातावरण था। इस नगर की जनता उदीयमान पूँजीवाद की प्रगतिशील जनता थी। चारो ओर नए कल-कारखाने खुल रहे थे। मिलो की चिमनियाँ आकाश मे सिर ऊँचा किए निरन्तर धुँआ उगलती थी। लालइमली की घडी दिन भर घटा वजाती और रात को आलोक से नगर भर देती।

ट्राम टनटन कर सरसैया घाट से कलेक्टरगज और कलेक्टरगज से सरसैया घाट साँपों के समान वल खाती फुसकार कर चलती। राहगीर चिल्लाकर कहते 'बाँध कर' और वह रुक जातीं।

एक अजव हलचल, कोलाहल और चीख-पुकार चारो ओर थे। वादशाही-नाके पर नानी का घर था। यहाँ निरन्तर लोहारो की टन-टन, घन-घन कानों मे घुसकर उन्हें फोड़ती। पीछे सब्जी मडी थी; वहाँ से भी हल्का-हल्का कोलाहल सुबह-शाम उठता और कानो पर झुकता। इसके अतिरिक्त फेरीवाले तरह-तरह की वोलियाँ वोला करते . 'ककड़ी-नर-एम'; 'खरवूज़ा लखनऊ, ठंडा-मीठा'; 'मक्खन गोली'। 'मक्खन गोली' की पुकार वडी शीतल और मधुर थी। हम सोचते थे यह कौन दैवी पदार्थ है, जिसकी पुकार में ही इतना मिठास

है। एक दिन चुपके से गली में एक टिकिया खरीदी और बड़े चाव से उसे कुतरा। दूसरे ही क्षण उसे थूकना पड़ा और नाली मे मक्खन फेंक चुपके से घर का रास्ता लिया !

मामाजी प्रताप प्रेस के मैनेजर थे। अतएव वह सत्याग्रह आन्दोलन के केन्द्र पर थे। प्रस से साप्ताहिक और दैनिक 'प्रताप' निकलते, 'प्रभा' नाम की पत्रिका निकलती और अनेक स्फूर्ति-दायिनी पुस्तकें निकलती। श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी और प० शिवनारायण मिश्र 'प्रताप' के जीवन-प्राण थे। सुबह होते ही 'प्रताप' के नारे शहर मे उठते, और दिन भर हवा मे छाए रहते। हमारा वचपन इन्ही प्रतिध्वनियों के बीच बीता, किन्तु घर के उपयोगितावादी और अवसरवादी वातावरण के कारण वलिदान और त्याग की शक्तियाँ बराबर दवती रहीं।

(५)

नानी का मकान गली के अन्दर था। मकान कच्चा था। नौकरी छोड़कर नानाजी ने जब किताबो का व्यापार शुरू किया, तभी यह मकान चार हजार मे खरीद लिया था।

नानी ब्रज की थी। उनकी वोली बड़ी मीठी थी। उनके मन में स्नेह की मात्रा भी बहुत थी। लेकिन कम आमदनी और बड़ा परिवार होने के कारण उनके मन की स्वाभाविक उदारता बहुत दवी रहती थी। हमे देखकर उनकी आंखो से आसू बहने लगते थे। किन्तु खाने-कपड़े आदि का प्रवन्ध उनके यहाँ वड़ी किफायत से चलता था।

नानी बडी सुन्दर थी। अपने समय उनका यौवन अथाह नदी के समान रहा होगा। उन्होने अनेक सुन्दर बच्चो को जन्म दिया, जिनमे छः लड़के और तीन लड़कियाँ बड़े हुए। नानाजी रेलवे मे डी० टी० एस० के दफ्तर मे वड़े वाबू थे, किन्तु इतने बड़े परिवार का भरण-पोपण मुश्किल से हो पाता था। महीने के अन्त मे वह कहते : 'चवन्नी

ी है!' अथवा 'दुअन्नी बची है!' उसी कठिन जीवन की छाप यद नानी के स्वभाव पर अब भी थी।

बजट की दुर्जय कशमकश से उकता कर नानाजी ने नौकरी छोड़ और प्रौविडेन्ट फण्ड के रुपए से किताबो का काम बड़े पैमाने पर रू किया। इसमे नानाजी को बडी सफलता मिली और वह कानपुर सम्मानित नागरिको मे गिने जाने लगे। किन्तु इतना सब होने पर ी घर पुरानी परिपाटी के अनुसार ही चलता रहा।

नानी स्वय अपने हाथो खाना बनाती, घर की बहुएँ बर्तन माजतीं, क्की पीसती और ऊपर के काम करती और हम छोटे-छोटे लोग नीचे खण्ड मे कुएँ से पानी खीच ऊपर चढ़ाते। नियम यह था कि प्रत्येक यक्ति नहाकर एक कलश ऊपर ले जाय। बड़ो पर भी यह नियम लागू ा, किन्तु वक्त-बेवक्त हम लोग ही बेगार के काम मे फँसते।

छोटी उम्र के एक मामाजी भी घर में पल रहे थे। उन पर नानी का बड़ा स्नेह था। इस स्नेहातिरेक के कारण मामाजी का स्वभाव बिगड़ गया था। वह प्रत्येक समय हर किसी से मार-काट और लड़ाई-झगड़े के लिए तैयार रहते। मामाजी इस ताक मे रहते कि कोई नहाकर, पानी भरकर रक्खे, तो चट से नीचे पहुँच जावे और उससे नहा डालें। माता मे उनकी एक आँख जाती रही थी और मुँह गुद गया था, इस कारण घर-बाहर लोग उन्हे काफी चिढ़ाते थे और उनका स्वभाव चिड़चिड़ा बनता जा रहा था। इन्ही झगड़ो के कारण अन्त मे हमे घर छोड़ होस्टल की शरण लेनी पड़ी।

शुरू मे हम मारवाड़ी स्कूल मे भर्ती हुए, परन्तु बाद मे गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे उठ गए। मारवाड़ी स्कूल एक आदर्शवादी सस्था थी। यहा लड़को के साथ स्नेह का बर्ताव होता था और लड़के दौड़-दौड़कर प्रसन्न-वदन घर से स्कूल जाते। मारवाड़ी स्कूल का छात्र-जीवन मेरी सुखद स्मृतियों में विशेष स्थान रखता है। यहाँ के स्काउट-मास्टर और सेकण्ड मास्टर मि० फडके लड़को से विशेष मिले-जुले थे। उनके

सुसंस्कृत व्यक्तित्व का लड़को पर गहरा और निरन्तर प्रभाव पड़ता था। मारवाड़ी स्कूल मे हमारी आदर्शमयी प्रवृत्तियाँ पहली बार उभर कर ऊपर आईं।

इसके विपरीत गवर्नमेण्ट स्कूल का सरकारी वातावरण शुरू मे हमे खाने दौडता था। यहाँ की पढ़ाई सख्त और अच्छे दर्जे की थी, किन्तु यह प्यासे के लिए ओस समान थी। गवर्नमेण्ट स्कूल मे हमारे जीवन के लम्बे और निर्णयात्मक चार वर्ष कटे। होस्टल में मन लगने के बाद स्कूल-जीवन का पूरा उपयोग भी किया। गवर्नमेण्ट स्कूल ने हम लोगो को मशीन में डाल उच्च कोटि के छात्र बनाया।

हमारे हेडमास्टर राय साहब अघोरनाथ चैटर्जी थे। प्रान्तीय शिक्षा-विभाग मे उनका बड़ा आदर था। उनका स्कूल मे बड़ा रोब-दाब था और अवसर पड़ने पर वह बेंत भी फटकार देते थे। वह लड़को से अच्छा काम लेना जानते थे। उन्हे इतवार के दिन भी स्कूल मे बुलाकर और अपने घर पर भी पढ़ाते। उनके परिश्रम के कारण कई दूसरी श्रेणी के लड़के पहली में सफल होते, कुछ ऐसी हाथ की सफ़ाई इस जादूगर की शिक्षा मे थी।

होस्टल के संरक्षक मि० कपूर थे। यह लड़को के साथ पिता-सम व्यवहार रखते और हर घड़ी उनके हितो का ध्यान रखते थे। होस्टल का जीवन मि० कपूर के कारण ही हम सह सके। हम इने-गिने लोगों को अधिकार था कि उनके घर आवे-जावें और अन्य बच्चो की तरह रहें। हम वही नित्य नहाते और एक बार जब महाराज से झगड़ा हो गया, कई महीने तक उन्ही के यहाँ खाना भी खाया। सयुक्त परिवार की कलह और फूट का यहाँ चिह्न भी न था।

मि० कपूर गेम्स-सुपरिन्टेन्डैन्ट भी थे। उनकी देख-रेख मे हम लोगो ने क्रिकेट आदि अच्छी तरह खेलना सीखा। मि० कपूर फुटबाल और क्रिकेट के स्वयं अच्छे खिलाडी थे और इस शिक्षा मे वह सख्ती से काम लेते। पहली टीम के खिलाडी उनसे घबराते थे, क्योंकि जरा-सी

ल्ती होने पर वह कठोर व्यंगमय व्याख्या करते थे। किन्तु हम
के प्रति उनके मिश्री से व्यवहार मे कोई बाँस की फाँस न आने

-

प्र० कपूर इतिहास और कॉमर्स के अध्यापक थे, वास्तव में उनका
कॉमर्स ही था, इतिहास की पढ़ाई जैसी-तैसी थी। उनके टाइप-
: चमाचम रहते और टाइप की एक गलती भी उन्हे असह्य हो
थी। मशीन के कल-पुर्जों की कहानी भी उन्होने हमे अच्छी
ामझा दी थी।

ौर भी स्कूल के अनेक शिक्षक उस समय महान लगते थे,
समय की गति से उनका कद घटता जा रहा है। कुछ ही लोग
ाद भी अपने ऊँचे आसन पर दृढता से बने रहते है।

(६)

छुट्टियों मे पिताजी से मिलने हम लोग आसाम गये। यह बी०
डबलू० रेलवे पर दो दिन और दो रात का लम्बा रास्ता था।
य से पिताजी को रेलवे का सेकण्ड क्लास पास मिलता था,
थे रास्ता आराम से कट गया। बाद में अनेक बार हमने यह
तय किया और लगभग वह हमको रट-सा गया था। उस जमाने
ड़ी हर एक स्टेशन पर खड़ी होती और करीब बीस-पच्चीस
की तेज रफ्तार से चलती। गोरखपुर स्टेशन पर आकर वह दो
ो लम्बी तान कर सो जाती। फिर क्रमशः कछुए की गति से आगे
। अच्छा यही था कि गाड़ी मे अधिक भीड़ न होती थी और सफर
ो कट जाता था।

ासाम का प्राकृतिक सौन्दर्य धरती और आकाश फोड़ टपका
था। आगरा प्रान्त के मरुभूमिवासी, जो घास का तिनका
को भी तरस जाते है, आसाम के घने हरित वनों और नील
श, नदी और पर्वतो की कल्पना भी नही कर सकते। दृश्य तो

गोरखपुर के पास ही वदलने लगता है। पेड़ो के घने कुञ्ज, गहरे ताल और सरोवर, हरे मखमल की धरती—सभी वताते है कि इस देश मे जल की कमी नही।

पिताजी ग्वालपाड़ा ज़िले के एक जगली इलाके मे सात वर्ष से रहते थे। यहाँ रेलवे लाइन अकसर टूट जाती थी। भारी बाढ़ आती थी, भूकम्प होता था। अहि-कमठ अकुलाते थे और प्रलय का दृश्य उपस्थित होता था। एक वार रौ हमारे घर के अन्दर तक आ गई थी। वाग में साँप घुस आए और रसोई-घर तक हम लोग केले की नाव पर बैठकर जाते। एक बुढिया कह रही थी—'गान्धी वावा ने कोप किया है।' इस वार पिताजी के इलाके मे तीन पुल वह गए, एक हफ्ते वह घर के वाहर रहे और उनसे हम लोगों की आमद-रफ्त तक टूट गई। एक हफ्ते मे कच्चे पुल वनकर तैयार हुए और गाडियाँ इस इलाके मे फिर चलने लगी।

पिताजी का वँगला फूस का था और गर्मियों मे हम कमरों के अन्दर सोते थे। चाहे जव उमड-घुमड कर वादल गरजने-वरसने लगते। मच्छर यहाँ वेहद थे और घर मे कोई-न-कोई वीमार ही रहता था। मलेरिया से गाँव उजड़ जाते, तिल्ली वढने से पेट ढोल से फूल जाते और साँप आदि के काटने से मनुष्य मरते रहते। बस्ती के खत्म होते ही भयंकर सन्नाटे मे बाँसो के वन साँय-साँय करते और यह भी पता न चलता कि वस्ती कव खत्म हुई और बन शुरू हो गया।

पिताजी के वँगले के साथ वड़ा भारी वाग था। यह वाग हमारे लिए आश्चर्यजनक फलो का कोष था। आम, लीची, केले, अनन्नास, शहतूत, फालसे, चकोतरे पेड़ो मे लदे पड़े थे। इसके अलावा विचित्र फल जिनके पहले नाम तक न सुने थे यहाँ मौजूद थे। पान और सुपारी भी वाग मे लगें थे। लता और वेल घर के अन्दर दाखिल होने का प्रयत्न करते और निरन्तर उनकी काँट-छाँट और तराश होती रहती।

हम लोगो ने घर पहुँचकर अन्धाधुन्ध चावल और केलो से पेट भरना शुरू किया, लेकिन जल्दी ही उकता गए। यहाँ गेहूँ का आटा कलकत्ता से मँगवाया जाता था और गेहूँ की रोटी ही एक बड़ी नियामत थी।

अब भी जब हम दोआबे की भयकर गर्मी और झुलसानेवाली लू में बैठकर आसाम की उन शीतल स्मृतियो को जगाते है, तो कृतज्ञता से मन भर जाता है और मृगतृष्णा के समान वहाँ की हरियाली और ठन्डी हवा स्मृति-पट पर छा जाती है। फिर आँख खोलते ही यह धूल-भरा आकाश, भट्टी-सा जलता वायु मडल और पीले मटमैले रंग का साम्राज्य! इसी भयंकर लू और गर्मी मे प्रकृति का अन्तस्तल फाड़कर अन्न पाने वाले श्रमजीवी बसते है जिनका अडिग साहस इन्द्रासन को भी हिला सकता है! यही है दोआबे की समृद्धि जिस पर इतिहास के प्रसिद्ध डाकुओ की टकटकी बँधी रही है। यही है वह सोना जो ग्रीक इतिहासकारो के अनुसार चीटियाँ पृथ्वी के गर्भ से खोद निकालती है!

जाड़े मे यह भून डालने वाले लू के झोके बर्फ के तेज़ भाले बनकर शरीर को छेद डालते है और प्रकृति से सघर्ष करते प्राणी को साँस नही लेने देते! इसी जलवायु ने यहाँ के लोगो को कोमल और आलसी बना डाला है, उनके जीवन को नष्ट किया है! यह ज़ाहिर है कि भारत का इतिहास लिखनेवाले अँग्रेज विद्वानो को दोआबे के जलवायु का अधिक अनुभव नही! या शायद अरब और सहारा की मरुभूमि से वह इस देश की तुलना करते होगे!

कानपुर में हमने बहुत कुछ सीखा। पहली बार कुछ परीक्षाएँ सम्मान सहित पास की; वज़ीफे भी मिले; आत्म-सम्मान भी बढ़ा। सामन्ती कुल प्रथा के दम घोटनेवाले वातावरण से निकल स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास किया। किन्तु गले का मोह-पाश फिर भी न टूटा। दूरस्थ लीचियो के झुरमुट मे छिपे घर और स्नेहमयी मा की याद आते

ही मन भर जाता। हम सोचते 'स्मृति रचने में कौन-सी चातुरी थी?' किन्तु आज जब वह स्मृतियाँ उमड़ रही है, और 'अतीत का चल-चित्र' खोल रही है, उस जीवन की अभिशाप-पूर्ण स्मृति के लिए मन कृतज्ञता में डूब जाता है।

अनेक अतीत के पल जीवित हो उठते है और मन किसी मृदु भार से दब जाता है। 'लाल इमली' का अलौकिक क्लाक टावर; गंगा का तट और शीतल वायु लहरी, बादशाही नाके की हलचल; लोहारों की ठन-ठन; प्रताप प्रेस की दानव सरीखी मशीने; गान्धीजी का बंगाल मे दौरा, अथाह भीड़, बाँस की छतरियाँ और नगे सिर; हिन्दी और अँग्रेज़ी के उपन्यास जिन्होने मन की अनुदारता को दबाया और एक आदर्शवाद सिखाया। दूर दक्षिण का सागर तट, ताड के पेड, बालू की पहाड़ियाँ, तारों भरा आकाश, गगनचुम्बी शिला-मन्दिर। यदि स्मृति न होती, तो मानव का भारी ज्ञान अतीत के पलों मे सदा के लिए खो जाता!

इसी ज़माने मे हमने अँग्रेज़ी उपन्यास पढ़ना भी शुरू किया। इसका अधिक श्रेय पिताजी को है। उनके रेलवे की सर्कूलेटिंग लाइब्रेरी से आए ड्यूमा और राइडर हैगर्ड के उपन्यास हम मच्छरो से कटते हुए आधी रात के बाद तक पढ़ते, और जब बत्ती बुझानी पड़ती, तभी सोते।

विक्टर ह्यूगो के विश्व-विख्यात उपन्यास भी हमने इसी समय पढ़े। यह मन को मथ डालते थे और गहरी व्यथा पैदा करते थे। कुछ स्कॉट और डिकिन्स भी पढ़े, किन्तु इनके कथानक का प्रवाह अविरल न होता; रुक-थमकर, झटके से कथा आगे बढ़ती और एक उपन्यास पढ़ने मे हफ्तों लग जाते। इसके विपरीत ड्यूमा के कथानक की गति में तूफ़ान-मेल की तेजी थी और एक उपन्यास प्रतिदिन तक हम पढ़ डालते।

कानपुर से हमने हाईस्कूल की परीक्षा पास की। यह जीवन की

एक वडी मंज़िल थी। हमारे 'वैच' में नौ लडको को प्रथम डिवीज़न मिला। प्रान्त का सर्वप्रथम छात्र भी हमारे ही स्कूल से था। यह सज्जन बरावर पहला स्थान पाते रहे और सिविल सर्विस की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर भी सरकार के कृपा-भाजन न बन सके। सरकार को सदेह हो गया कि आप खुफिया तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं। अतएव अब आप प्रयाग विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के परम आदरणीब अध्यापक है।

हाई स्कूल की परीक्षा के वाद कानपुर का साथ भी छूट गया। अब हम लोग वड़े हो रहे थे। अकेले रहना सीख चुके थे। पख फड़फड़ा कर उड़ने की चेष्टा मे थे। घोसले से बाहर फुदक कर पेड़ की डाल पर वैठना सीख चुके थे। वड़े विस्मय और कौतूहल से इस रहस्यमय जग और नील नभ को हम देख रहे थे। किन्तु विहग-संसार के विपरीत मनुष्य को परिवार और समाज के वन्धन बॉध रखते है। पंख फडफड़ा कर ही मनुष्य की सतान रह जाती है और नभ-सागर मे स्वच्छन्द नही कूद पाती। कोई विरले ही ऑख मूंद गहरे सागर मे कूद पड़ते हैं और या तो दो-चार ववूलो के अतिरिक्त उनकी हस्ती का पता नही रहता, या वह पार जा लगते हैं और उनकी धूम मच जाती है।

(७)

एक दिन शाम के समय जव सूरज तॉवे का तपा थाल वन नदी में डूब रहा था, हमारी ट्रेन गंगा का वड़ा भारी पुल पार कर वनारस पहुँची। पुल से पहली वार हमने नदी का वह धनुपाकार रूप देखा और घाटो, और औरंगजेव की मस्जिद का दृश्य जो एक प्रकार से विश्व-विख्यात हो चुका है। नदी वल खाती, क्रीड़ा-किल्लोल करती नगर की पद-रज लेती वगाल की खाड़ी की ओर बढ़ जाती है। नदी की गोद मे वसा नगर शीतलता से ओत-प्रोत हो जाता है। सुवह

ाम असख्य नर-नारियो के गद्गद् हृदय से निकली हर्ष-ध्वनि
ा मे छा जाती है। घण्टे और घड़ियालो की ध्वनि से वायु गूँज
है। इसी नदी तट पर निरन्तर जलते शव एक कठोर बदबू
वाला वातावरण मे भर देते है और जीवन की क्षण-भगुरता और
नशीलता हमें नहीं भूलने देते।

र आकाश मे हिन्दू विश्वविद्यालय के शिखर चमक उठते हैं।
ख्याति देश के कोने-कोने से विद्या-सेवियो को खीच लाई है।
ी दिन से यहाँ एक अजीब भीड-भाड रेल-ठेल लगी रहती है।
ात्र-विचित्रत छात्र-समुदाय के कोलाहल और रव से विश्वविद्यालय
ु-मण्डल भर जाता है। यहाँ दूर दक्षिण देश के गुड्डम-गुड्डम-सी
बोलते युवक नंगे सिर, नगे पैर तिलक-बिंदी लगाए, शाल ओढ़े
् घूमते हैं; रेशमी पायजामा और कमीज पहने गोरे, कठोर
े पञ्जाबी; बलिया, बस्ती, गोरखपुर आदि पूरब के जिला
ब, खद्दरधारी युवा; बिहार के सीधे-सादे गोल-मोल मुँह कर
ाले तरुण, बगाली, उड़िया, सभी एकत्रित होते है। भारत
र किसी भी विश्वविद्यालय मे शायद ही इतनी बहुरूपी भीड़
हो!

हाँ के छात्रो का एक अपना अलग ढर्रा भी है। काशी विश्व-
य का छात्र अलग पहचान लिया जायगा। उसके व्यवहार में
ा होगी और हृदय मे हिलोर मारता देश-प्रेम। ब्रिटिश सरकार
ात्रो से काँपती है। मालवीयजी इनकी उग्रता से परेशान होते
न्तु इनकी देश-भक्ति पर गर्व भी करते हैं। भारत के विशाल
ुदाय मे यह एक कठोर चट्टान का टापू स्वाधीनता का झडा
ऊँचा फहरा रहा है। माल्टा के द्वीप के समान इसकी भित्ति
ै।

क्के पर बैठकर हम विश्वविद्यालय पहुँचे। दफ्तरो मे कोहराम
ा। लड़के चारो ओर दौडते थे। किसी को कुछ पता न चलता

था। चीख-पुकार के कारण वातावरण में बडी तेज़ी आ गई थी। कई घण्टो के बाद हल्ला-गुल्ला शान्त हुआ और चौथे होस्टल मे पहुँच कर हमने शरण ली। यहाँ एक कमरे मे चार विद्यार्थी रहते थे। पहले छात्रावास के निवासी इस होस्टल को घुड़साल कहते थे, किन्तु पहले वर्ष तो सभी को आकर घुड़साल मे बँधना पडता था। अब इस उपेक्षित स्थान मे सस्कृत के विद्यार्थी रहते है और होस्टल का एक नया नामकरण 'चुटैया होस्टल' हुआ है।

इस होस्टल मे कहार कुएँ से पानी खीचकर लाते और लोहे की कुर्सियो पर बैठकर छात्र बराडो मे ही नहा डालते। फिर बराण्डे मे ही बँधी अलगनी पर उनकी धोतियाँ दिन भर सूखती। एक हँसोड़ प्रोफेसर साहिब ने कहा था कि हिन्दू यूनिवर्सिटी की अपनी अलग पहचान यह ध्वजाओ सी लहराती धोतियाँ है, उसके मन्दिरो के गर्वोन्नत शिखर नही!

पढ़ाई भी शुरू हुई। दिन का आरम्भ हाल मे प्रार्थना और धर्म की कक्षा से होता। बहुत ही कम लोग इधर झाँकते थे। फिर घण्टा बजते ही एक क्लास से दूसरी मे जाने के लिये भगदड़ मचती। डेस्को के ऊपर चलकर, कुर्सियो के ऊपर कूदकर जल्दी-जल्दी लड़के क्लास में भर जाते, फिर लेक्चर शुरू होते ही अपने स्थानो पर ऊँघने लगते। घण्टा बजने पर वे चौककर जागते और फिर अगले क्लास के लिये भाग-दौड़ शुरू होती। लड़कियाँ सहमकर एक कोने में खडी रहती।

मिल्टन को अपने विश्वविद्यालय से वडी निराशा हुई थी। वहाँ उसे विद्या के प्रति वह व्यसन न मिला, जिसकी उसने आशा की थी। काशी विश्वविद्यालय मे हाई स्कूल पास कर विद्यार्थी पहुँचता है, और सचमुच ही अपने को एक प्रकाण्ड विद्वत्ता और पाण्डित्य के वातावरण मे पाता है। प्रत्येक शिक्षक उसे वृहस्पति और शुक्र का अवतार मालूम होता है।

देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की प्रमुख तरगे भी सभी दिशाओ से आकर यहाँ टकराती है। गान्धीजी, पण्डित जवाहर लाल नेहरू आदि नेताओ को विश्वविद्यालय से विशेष स्नेह है। मालवीयजी तो विश्वविद्यालय के जीवन-प्राण हैं ही। इनके अतिरिक्त डा० टैगोर, सर जगदीश बोस, डा० रमन, राधाकृष्णन आदि महापुरुष भी आते-जाते रहे है।

काशी विश्वविद्यालय की शिक्षा हमारे लिए बडे भारी गर्व का कारण रहेगी।

(८)

काशी से कुछ दूर पर स्थित बौद्ध-तीर्थ सारनाथ के स्तूप आकाश मे अपने उन्नत मस्तक उठाए सदियो से खडे है। मन्दिर और स्तम्भ टूटे तो और उनके भग्नाशेष धूल मे मिल गए, किन्तु दो हजार वर्ष के बाद किसी नवीन जीवन-प्रेरणा से फिर एक बार यहाँ के मठ और मन्दिर अपनी लम्बी निद्रा से जाग रहे है। इतिहास के इस दीर्घ काल मे धमेख और चौखण्डी ने क्षत-विक्षत होकर भी स्वामि-भक्त प्रहरियों के समान बुद्ध और अशोक के प्रिय इस तीर्थ पर बीस शताब्दियो के लगभग पहरा रक्खा। अनेक देशी और विदेशी डाकू इस तीर्थ को उजाड़-खण्ड बनाकर चले गए, किन्तु इन दो प्रहरियो की आंखें न झपीं। इन खण्डहरो और नव-निर्मित भव्य भवनो के बीच खड़े होकर हम सोचते हैं, किस महान प्रेरणा से इस खण्डहर के प्राण आज भी स्पन्दित है?

सारनाथ पहुँचते ही हम एक फैला, शान्त ग्राम्य-देश देखते है, जिसकी कोमल, स्निग्ध वायु हमारे प्राणों का स्पर्श कर शीतल बनाती है। टीलो के ऊपर लम्बी, प्रगाढ निद्रा मे सोए भग्नावशेष जाग उठते हैं और मानो वातावरण 'बुद्धं शरण गच्छामि' की ध्वनि से गूंज उठता है। हम देखते है किसी अनमोल साँचे मे ढले

अशोक-स्तभ के शिखर पर बने सिंह, धर्म-चक्र और घण्टी, मठों के जीर्ण अवशेष, भूमि के नीचे जाने वाले पथ, अनेक द्वार, पौर और अकथनीय शान्त मुद्रा मे रमी बुद्ध की मूर्त्तियाँ! दर्शक के 'चिरअन्ध नयन' खुल जाते है।

बुद्ध की आत्मा के प्रकाश से आज भी यह खँडहर आलोकित है। मनुष्य के मस्तिष्क और आत्मा की एक लम्वी और उदारमयी उड़ान यह थी। सदियो से ब्राह्मण वर्ग द्वारा पीडित और क्षुब्ध जनता को यह मुक्ति का सदेश था। बुद्ध ने कुछ अरसे के लिए धर्म के पडो की शक्ति तोड़ दी। भारतीय समाज अव अपने कृपि-युग से निकल चुका था और एक टीड़ी-दल-सा वहुसख्यी वर्ग लम्बे शोपण के युग से मुक्ति पा रहा था। विजित जातियो के दास आर्यो के बन्दी-गृह से छुटकारा पा वाहर निकले और सामन्ती परम्परा में भूमि से वँधे।

इस परिस्थिति मे बुद्ध के वाक्य भारतीय जन-समाज को आशा का सन्देश लेकर आए। पशु-वलि और वर्ण-व्यवस्था क्रान्ति की इस लहर मे डूव गए। शासक-वर्गो से बुद्ध ने कहा, 'विलास और मोह त्यागो। मोह तोड़कर ही सुख मिलेगा।'

कालान्तर मे बुद्ध की शिक्षा भी पंडो की पूँजी वन गई और जन-साधारण के शोषण का एक नया अस्त्र। इतिहास की शक्तियो ने वौद्ध-मत के शव को उठाकर एक ओर ताक मे रख दिया। आज ईसाई मत के प्रचारकर्त्ता इंगलैण्ड और जर्मनी है। वौद्ध-मत के प्रतिनिधि जापान!

हमारी कल्पना के नेत्रों के आगे घूमती भिक्षु-भिक्षुणियो की मूर्तियाँ फिर इतिहास के पन्नो मे लोप हो जाती है और सामने रह जाते है सिर्फ मिट्टी के ढूह और विखरे ईंट-पत्थरो के ढेर।

सारनाथ मे एक नई वस्ती भी वनी है। कापाय पहने चारो ओर चपटी नाक वाले ठिगने भिक्षु घूमते फिरते है। एक धर्मशाला,

लाइब्रैरी, अनेक मठ और एक परम सुन्दर बौद्ध मन्दिर पुरानी स्मृतियो को सजीव बनाते है। वर्मी घण्टे की गूँज वायु मे हल्की लहरें पैदा कर दूर तक फैलती है और अन्त मे दूरी के कारण इन्द्रियाँ उस गूँज को ग्रहण नही कर पाती। चिरकाल तक यह गूँज शून्य मे चक्कर काटेगी, किन्तु मनुष्य के प्राण उसे अधिक देर न सुन पायेंगे।

मन्दिर के भीतर पहुँच कर दर्शक की आत्मा पर बौद्ध-मत की प्रशान्त, स्निग्ध, कोमलता का पर्दा पड़ जाता है। बुद्ध की सुनहरी, सौम्य मूर्ति् उसे एक सतोप प्रदान करती है। दीवारो पर खिंचे चित्र उसे प्रभावित करते है। वह सोचता है, बुद्ध के वाक्य का दीपक हल्का आलोक यहाँ बिखेर रहा है, किन्तु द्वार से कही आँधी का झोका न आवे! आज फिर वह पुराना दीपक सारनाथ की वन-भूमि मे टिमटिमा उठा है।

(९)

इण्टर पास कर हम प्रयाग चले आये। कोई अज्ञात अन्तर्प्रेरणा हमे यहाँ ले आई। हमारे भविष्य जीवन की धुरी प्रयाग बन गया। दस वर्ष प्रयाग से विलग रहकर भी जीवन-रथ फिर उसी पुराने पथ पर आ निकला है।

प्रयाग भारत के आधुनिक जीवन का केन्द्र है। यहाँ के विश्व-विद्यालय मे बडे-बड़े विद्वान भरे पडे हैं जिन्होने ज्ञान की सीमाओं का विस्तार किया है। यहाँ के क्षात्रों मे विद्या की लगन है, जो उन्हे एक ऊँचे मानसिक धरातल पर उठाती रहती है। अनेक लेखक, कलाकार और विचारक यहाँ के सांस्कृतिक जीवन की महक से जुड़ आते हैं। राजनीति का प्रयाग बड़ा केन्द्र है। यही भारतीय राष्ट्र की प्रमुख संस्था कांग्रेस का केन्द्रीय दफ्तर है। प० मोतीलाल नेहरू और बाद मे जवाहरलालजी 'आनन्द-भवन से भारतीय राजनीति का

संचालन करते रहे है। 'आनन्द-भवन' से भारतीय राष्ट्र को एक जीवन-दीप्ति मिलती रही है, जो आज भी हल्की नही पड़ी।

लेकिन प्रयाग एक रईस शहर भी है। यहाँ हाईकोर्ट और विश्व-विद्यालय के कारण उच्च-मध्य वर्ग का एक जमघट है, जो अंग्रेजी 'फोरसाइट्स' की तरह सुख और आमोद के लिए व्याकुल है, किन्तु जिसके दृष्टिकोण मे किसी दूर-वसे रूप-नगर की चाह भी है। उत्तरा-पथ के एकाध नगर मे ही शायद इतनी आमोद की भूख हो। कोई मैच हो, नया फिल्म हो, जू का बनमानुष हो, हवाई दौड़ हो, प्रयाग का मध्य-सस्कृत-वर्ग अच्छे वस्त्र पहन मोटर, साइकिल या ताँगो पर निकल पड़ता है, और सैन्डविच, चाय और शराब से जठराग्नि को वुझाता है। निरन्तर खाने और कपड़ो की बातचीत करते यहाँ के 'भद्र-लोग' अपना वक्त गुजार देते है और हम सोचते है कि प्रयाग क्षय-ग्रस्त नगर है। फिर कोई देशव्यापी आन्दोलन अन्धड़ की गति से हमे झकझोर जाता है और पता चलता है कि प्रयाग का हृदय सजीव है।

प्रयाग की जनता इस पूँजीशाही सस्कृति और अँग्रेजी नौकरशाही के बोझ से दवी जा रही है, लेकिन जब भी राष्ट्र के नेता स्वाधीनता का मोर्चा बनाते हैं, प्रयाग की जनता केसरिया बाना पहिन कर निकल पड़ती है और जौहर करती है।

प्रयाग के मानसिक जीवन का केन्द्र यहाँ का विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय ससार के बड़े विद्या-स्थलों की समता करता है। एक ऊँचे धरातल पर यहाँ विचारो का अध्ययन, मनन और विनिमय, चाय, सिग्रेट और कॉफी के सहारे निरन्तर चला करता है। विद्यालय के वाद-विवाद की ध्वनि-प्रतिध्वनि देश के बुद्धजीवी समाज मे गूंजा करती है और विफल शून्य मे लोप नही हो पाती।

इस सुसस्कृत समाज के चतुर्दिक् प्रकृति ने अपना अपूर्व रूप सजाया है। गगा और यमुना का संगम, दूर तक फैला हरित-नील वन-

देश, धवल आकाश, अमरूद के बाग, अनेक तरु-लताएँ; बीच-बीच में इतिहास के भग्नावशेष, अशोक का स्तम्भ, अकबर का किला, खुसरू की समाधि, दूरस्थ कोशाम्बी। आज की पूँजीवादी संस्कृति भी शीघ्र ही इतिहास का भग्नावशेष बन जायगी और भविष्य के विद्यार्थी को आकर्षित करेगी, किन्तु इन खँडहरो की नीव पर एक नई संस्कृति का जन्म होगा, जो जन-समाज को अपनी परिधि में खीच लेगी। यही दन्तकथाओ के 'फीनिक्स' का मर-मरकर नया जन्म लेना और कायाकल्प है।

प्रयाग मे हमारे विद्यार्थी-जीवन के चार सुखमय वर्ष कट, जीवन के तूफानो से बचे यूनिवर्सिटी के एकान्त-देश मे हमने बहुत कुछ पढ़ा और सीखा। अनातोल फ्रान्स, दौदे, मोपासाँ, फ्लावेयर, तुर्गनेफ, इबसेन, मेटर्लिक, आॅल्डस हक्सले, डी० एच० लाॅरेन्स आदि का नशा पहली बार यही चढ़ा और आज भी उतर नही रहा। हम बड़े विद्वानों के ढंग से प्लेटो अथवा रूसो की बात करते और उमर खैयाम की भाँति पुरानी लिपि को मिटाकर समाज के स्लेट पर नया कुछ लिख जाने का स्वप्न देखा करते।

रात को हम सब एक कमरे मे जुड़ते, गपशप करते और चाय पीते। बड़ा शोर-गुल होता, हँसी के फव्वारे बह निकलते। रात के बारह-एक बज जाते। क्या बात करते थे, वह याद नही पडता। अनेक लोगो के नाम धूल बन जाते, अनेक आकाश में पहुँच जाते। कौन छात्र कैसा है, कौन शिक्षक कैसा है, कौन किताब कैसी है—यही सब वाद-विवाद के विषय थे। याद आता है 'स्टोव' का शोर, ऊँची उठी आवाजें, हँसी का स्वर।

'सभ्यता एक रोग है, बर्बरता ही स्वास्थ्यकर थी। यह रूसो का भी मत है।' 'जीवन का एक अकेला सत्य पीडा है। मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। शोपेनहर और हार्डी का मत।' 'विज्ञान निष्फल है, बल्कि एक अभिशाप है।' 'मनुष्य जाति आगे बढी है, लेकिन

मनुष्य जहाँ का तहाँ है।' 'सुख का एकमात्र उपाय है विश्व का एक साथ आत्मघात।'

इन वाक्यो की गम्भीर प्रतिध्वनि हँसी और 'स्टोव' के गर्जन-तर्जन के बीच कभी-कभी कानो मे गूँज उठती है। आज उस चक्र-व्यूह से बाहर निकलने का रास्ता मार्क्सवाद दिखा रहा है। साम्य-वादी तो तब भी हम थे, यानी मनुष्यमात्र की समता के पुजारी; किन्तु कठोर वास्तविकता से किस प्रकार त्राण मिले, किस प्रकार अपनी कल्पना के 'यूटोपिया' को व्यावहारिक रूप दिया जाय, यह न जानते थे।

किन्तु इन्ही दिनो मेरठ का प्रसिद्ध केस तैयार हुआ था, पी० सी० जोशी हॉलैण्ड हॉल से पकडे गए थे, भारद्वाज उनके बचाव का प्रयास कर रहे थे। आदर्श एक वास्तविकता धारण कर रहा था। पं० जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर काग्रेस के सभापति की हैसियत से पहली बार कहा था· 'I am a republican and socialist' यानी 'मैं प्रजावादी और समाजवादी हूँ।'

सुबह होती, धूप निकल आती, किन्तु हम चारपायी न छोड़ते। फिर बहुत देर हो जाने पर हड़बड़ा कर उठते, मुँह-हाथ धोते, बूँद-बूँद टपटप करते नल के नीचे किसी प्रकार नहाते, शायद आत्मा के बहुत दुतकारने पर 'कोर्स' का कुछ पढ़ने की कोशिश करते, विष समान कड़वा खाना खाते और नोट-बुक उठा कर यूनिवर्सिटी भागते। वहाँ और मित्र मिलते, उनके साथ हँसी-मजाक रहता। किसी प्रकार क्लास का घण्टा काटते। शिक्षक बड़ी तैयारी से पढ़ाने आते, हम लोग अर्द्धचेतन अवस्था मे नोट्स लिखते।

फिर परीक्षा के दिन। भयंकर गर्मी, मच्छरो का भन्-भन् संगीत और दशप्रहार। पसीने में लथपथ 'स्कॉलर जिप्सी' का अध्ययन, उसके सौन्दर्य की चोट :

'While to my ear from uplands for away
The bleating of the foldəd flocks is borne,
With distant cries of reapers in the corn—
All the live murmur of a summer's day.'

हम झूम उठते और सब कष्ट पल भर के लिए भूल जाते। परीक्षा का भूत फिर सर पर सवार हो हमे आगे हाँकता।

तडके उठकर हम जल्दी-जल्दी नहा डालते है। आधी रात का अध्ययन अभी वुखार की तरह दिमाग पर चढा है। वायु का शीतल स्पर्श प्राणो मे आह्लाद भर देता है। घटे पर चोट, सन्नाटा, व्यथित प्रतीक्षा मे प्रश्न-पत्र का वितरण। फिर तीन घण्टे कलम की खर-खर। कमर और उँगलियों मे थकान और पीड़ा भर जाती है। घण्टे पर अन्तिम चोट, अकथनीय विश्राम, फिर परीक्षा के आखिरी दिन एक असह्य पीड़ा भरा आराम का साँस।

दिन पर दिन निकल जाते हैं। परीक्षा-फल के इन्तज़ार में एक अजीब वोझ मन पर जम जाता है। रोज़ अखबार के पन्ने भयभीत मन से जल्दी-जल्दी पलटते है। अन्त मे एक दिन काँपते मन परीक्षा-फल मालूम हो जाता है और विजयोल्लास से मन भर जाता है।

हमे क्या मालूम था कि अभी जीवन मे एक-से-एक कडी परीक्षाएँ पास करनी होगी और वडी कठिन पहेलियाँ सुलझानी होगी! किन्तु जो कुछ हमने साहित्य, इतिहास और राजनीति-विज्ञान का पढ़ा और सीखा, उसने हमारे व्यक्तित्व को अवश्य निखार दिया था।

एम० ए० पास कर हमने सैन्ट जॉन्स कॉलिज आगरा मे अँग्रेज़ी पढ़ना शुरू किया। यह हमारे विद्यार्थी जीवन का ही तार आगे खिच रहा था, क्योकि जिस सुरक्षित दुनिया मे हम अब तक रहे थे, उससे वाहर अव भी न निकले थे। खाना खाकर कॉलिज जाना, टैनिस खेलना, पढ़ना, सो जाना—इस प्रोग्राम मे कोई व्यतिक्रम न हुआ था। कॉलिज से वाहर की मानवता से अव भी कोई सम्पर्क न था।

फिर भी रवि बाबू की प्रसिद्ध कहानी 'समाप्ति' मे जिस प्रकार अज्ञात जादूगर ने हँसोड़ लडकी के जीवन के दो खंड कर दिये हैं, यद्यपि किसी को यह प्रत्यक्ष नही दिखाई पड़ा, उसी प्रकार हमारे जीवन के भी दो खण्ड हो चुके थे। विद्यार्थी जगत से हम अब एक ऐसी खाई के पार खड़े थे जिसे लाँघना असंभव था।

आगरा मे जीवन का एक दीर्घ युग बीता। युवावस्था के दस वर्ष सेन्ट जॉन्स मे कटे।

एक सुबह जब ताज के पीछे सूर्य उदय हो रहा था, हमारी ट्रेन जमुना के पुल पर तुमुल रव कर निकली। उस रोशनी मे ताज केवल एक कब्र के समान लगा। ऊबड-खाबड ऊसर देश, जमुना की हरी साड़ी, पीछे सोने के आकाश-पट पर ताज का सफेद मटमैला गुम्बद। किन्तु रात मे वही ताज रहस्यमयी नव-वधू के समान शत्-शत् सौंदर्य लेकर प्रकट हुआ। एक अजीब अवसाद और शोक का भाव उस अन्धकार भरी रजनी मे ताज के हृदय से फूट पड़ा। हम भूल गये उस सम्राट को जिसने अपना अपार वैभव सम्राज्ञी की याद में भेंट चढा दिया, और उन श्रम-व्यस्त कला जीवियो को, जिन्होने अपने रक्त-स्वेद से यह भव्य इमारत खडी की। ताज उस रात एक सजीव व्यक्तित्व धारण किये था। ताज को हमने अनेक बार भिन्न प्रहरो, पलो और ऋतुओ मे देखा और प्रत्येक बार उसे नवीन देखा।

आगरा शहर मे चारो ओर अनेक लाल पत्थर के खँडहर बिखरे पड़े है। एक असाधारण ऐतिहासिकता का परिचय दिल्ली या आगरा जैसे शहरो मे मिलता है। किनारी बाजार जहाँ की सडक के पत्थर अकबर के समय से आज तक पथिको के पदाघात से घिस रहे हैं; देहली दरवाजा, फतहपुर सीकरी के सूने राजमहल—सभी हमारी ऐतिहासिक स्मृतियो को हरा करते है।

आगरा शहर की ऊँची-नीची सड़कें कही खार, कही खड्ड, कहीं नाले, कही कीचड़, जीवन की विविधिता से हमें परिचित कराते हैं।

ऐडविन आरनल्ड ने सच ही लिखा था कि दुनिया मे कोई भी स्टेशन आपको इतनी चहल-पहल और रग-बिरगी भीड़-भाड़ मे नही उतारता, जितना कि आगरा फोर्ट स्टेशन। एक ओर अकवर का सुप्रसिद्ध लाल किला, दूसरी ओर जामा मस्जिद जिसके नीचे सुराहीवालो, बजाज़ो और भिखमगों का बाज़ार गरम रहता है; सव के ऊपर ताँवे के रग का जलता आकाश जिसके प्रसार मे स्टेशन की ऊँची छत से झुंड-के-झुंड जगली कवूतर ज़रा-सा खटका पाकर कूद पड़ते है और घटो चक्कर काटते हैं।

इस शहर को क्या कहे? अव भी इसका एक पैर मध्य युग मे है, और दूसरा सशकित पूंजीवाद की कठिन भूमि पर पड रहा है। साथ-ही-साथ जन-जागरण का भैरव नाद भी यहाँ की मज़दूर वस्तियो, गाँवो और विद्यार्थी तथा विचार-जीवी वर्गो के वीच सुनाई पड़ा है। अकवर से गाधी और समाजवाद तक इतिहास का लम्वा पट आगरा शहर पर तना है। इस शहर के अनेक जीवन है और अनेक रूप।

(१०)

आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर हमने घूमने की ठानी। पहली लम्वी छुट्टी मे ही हम कुछ सिंहाली मित्रों के साथ लंका पहुँचे। यह सिंहाली मित्र प्रयाग विश्वविद्यालय मे हमारे साथ पढते थे और वडे गुणी थे। आर्यरत्न कवि थे और अच्छी श्रेणी के चित्रकार थे। उनकी कविताओं में पूर्व की जातियो का रोमान्स, उनकी पीड़ा और सौन्दर्य-प्रेम एक कसक लेकर प्रकट होते थे। वह काली स्याही से छोटे-छोटे रेखा-चित्र बनाते थे : कोई सरोवर या ताल, छोटी लहरियाँ, भग्न सीढ़ियाँ, पक्का घाट, पीपल का एकाकी वृक्ष और कोई शोक-निमग्न विरहिणी। आर्यरत्न बडे मँझे और सुसंस्कृत व्यक्ति थे। उनकी बातचीत और सग से बड़ा मनोरजन और रस उनके साथियो को मिलता था।

धनपाल इसके विपरीत बहुत तेज और गहरे चटकीले रंग के व्यक्ति थे। उनका पहला स्नेह था पत्रकारिता, और कुछ वर्षों से वह सीलोन डेली न्यूज़ के उप-सम्पादक का पद पाकर बहुत सुखी है। धनपाल शब्द-चमत्कार से भरे निबन्ध लिखा करते थे जिनके विषय थे "झूठ बोलने का सुख", "विस्तरे मे लेटने का आनन्द", "एक फिजूल-खर्च के कारनामे" इत्यादि। धनपाल कविता और चित्रकारी भी करते थे और उनमे काफी प्रतिभा का परिचय रहता था। देखने मे धनपाल काले और कुरूप थे। नीग्रो जाति का रूप और गुण दोनो उनके व्यक्तित्व पर मुद्रित थे।

यह सिहाली छात्र मि० पियर्स के साथ लंका से भाग आए थे। इनमे लगभग आधे दर्जन के संपर्क मे हम आए और सभी को 'किसी न किसी दिशा मे प्रतिभावान पाया।

मई की भयकर उमस भरी शाम को हम लोग ग्रैण्ड ट्रंक ऐक्सप्रेस मे दिल्ली से वैठे और दो दिन, दो रात के लम्बे सफर के वाद मद्रास पहुँचे। यह रास्ता इतिहास की स्मृतियो से भरा पड़ा है : दिल्ली, मथुरा, आगरा, धौलपुर, ग्वालियर, दतिया, झाँसी, भिलसा, साँची, भूपाल, हैदराबाद राज्य! अन्धकार के हृदय को चीरती हुई ट्रेन आगे बढती है, एक हल्का कोमल वायु का स्पर्श शरीर पर निकल जाता है, अनेक प्राचीन खँडहर, किले, इमारते जंगल और शहर अपने सिर उठाते है : मरियम का मकवरा, सिकन्दरा, ताजमहल, ग्वालियर का किला, दतिया के पुराने महल, भिलसा का टीला, साँची का स्तूप, खजराहो के मन्दिर और अनेक भग्न, अनजान, छोटे-मोटे स्मारक। दिन मे भयकर लू चलती है, गाड़ी की वेन्च जलने लगती है और मालूम होता है कि अव गर्मी के कारण प्राण निकल जायँगे। फिर हम देखते है दूरस्थ समुद्र के जल की झलक, ताड के पेड़, रेतीली भूमि; हम एक विचित्र कठोर भाषा सुनते है और हर्ष से मन सिहर उठता है; शीतल वायु के झोके दूर

समुद्र की लहरो से खेल कर आते है और प्राणो मे कम्पन पैदा करते है। साँझ होते-होते हम मद्रास के समीप पहुँच जाते है और आकाश-पट पर नगर की वत्तियो का फैलता आलोक और प्रकाश-स्तभ की तिहैरी चमक देखते हैं। ट्रेन हल्की पड़ती है, भारी भीड़-भाड़, शोर-गुल, मद्रास जकशन, हम आराम की साँस लेकर उतर पडते हैं।

मद्रास के शोर-गुल से अलग समुद्र के किनारे अड्यार का आश्रम ऊँघा करता है। यहाँ थियौसोफिस्ट फैडरेशन का जगत-केन्द्र है और यहाँ की आन-वान देखने योग्य है। सफेद झीनी मलमल का कुर्त्ता और मखमली टोपी पहन कर यहाँ के योगी ब्रह्म के स्वप्न देखते है, समुद्र-तट पर शुभ्र चाँदनी मे 'पूर्व के नक्षत्र संघ' के तरुण सदस्य जल-क्रीडा करते है और वृद्ध सदस्य अधी आँखो से मैत्रेय और नचीकेता के बारे मे धर्म ग्रन्थो का पाठ करते है। वड़ा सुन्दर, सुघड़ और रम्य आश्रम है यह, और कुरूप, कोलाहल—भरे वास्तविक जग से सदियो दूर। यहाँ के सौम्य, शान्त. सफेद चेहरे मन मे श्रद्धा उत्पन्न करते है किन्तु भारतीय युवक और विदेशी युवतियो के मुख पर जल-क्रीडा के समय जो गहरा, घना, तल्लीन भाव छा जाता है, वह ब्रह्म के चिन्तन से सर्वथा भिन्न है।

ताड़ और केले के पेड़ो के झुरमुट, गहन अन्धकार, समुद्र की लहरो की अँधेरे में प्रतिध्वनि, पेड़ो से पत्तियो के गिरने का कोमल शब्द। शाखाओं के वीच से छन कर आती चन्द्र-किरणों की मृदु झलक। दूर पर एकाध लालटेन का खिड़की से छन कर आता प्रकाश। विचित्र ध्वनियाँ, विचित्र भोजन, मन में एक विचित्र उल्लास।

अड्यार के समुद्र-तट को निकटस्थ महाबलिपुरम् से एक नहर जोड़ती है। नाव की छत पर लेट कर, गाने गाकर, नगे पैर बालू मे चल कर हमने रात की शीतलता मे अपने प्राण भिगोए और दोपहर के लगभग महाबलिपुरम् के समुद्र में स्नान किया। कहते है

कि यहाँ समुद्र के तट पर पहाड़ से कटे सात मन्दिर थे, किन्तु उनमे केवल एक समुद्र मे अधडूबा बचा है। शेष छैः समुद्र लील चुका है। इस सातवें मन्दिर के अलिंद मे वैठ कर हमने दोपहरी काटी, चारो ओर से वायु और सागर की लहरे अलिन्द के पत्थर से टकराती और एक विचित्र खलवली वातावरण मे छा जाती। हम सोचते, सदियों पहले मनुष्य ने चट्टान काट-काट कर वरुण देवता की तुष्टि के लिए यह मन्दिर वनाए थे और लगभग सभी उनके पेट मे होम हो चुके है।

महावलिपुरम् मे एक चट्टान पर अनेक पुरानी शैली के चित्र खुदे है। शायद ईसा से पहले किसी शताब्दी की यह खुदाई है। कहते है कि महाभारत के दृश्य इस चट्टान पर अकित है। आदिम मनुष्य की कला का बल, साहस और उसकी विशाल स्थूलता इन रेखाओं मे ज़रूर मिलते हैं। एक भारी ऐरावत चट्टान को अपनी काया से घेरे था, उसके ईर्द-गिर्द अनेक नर-नारियो के चित्र थे जिन्हें अर्जुन, उर्वशी आदि कह सकते हैं।

हमारे आदि-पुरुप कितने सुसस्कृत और गुणी थे, यह सोच हमारा भारतीय मस्तक महावलिपुरम् के प्राचीन ग्राम मे गर्व से ऊँचा हो गया !

(१४)

एक शाम हमने ऐगमोर स्टेशन से सिंहल द्वीप की यात्रा शुरू की। यह दक्षिण भारत रेलवे (S I. R.) का टर्मिनस था और वी० यन० डवल्यू रेलवे की शैली पर ढला था। मद्रास से दक्षिण यात्रा करने मे हम एक विचित्र देश और सस्कृति के वीच पहुँच गए। भीड का ज़वर्दस्त रेला गाडी मे घुस पडता और रेल के कर्मचारी उनसे पशुवत् व्यवहार करते। इन स्त्रियो के कानो मे दर्जनो वालियाँ थी और कान का निचला छेद कई इन्च लम्वा था। आदर्श यह है कि वालियाँ कंधे को छू लें। इन फटे कानो को देख हमे आदिम जातियों

सुवह हम लका के अन्तर्राष्ट्रीय नगर कोलम्वो मे थे। यहाँ लगभग एक सप्ताह तक नि ्न्तर वर्पा हुई और हम अधिक कुछ न देख सके। केवल स्मृतियाँ है लाल-खपरैल के विशाल भवनो की, समुद्र की मथी लहरो और रात मे जगमग करती दूकानो की। बडी सडकों पर हम टहलते, दुकानों मे घुसते, 'पैगोडा' नाम के रेस्ट्राँ मे चाय पीते और वर्पा शुरू होते ही भाग कर अपने बिल मे घुसते।

यह विल कोलम्वो से कुछ मील दूर एक गाँव था। यहाँ हमारे सिंहाली मित्रो के पुराने शिक्षक 'कव-फादर' रहते थे। उन्ही के यहाँ हम लोगो ने डेरा डाला था। सुवह उठ कर हम चाय पीते जिसमे अगणित चम्मच चीनी रहती, किन्तु दूध की एक बूँद भी नही। फिर कुएँ पर जाकर अगणित वाल्टिया अपने वदन पर उँडेलते और कही घूमने निकल जाते, या घर पर वैठ गपशप करते। भोजन मे बहुत मिर्चें रहती, इस कारण हम नारियल के कतरे साथ-साथ खाते। भोजन के वाद सोते, ताश खेलते और बादल खुला होता तो फौरन बाहर निकल पड़ते।

एक सप्ताह वाद हम दक्षिण तट की रेलवे मे वैठ आगे बढे। यह अतिशय सुन्दर देश था। समुद्र, ताड़ के वन मे लिपटी मोटर-रोड और रेल—यह तीनो पथ साथ-साथ दूर तक जा रहे थे। यही देश यात्रियो का स्वर्ग है। सागर, वन और पर्वतो के देश मे महीने भर हमने चक्कर काटा। 'मातर', 'गौल' और 'दोदडुआ' (सतरो का द्वीप) मे हम समुद्र के तट पर थे। 'तिस्सामराम' मे हम घने वन-देश के भीतर थे। फिर 'न्यूवरेलिया' और 'कैंडी' के पर्वतो का सौंदर्य देखते हुए हम कोलम्वो वापस लौट आए। हम उन सिंहाली नावो मे घूमे जो पेड के तने को आगे से खोखला कर बनाई जाती है, जिनमें मनुष्य सिर्फ खडा रह सकता है, वैठ नही सकता और जो

खुले समुद्र के खतरों का सामना कर मद्रास तक पहुँचती है। चाय के बागो में हमने पिकनिक किए, जगलो में गोह की शकल के भारी आदिम जन्तु देखे और पहाड़ी नगरो की सर की। किन्तु कैंडी मे ही हमे प्राचीन सिहाली जाति की स्मृतियाँ चतुर्दिक् फली हुई मिली। कैंडी मे हाथीदात, तमाल, पीतल, ताबे और कछुए की डाल पर अच्छा काम होता है। सव।राम में वुद्ध का एक दात सुरक्षित है और अग्रेजी जाति का प्रभुत्व कुछ विसर जाता है। कोलोम्वो मे उतरते ही हम सामन्ती युग की स्मृतियाँ पीछे छोड़ आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय वन्दरगाह मे पहुँच जाते हैं, और आज सिहाली जाति कोलोम्वो की ओर उन्मुख है, कैंडी की ओर नही।

(१५)

वी० ए० के कोर्स में हमने राजनीति विज्ञान की शिक्षा पाई थी। इन्ही दिनो प० जवाहरलाल नेहरू रूस से वापस आए थे और रूस के समाजवाद से वहुत प्रभावित हुए थे। समाज की दरिद्रता, पीडा और कुरूपता सभी भावुक व्यक्तियों को व्यथित करती थी और दलदल से वाहर निकलने का एक ही पथ नजर आता था। समाजवाद हवा मे छा रहा था और नवयुवक सघ लाल झडे को तिरगे के पार्श्व मे आसमान मे ऊँचा उठा रहा था।

भारतीय नगरो में उद्योग-धधों का प्रसार हो रहा था और हमारा पूँजीवाद शक्ति पाकर एक मोर्चे पर साम्राज्यवाद से लड रहाथा और दूसरी ओर मजदूर वर्ग की वढती ताकत को भी दवा देना चाहता था। कॉंग्रेस भारतीय राष्ट्र की महान सस्था है। विदेशी साम्राज्यवाद से भारत के वाजार छीनने को आतुर स्वदेशी पूँजीवाद कॉंग्रेस की मदद करता है, किन्तु उसकी क्रान्तिकारी गति मे वन्धन डालता है; अतएव काँग्रेस की नीति में एक अजव कशमकश रहती है और एक प्रकार से कॉंग्रेस दो टुकड़ियों मे खिच जाती है।

मेरठ षड्यन्त्र केस के साथ भारतीय राजनीति के मच पर कम्यूनिस्ट पार्टी दल-बल सहित आई और उसकी शक्ति धूम्रकेतु की गति से बढ़ने लगी। सभी दलो से अधिक सगठित और क्रान्तिकारी यह पार्टी थी। इसके सदस्यो के जीवन मे केवल एक प्रेरणा और एक लग्न थी। इसके पास अधिक धन न था, किन्तु अदम्य, अटूट उत्साह और लोहे के समान कठोर इच्छा-शक्ति थी। इसके पीछे मजदूर, किसान और विद्यार्थी वर्ग का सगठित शक्ति थी। पिछले दस वर्षों के अन्दर-अन्दर भारतीय आकाश पर इस लाल तारे का आलोक फैल गया।

कम्यूनिस्ट पार्टी मार्क्स और लैनिन के सिद्धान्तो को लेकर अखाडे मे उतरी। समाज विज्ञान की आँच मे उसकी नीति परखी हुई थी। यह पार्टी जानती थी, किन शक्तियो के परस्पर सघर्ष से इतिहास की गति निर्धारित होती है और क्रान्ति का क्या रास्ता होगा। अतएव बिना विचलित हुए वह अपनी नीति सचालित करती थी। मजदूर वर्ग से अलग और मार्क्सवाद को अर्द्धशिक्षा पाए दल भावुकता और ढुलमुल आदर्शों के शिकार होते और रास्ता भूलते थे, धरती से सम्पर्क तोड़ उनकी नीतियाँ हवाई महल बनाती थी। किन्तु कठिन भूमि पर चल कर और अपनी आलोचना करने और भूल-सुधार करने को तत्पर कम्यूनिस्ट पार्टी अपने पथ से विचलित न हुई।

कम्यूनिस्ट पार्टी ससार भर के सहृदयो के सामने एक आदर्श रखती है। हम सभी एक उन्नत समाज की मन मे कल्पना रखते हैं, जहाँ गरीबी मिट जायगी और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न होगा। इस आदर्श समाज की योजना मे बडी भारी बाधा पूँजीवाद की सशस्त्र शक्ति है। उस शक्ति का बिना किसी रियायत के प्रयोग होता है और उसे तोड़ने में बिना किसी रियायत के हमें काम करना होगा। जर्मन प्रजातन्त्र का पतन यह सीख हमे स्पष्ट रूप मे देता है।

यू० पी० मे कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता हमारे पुराने सहपाठी रुद्रदत्त

ारद्वाज थे 'और पी० सी० जोशी भी प्रयाग विश्वविद्यालय की उपज
। सैकड़ों कडियाँ समाजवाद के साथ हमारे जीवन को जोडती हैं,
न्तु हम इस आन्दोलन के साथ केवल हमदर्दी दिखा सकते है। संसार
र के वुद्धजीवियो का यही हाल है। अकर्मण्य. पस्त, पराजित
न्मुल वह शब्द-जाल मे फँसा तड़फडाता है, विना पानी के मछली
ा तरह वेवस। फिर या तो क्रान्ति की वाढ आती है और वह पिछड
ाता है, रुष्ट, असहाय, मुँह मे झाग भरे, अथवा हिटलर अपने
ार के कोडो से उसकी कमर तोड देता है और उसके सव सदेहो का
न्त हो जाता है।

मैं वडे यत्न से अपने लम्वे, लिंपटे, स्मृति-पट को एक वार फिर
ाल कर देखता हूँ, और अनेक दृश्य, व्यक्ति, स्मृतियाँ एक वार फिर
जीव हो जाते है। इमली का वड़ा भारी पेड; गन्दे गली-मुहल्ले;
ाट, पण्डे; नर-नारी; खँडहर जिनसे पीपल फूट कर निकल रहे हो,
ा अव्यक्त दवी, वुझी व्यथा जो समाज पर पत्थर की तरह जमी हो,
जगर के समान सोई पड़ी हो। इस काल-सर्प को जगाना ही होगा;
चलना ही होगा।

अनेक और भी दृश्य मुझे याद आते है। लका का रमणीक समुद्र-
ा, ताल और केले के वन, कैन्डी का पर्वत देश; दक्षिण के मन्दिर,
ाला-चित्र, इतिहास की स्मृतियो से सजीव देश; सांची, भिल्सा,
देलखण्ड के ताल और टीले; कश्मीर की झीले जहा नर-पशु आज
ामाने अनाचार करते है, दार्जलिंग और शुभ्र हिम-मडित पर्वत-मालएँ,
ासीन, निर्विकार मनुष्य की लीलाओ को उपेक्षा और अवहेलना से
ाते हुए।

और मुझे इस कुरूपता, दारुण दैन्य और वीभत्स अनाचार के
रोध मे सघंर्ष करती हुई मनुष्य की शक्ति भी दिखाई देती है।
मिक वर्ग की शक्ति, स्वाधीनता के सैनिको की शक्ति, विचारो को

शक्ति, आदर्श की शक्ति। मुझे याद आते है छोटे-छोटे अन्धकार भरे कमरे, सीलन और बदबू से भरे, जहा अनजान, महाप्राण व्यक्ति नए समाज की रूपरेखा बनाते है जिनके समने भगतसिह के साथी और चटगांव के वीर योद्धा भी सिर झुकाते है।

मैं अतीत की स्मृतियो को सहेज कर, उनसे सघर्ष की प्रेरणा प्राप्त करता हूँ। फिर मैं पीछे मुडकर देखना नही चाहता। मै भविष्य मे विश्वास रखता हूं और उसी की ओर देखना चाहता हूँ। मैं देखता हूँ विकट लडाइया, जन-शक्ति का दावानल, एक नई समाज-योजना जिसमे कुरूपता और दुराचार मिट गए है।

नए स्केच

(१)

ताई

उस विशाल सामन्ती खँडहर के एक कोने मे हमारी ताई रहती थी—एक टूटे-फूटे कमरे मे जिसकी लगातार मरहम-पट्टी होती थी और फिर भी जो मानो धरती की आकर्पण शक्ति से खिसका ही पडता हो। हमारे पुरखो ने दिल्ली त्याग कर यह मकान बनाया था, किसी जमाने मे इसके बाहर के वैठके और अन्त.पुर के कमरे मधुर हास्य से गूंजते होगे, किन्तु अव इस खँडहर का वायु-मडल इतना दूपित और विपाक्त हो गया था कि यहाँ सास लेना भी कठिन था। इस आलीगान मकान के खण्ड-खण्ड हो चुके थे; जगह-जगह पीपल के पौधे फूट रहे थे, कुएँ पर 'ताम्रपर्ण शतमुख पीपल के निर्झर' झरते थे। एक ओर पितामह की लगाई गुलवास की बेल फूल-फूल कर मानो खँडहर का उपहास करती थी। टूटी-फूटी बगीची मे, जहा नित्य प्रात एकान्तसेवी 'दिगा' खोजते थे, अनेक विपधर निकलते थे जिनकी गिनती हमारे पुरखो मे थी। वह किसी अज्ञात काल्पनिक माया की रक्षा मे लगे थे। इस भग्न सामन्ती विरासत के अनुरूप वे ही उसके उत्तराधिकारी और रक्षक थे। वह वृहद् कुल की एक शाखा फली-फूली थी। खँडहर के एक ही कोने की मरम्मत हुई थी और वह तिमजिला कोना शेखी से अकडा शेष खँडहर पर नये धनिक की भाति हँस रहा था। कुल के शिक्षित युवा दूर-दूर कमाई के लिए निकल गए थे, केवल वडे-बूढे खँडहर के पृष्ठपोपण के लिए बच गए थे। इन बुजुर्गो मे कभी-कभी भयंकर वाग्युद्ध छिडता

था, जिसका प्रभाव पूरे कुल के जीवन पर पड़ता था; उस दिन चूल्हे भी न जलते थे, आपस की बोलचाल बन्द हो जाती थी। पुरुषो के सग्राम की छाया स्त्रियो पर और बच्चो के खेल पर भी पडती थी।

इस वातावरण मे अनायास ही ताई कही दूर से आकर बस गईं। उनके तीन छोटे छोटे बच्चे थे। ताऊ बीमार थे; जीवन सग्राम से थके और जर्जर, अपने प्राण त्यागने किसी आदिम स्वभाव के अनुसार वे इस अध-गुहा मे लौट आए थे। जीवन मे सफलता के लिए उन्होने अनेक प्रयत्न किये थे; बहुत सिर मारा था, किन्तु अव अस्त्र डालकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन बार उनका विवाह हुआ था; पहली दो पत्नियाँ उनका साथ न दे सकी किन्तु यह ताई लौह-शलाका के समान कठिन थी; उनके सुगठित शरीर और शान्त मुद्रा पर जीवन के प्रहारो का कोई स्पष्ट प्रभाव न था।

ताई और उनके तीन बच्चो के जीवन-यापन के लिए सामन्ती कुल ने व्यवस्था करने का भरसक प्रयत्न किया। एक दूकान का किराया उनके नाम कर दिया गया। और मासिक सहायता का प्रबन्ध भी हुआ, किन्तु वह अधिक दिन न चल सका। 'हमारी' चाची खूब लड़ी, "जब अपने घर एक विधवा असहाय बैठी है, तो दूर मदद देने क्यो जायँ?" ताई दूर के रिश्ते की ताई थी, चाची खास अपनी थी। कुल मे सभी ने ताई की दशा पर आसू बहाए, ताऊ की मृत्यु पर एक कोहराम मचा; आसुओ के पारावार बहे; किन्तु कुछ ही दिन बाद कलह, द्वेष और फूट ने फिर खँडहर पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। कानाफूसी शुरू हुई। ताऊ ने अवश्य ही परदेश मे अपार धन कमाया होगा। ताई के कपडे फटे थे और बच्चो के पास तो थे भी नही; किन्तु एक दिन चाची ने स्वय अपनी आंखो से ताई को मिठाई खाते देखा था; ताई की जीभ चटोरी थी; तभी तो उन्होने अपने घर का यह कुहाल कर लिया! ताई का चरित्र ठीक न था : वह सहायता की पात्र न थी।

अन्त मे परिवार की सहायता ने यह रूप ग्रहण किया कि ताई कुटाई-

पिसाई करे और जीविका अर्जन करे। किसी के यहा काम होता तो ताई बुलाई जाती। उन्होने अपने बडे लडके से चाट भी बिकवाई, किन्तु यह प्राणी बड़े निरीह थे और दुनिया के धधो से सर्वथा अपरिचित थे। यह सिलसिला भी न चला और ताई थक कर बैठ गयी। अपनी पराजय का क्षोभ वह बच्चो पर उतारने लगी।

आज भी जब मुझे ताई का घर याद आता है तो कठिन अवसाद का पत्थर-सा मन पर रख जाता है। वर्षा के दिन, टप-टप करता घर, लौनी खाई दीवारे, बाहर हूहू करती हवा का अधड़; इस घोर अधकार बियाबान मे इस नारी की जीवन-वाती मद-मद जल रही थी। चारो ओर जक खाती सिगरेट बनाने की बेकार कले पड़ी थी। उन्ही के बीच, सामन्तवाद और पूंजीवाद की मिलन-भूमि पर, इस क्षुद्र कुटुम्व का होम हो रहा था।

ताई के बड़े लडके को एक संतानहीन सेठ गोद लेना चाहता था, किन्तु वूढ़े कुलपति ने इसमे अपनी कुल-मर्यादा की हानि समझी। लड़का इधर-उधर चौका-वर्तन करने लगा। नौकर की हैसियत से उसने अपने कुल का मान रक्खा और यह अक्षय यश कमा कर स्वर्ग का फल भोगने चला गया। लड़की का दिमाग कुछ खराब था। वह बिगड़ता ही गया। छोटे लड़के को एक दिन कोई रोग लेकर चलता बना। इस प्रकार ताई का छोटा सा कुटुम्ब बारहवाट हो गया।

ताई अकसर कूट-पीस करने कुल के धनिक सबन्धियो के यहाँ जाती थी। इनमें एक अधेड़ चाचा क्वाँरे थे। किसी कारणवश उनका विवाह न होता था और अब आशा भी न रही थी। इन्होने ताई का पल्ला पकड़ा। एक दिन ताई ने अवांछित नये शिशु को जन्म भी दे डाला। कुल में वडा तूफान उठा। हफ्तो लडाई हुई। अन्त मे अप्रत्याशित दूरदर्शिता दिखाते हुये कुलपति ने दोनो का घर एक कर दिया। धनिक चाचा को नाम चलाने का सहारा मिला। सामन्ती कुल-वधू ने धन का वरण करके जीवन की लज्जा ढकी।

इस बात को बहुत दिन हो गए, किन्तु फिर भी राख मे दबे कोयलो की भाँति यह आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है और चाहे जब भडक उठती है। द्वेष के अंधड मे इस आग की चिनगारियां दूर-दूर फैल जाती है और शायद ही कोई बिना झुलसे उनसे अछूता बचता हो।

(२)

गाँव की साँझ

कुँए की जगत पर औरतो की भीड लगी थी—मलिन-वसना, जर्जरित-यौवना, श्रम-व्यस्त। ये औरते किसी और सामाजिक व्यवस्था मे जवान होती। लेकिन बीस-पच्चीस वर्ष की रहते भी दोपहरी उनकी ढल-सी चुकी थी—घोर श्रम और जीवन मे कोई अन्य रस न होने से लगातार कमज़ोर, अल्पायु सतान जनने के कारण। उनका कर्कश स्वर कौओ के स्वर से मिल वायु मे गूँज उठा।

पोखर का रग सुनहले सूर्य की रश्मियो से लाल पीला हो उठा और दुर्गन्ध उस समय मानो दब-सी गई। पोखर के किनारे धोबिने कपड़े इकट्ठे कर रही थी। उन्होने मुडकर एक बार भी पोखर के इस रूप को न देखा। पोखर के किनारे मैला जमा था, और अब फिर अँधेरा होते ही लोटा लेकर एकान्त खोजने लोग चल दिये।

पोखर के पीछे एक भारी टीला था। इसी की आड़ मे सुबह-शाम अनेक एकान्तवासी शरण लेते थे। टीले के पीछे जमीन्दार का बड़ा भारी, करीब मील-भर की परिधि का, बाग था। शाम की कोमल वायु मे पेडो के पत्ते मन्द-मन्द हिल उठे लेकिन अमरुदो पर बैठने वाले कौओ को उडाने के लिए मालियो ने टीन बजाकर और चीखकर एक कोलाहल मचा दिया।

दूर सरसो और गन्नो के खेतो के पीछे सूर्य डूबने लगा था। किसान

अंधेरे की आशका से अलाव को तेज कर बैलो को जल्दी-जल्दी हॉक रस निकाल रहे थे।

हवा तेज़ होने पर मनो धूल गॉववालो के फेफडो मे पहुँचा देती। शाम होते ही गॉव भर जोर-ज़ोर से खॉसने लगता। यह खॉसी एक बार शुरू होकर फिर रुक ही न सकती। रात भर गॉव मे कुत्तो के भोकने के साथ चित्र-विचित्र खॉसी का स्वर मिला रहता।

बूढो की खॉसी, बेदम धोकनी की तरह, जिसका आदि तो सुन पड़ता है लेकिन अन्त नही, जिसका स्वर फुसकार कर रह जाता है, किसी पुरानी मशीन की तरह जो कराह-कराह कर चलती है। जवानों की खासी, सवल सशक्त जो मानो उनके फेफडो को बाहर निकाल फेंकने के लिए अधीर हो उठी हो। औरतो की खासी, जिसका स्वर अन्दर ही अन्दर घुटकर रह जाता था और घूँघट की लज्जा के भीतर अपने प्राण छुपा न सकता था। बच्चो की खासी जो कानो मे इतनी भर चुकी थी कि उसकी पीड़ा का हृदय पर कोई असर न पड़ता था। दुधमुँहो की खासी जिसका निर्बल आर्त स्वर हल्का सा उठता और कान के पर्दे पर सुई की तरह भुकता। शांम होते ही यह स्वर गाव के अन्य स्वरो मे मिल जाते और रात भर सन्नाटे के प्रसार में चक्कर काटते थे।

इन खांसने वालो मे भूरी की खासी सबसे विकट थी। खॉसी के कारण भूरी रात भर न सो पाती। ग्राम-सुधार वाले उसे उलटी-सीधी गोलियॉ दे जाते, इन्ही को बड़े यत्न से सचित कर वह अपने जीवन की यात्रा काटने की आशा कर रही थी। भूरी तेलिन थी। उसका वेटा भोजा और पोता भी मसक्कत से काम करते थे, लेकिन भूरी को सुख न था। अब वह काम करने लायक न थी, अतः घर मे उसकी दुर-दुर होने लगी थी। भूरी का शरीर रोगो का नर था। सुनते है, जवानी मे उसका चरित्र खराव था, एक बार डर से उसने तेजाव पी लिया था। जान तो उसकी वच गयी, लेकिन जैसे उसकी देह

को घुन लग गया हो। शाम होते ही भूरी अपनी देहरी पर बैठ खासने लगती और सुनने वालो से बहू बेटो की बुराई करती।

शाम होने पर एक दूसरी तेलिन बुढ़िया अपनी अल्पवयस्क बहू को—जो घूंघट के कारण पग भर बिन सहारे न चल सकती थी—खेतों की ओर लेकर चली। रास्ते मे शरारती लड़के 'कोडा जमालशाही' खेल रहे थे। एक अचकचा कर बहू से लड़ गया और वह गिर पड़ी। बुढ़िया ने लाठी इधर-उधर बरसानी शुरू की और साथ-साथ माँ-बहिन की कर्कश अश्लील गालियों की बौछार। पलक मारते उन खिलाडी लड़कों का दल जादू के महल के समान न जाने कहाँ विला गया।

किसान खेतो से लौटने लगे थे। कुछ बैल खोल कर हुक्का पी रहे थे और खांस रहे थे। गांव में एक बैरागी भी था, जिसका एक टूटा-फूटा घर तो था, लेकिन और कोई संग-सहारा नही। पास के गांवो से वह भीख मांग लाता था और उसी से गुज़र करता था। आज शाम को उसके पास कुछ आटा था, लेकिन दाल, साग कुछ नही, चटनी तक भी नही। उसने नमक से लगा-लगाकर रोटी खानी शुरू की। इस गांव के बहुत से किसान भी सिर्फ नमक के सहारे रोटी सटकते थे। उनके पास न तो अपने खेत थे, न पौहे। मट्ठा तक उन्हे नसीब न होता था। खाना खाकर बैरागी घर से निकला और किसानो के साथ बैठ दम खीचने लगा। वह सख्त नाराज था—

"ज़मीन्दार के लोग मुझे चोर कहते हैं। मैं चोर हू, चोर। किसी के घर से कुछ उठ जाय, बैल भटक जाय, बहली की रस्सी कट जाय, दोष बैरागी का। मेहनत मसक्कत करके खाता हू, किसी के घर का नही!"

रामसिंह को हंसी आयी—"हां, भइया, मेहनत तुम करते हो, मुफ्त का तो मैं खाता हूं। देखो न, शरीर फूल गया है।" रामसिंह गाव का बड़ा मेहनती लेकिन सबसे कमज़ोर किसान था।

दूसरे ने कहा—"रात को नहर दो बजे खुलेगी। हमारे खेतों का नम्बर है। जागते ही रहेंगे।"

वैरागी बोला—"आज रात आल्हा होने दो। यों ही दो बज जायेंगे।"

अधेरा हो चुका था। कुएँ पर कोई इक्का दुक्का ही रह गया था। इस घोर अन्धकार में केवल बैंलो के जबड़े चलने का स्वर, भूरी का खासना, कुत्तो का भूंकना और किसी चिलम अथवा अलाव की सुलगती आग प्रकाश के बिन्दु थे। ज़मीन्दार की पौरी पर जोर की चुहल थी। शायद कुछ लोग शिकार खेलने बाहर से आये थे। कुछ देर बाद वैरागी का सधा स्वर हवा में गूंज उठा—

"बड़े लड़ैया मोहबे वारे,
जिनकी गज भर की तरवार।"

(३)

अल्मोड़े का बाज़ार

समुद्र-तल से लगभग साढ़े-पाँच हज़ार फीट ऊपर हिमालय के कक्ष मे अल्मोड़े का बाज़ार प्रकृति के विशाल रूप का उपहास, मानवी सस्कृति का उपादान, केंचुए के समान टेढा मेढ़ा पड़ा है। वह पहाड़ के शिखर पर एक अतीत का सपना अब भी अर्द्ध-सुप्त अवस्था में देख रहा है। उस प्राचीन ऐतिहासिक स्वप्न के अवशेष अनेक मंगोल शिखरों के मन्दिर, प्राचीन भग्न गृह, जिनकी नक्काशी उनके बीते वैभव की एक यादगार है, और न बदलने वाली पहाडी जाति है।

पहाड के सिर पर यह लम्वा बाजार सामन्ती युग का सोया प्रहरी है। हिमालय के गर्वोन्नत हिम-मडित शिखर सदियो से उसे अविचल देख रहे हैं; किसी प्रलय के कम्प मे उठी वह पर्वत देश की गगन-चुम्बी

लहरे, चांदनी सा चमकता हिम-देश, चीड़ और देवदार के बन। प्रकृति के चित्र-पट पर वह कोई धब्बा मानो किसी शिशु ने गिराकर अपना कौशल दिखाया हो !

पहाड़ के सर पर टेढा-मेढ़ा किसी विषैले सर्प-सा लम्बा वह अल्मोड़े का बाजार लेटा है। तग, दुर्गन्धि-पूर्ण पथ, सुन्दर, गोरे वच्चे मैले चिथड़े मे लिपटे, प्रसन्न वदन या रोते, पिल्ले, मरियल कुत्ते; मिठाइयो की दूकाने, फलवाले, तरकारी वाले, पसारी; सुनार, वजाज़; लुहार; टीका लगाए गन्दे पडित, समाज के जोक; भिखारी, पागल; एक व्यस्त भीड़; रेल-पेल। क्यो ? किधर ? किसी अनैतहासिक युग के जीवो की तरह असम्वद्ध, असंगठित।

किन्तु इस सामन्ती वातावरण मे भी पूँजीवाद सिर उठा चुका है। इन गन्दी दूकानो के वीच 'वाट्या' की जूतो की दूकान, जो छातों का व्यापार भी करने लगी है और छोटे-मोटे मोचियों का दिवाला निकाल रही है, इस वात की यादगार है। वही 'वाट्या' साहब जिनके कारखाने भारत के कोने-कोने मे अपना माल पहुँचा रहे है, जो हिटलर के वल से भी अधिक वेग से दुनिया के दूरस्थ अन्ध, नग्न प्रदेशों मे अपनी पताका फहरा रहे हैं, और अपना जूता चला रहे हैं।

इसी गन्दगी के वीच पूँजीवाद की सरकार के कुछ अड्डे है; पुलिस की चौकी, डाकघर, अस्पताल, मिशनरी स्कूल, पल्टन के 'वेरक'। इस प्राचीन पहाड़ी नगर के गन्दे वाज़ार मे यह मानो विदेशी सेना के पड़ाव हों।

वाज़ार से नीचे दृष्टि डालते ही परिवर्तन के शतश. लक्षण दिखते हैं। कोसी के पुल से चढ़ती, वीभत्स ध्वनि करती लॉरियॉ, गैस के जगमग हंडे, जो 'सिविल लाइन्स' मे प्रकाश के द्वीप वनाते हैं, होटल, मोटर कम्पनियों के दफ़्तर, 'टूरिस्ट' और शिक्षित पहाडी नवयुवकों की भीड़भाड़, और अमरीकन संस्कृति का अग्रदूत 'सिनेमा' जिसका एक लघु प्रतिरूप 'वाट्या' के साथ वाज़ार में भी आलोक करता है।

यह गलित, सामन्ती सस्कृति और विषैला पूंजीवाद जो अपना अग्रगामी 'रोल' पूरा कर समाज का, फन्दा वन रहा है और अव रक्त का प्यासा वन गया है—एक दिन अल्मोड़े के वाजार से इनका भी नाम-निशान मिट जायगा और तव हिमालय की रूप-राशि के अनुरूप ही मानव की स्वतन्त्र, निर्मल, शुभ्र संस्कृति यहाँ आसीन होगी।

(४)

रानीखेत की रात

रानीखेत का सदर वाज़ार शाम होते ही गुलज़ार हो उठता है। दुकानो में गैस की वत्तियाँ जगमग करने लगती हैं और सड़को पर एक अजव चमक-दमक छा जाती है। दिन भर के अलसाए सिनेमा-घर मे चहल-पहल हो उठती है और सजधज के साथ एक आमोद-रत भीड वाज़ार मे आ पहुँचती है—रँगे मुंह और रगीन कपड़े पहने।

वजाज़ों और रेस्ट्रॉवालों की विक्री इस समय वढ जाती है। वहुत-से लोग खाने पीने के सामान की तलाश मे निकलते है। इनमे प्रमुख है रानीखेत की वूढी और अधेड़ ऐंग्लो-इंडियन औरतें, जो वारहों महीने यहाँ रहती है और अपने भाग्य को कोसती है।

वाजार मे सव से ज्यादा भीड़ रहती है अगरेजी सिपाहियो की, जो यहाँ लड़ाई और लू की तपन के बाद अपने दिमाग और वदन को तरोताज़ा करने आते है। शाम होते ही इन खाकी-पहने 'टामीज़' की भीड़-की-भीड़ दूलीखेत से निकलती है और सदर वाज़ार मे चील-कौवो की तरह मँडराने लगती है। 'सोलजर्स रेस्ट्रॉ' से नाच के रेकार्डों की मदिर ध्वनि और वीच-वीच मे कर्कश अट्टहास राहगीरों का ध्यान निरन्तर अपनी ओर खीचते हैं। रात होते-होते 'वीयर' की गन्ध से रानीखेत के पथ भर जाते हैं।

दूर क्षितिज पर साँझ के रक्ताभ आकाश मे नन्दा देवी, त्रिसूल, घौलगिरि और बद्रीनाथ के उत्तु ग शिखर पर-खोले बगुलो की पॉत से दिखाई पड़ते है। चीड़ के बन मे शाम की हवा भर जाती है, और समुद्र मे ज्वार आने के समय जैसी खलबली बन मे मच जाती है। चीड़ के पेड़ सॉय-सॉय कर उठते है!

सदर वाज़ार और क्षितिज की पर्वत-राशि के वीच आलोक और अन्धकार की कुछ कड़ियाँ है, जो पूरे दृश्य को एक शृखला मे वॉध देती है!

खड्ड में उतरते बाजार का रास्ता (जहॉ पसारे और नाज-आटे की छोटी दुकानो पर ढिबरियॉ या 'हरीकेन' लालटेने जुगनू-सी टिमटिमाती हैं) दूरस्थ अन्धकार के कूप मे बसे गाँवो मे खो जाता है। इन पातालगामी रास्तो मे पसीने और सड़न की बू उठा करती है और पथिक भूल जाता है कि वह रानीखेत के स्वर्ग मे विहार कर रहा है। इस प्रदेश मे खालिस पहाड़ी जाति बसती है, जिसका रूप कीचड़ मे फूले कमल के समान चमका करता है।

यदि रानीखेत पर हम एक विहगम दृष्टि डाले, तो सदर वाज़ार को आलोक का एक द्वीप-पु ज देखेगे, जिसके चारो ओर उजाले की इक्का-दुक्का चट्टानो को छोड़ अन्धकार का गहरा सागर हिलोर मार रहा है। या हम उसे सभ्यता के अग्रिम सैनिक मोर्चे के रूप मे देखेगे, जिसे चारो ओर से वन खाने को दौड़ रहा हो!

एक पहर रात वीतते-बीतते वाज़ार की वत्तियाँ वुझ जाती है और भयकर सन्नाटा सड़को पर छा जाता है। तब राहगीर के मन पर आदिम-युग का आतक छा जाता है और प्रकृति की शक्तियाँ विराट रूप धारण करके उसे भयभीत करती है। वह सोचता है, प्रकृति दानव के विकराल मुख का ग्रास मैं अब बना, अब बना! पैर फिसलते ही खड्ड के अन्धकार मे उसका अस्तित्व लोप हो जायगा! इसीलिए अधिक रात वीतने पर रानीखेत मे 'टार्च' का जुगनू-आलोक लेकर

राहगीर निकलता है और फूंक-फूंककर पैर रखता है! सुनसान रात के अन्धकार मे यही पटवीजने वीच-वीच मे चमककर विश्वास दिलाते हैं कि आदिम वर्वरता ने एकदम रानीखेत को डस नही लिया है और सम्यता का आलोक अभी भी यहाँ टिमटिमा रहा है।

(५)

नया नगर

उस प्राचीन नगर के पार्श्व मे. उजड़े वीहड देश मे एक नए नगर का जन्म हुआ है! क्रमश एक-एक करके खण्ड-खण्ड पत्थरो से फूट कर तरु-लताओं से लहलहाते अनेक भव्य भवन उठे, और आकाश मे उनके उन्नत मस्तक छा गए।

यह नई नगरी कॉच और लकड़ी से वनी है। पत्थर इसमे नाम मात्र को ही है। सुनहरी और नीले रेशमी पर्दों के पीछे इस रहस्यमयी पुरी का व्यापार छिपा है। इन मकानो की गोल, चमकती खिड़कियाँ पथारोहियो को घूर कर देखती हैं और अन्धकार मे किसी जगली विल्ले की आँखों-सी जल उठती है।

यह टेढे-मेढ़े कुरूप भवन हमारे युग की आत्मा के अनुरूप ही वने हैं। वे इस युग की स्वर्ण मछली के लिए कॉच का केस है।

इस नगरी में पुराने और नए का अपूर्व सम्मिश्रण है। पुराने खँडहर, पीपल और इमली के पुराने पेड़, कुएँ; और यह शोखी भरे होटल, क्लव और वठकें, जहाँ रात भर जुआ चलता है।

नए नगर के एक सिरे पर अमरूद के वाग मे अव भी चरस चलता है। चू-चू चर-मर कर पानी खिचता है, वैल जोर लगाते हैं, एक भारी प्रयास कर चरसवाला चमडे के वडे डोल को ऊपर खीच लेता है और पानी उलट देता है। यह पानी छोटी पतली नालियो मे होकर वाग

भर मे फैल जाता है और पेडो के फूल-पत्ती इस जीवनी-शक्ति को पाकर उल्लसित हो-उठते हैं।

झोपड़ी मे बैठी बुढिया यह रहस्य देखती है, और नही देखती। बच्चे मेड़ पर बैठ कर गन्दा करते है और पेड से बँधा टीन खीचकर एक कोहराम मचा देते है। कौए भयभीत होकर अमरूद के पेडो से काँव-काँव कर भागते है।

बमपुलिस से दुर्गन्धि उड-उड कर हवा में फैलती है और इन ग्रामीणों के फेफडो में पहुँच कर उन्हे सडाती है।

बाग के नीचे कसाईखाने के सुअर अपने कातर, कर्कश नाद से आसमान को गुंज़ा देते है। बाहर कुत्तो और मक्खियो की भीड चोरी और लूट की आशा से इकट्ठी होती है। कुछ खरीदार भी इकट्ठे होते है; टूटे, फटेहाल वूढे, बालक, युवा जो बड़े यत्न से अपनी जेब के पैसे वार-वार टटोलते है। फिर किसी गन्दे झाडन मे हड्डी और गोश्त का कोई छोटा टुकडा आतुरता से घर ले जाते हैं।

सामने मैदान मे गन्दा ढोने वाली अनेक गाड़ियाँ झुटपुटा होने की उम्मीद मे खड़ी रहती है। इन्हे हम लोग 'टाइगर' कहते हैं, क्योकि अँधेरा होते ही यह इस जगल—से उजाड़ शहर मे निकलती है और चतुर्दिक् स्वच्छन्द विचरती हैं। इनके भय से रात मे अकेला आता-जाता राहगीर नाक बन्द करके एक ओर दुबक जाता है। सुबह हम लोग सड़को पर इन 'बाघों' के छितराए मल-मूत्र को देखते हैं और समझ जाते है कि रात मे 'टाइगर' यहाँ बन-क्रीडा मे निमग्न थे।

मैदान से लगी ही मेहतरो की वस्ती है, ठीक उस सुन्दर, नए प्रासाद के सामने जहाँ स्त्रियों का अस्पताल है और नए नगर की सर्व-सुन्दर इमारत है। पतली, कच्ची दुर्गंधिपूर्ण गलियां। कीडो से विलविलाते वच्चे, की-की करते सुअर और कोई अर्द्ध-मानव जाति जो इस विषैले वायुमण्डल मे रह कर भी पनपती है!

कुछ ही दिनो मे नए नगर के सुन्दर अवयवों पर पड़े ये धब्बे हटा

दिए जायेंगे और बीच-बीच का यह ग्राम-देश, यह अन्धकार भरी दुनिया आँख से ओझल हो जायगी। कही दूर ले जाकर इन मेहतरो, कसाइयो, ग्वालो और पशुओं को बसाया जायगा। यह निचली दुनियाँ के प्राणी, पाताल-वासी सभ्य जग की सतह से नीचे छिप जायँगे।

तब यह नगर कितना गुलजार हो उठेगा!

दूर तक लहलहाते हरे भरे खेत, नए भव्य भवन, बाँध पर अनेक बिजलियो से जगमग रेलगाड़ी के डब्बे, रात का आकाश! 'तारों का नभ! तारो का नभ!'

नया नगर कितना आकर्षक है!

सड़क के किनारे पान, सिगरेट, बीडी, मूंगफली आदि की दूकान है, जहाँ आते-जाते बाबू लोग अपनी भूख प्यास मिटा लेते है और कभी-कभी दूकान वाली को देखकर अपनी आंख भी सेक लेते हैं। वह जर्जर-यौवना कभी रूपवती रही होगी, क्योंकि खँडहर बता रहे थे कि इमारत आलीशान थी। लेकिन अब मँहगाई और गरीबी ने अपनी कूँची उठाकर उसके मुंह पर कालिख पोत दी थी।

यह दूकान सडक के तल से नीची है। अन्दर आदमी सिर्फ उकड़ूं बैठ सकता है, न खड़ा हो सकता है, न चल-फिर सकता है।

दूकान वाली के बच्चे सड़क पर खेलते हैं, दो-तीन चार, कौन गिने? पशुओं की तरह अनसोचे ही वे जन्मते है और मर भी जाते है। पिछली बार जब एक छोटा बच्चा एक पलटन की लारी के नीचे दब गया, तो न जाने कहाँ से दूकान वाली का रोना फट पडा! उसका रोना रुकता ही न था! बहुत कुछ उसे समझाया गया. 'रो मत, भगवान और देंगे!' वह सिसकियो के बीच कहती: 'अभी तो वह हँस रहा था, खेल रहा था! और अब? हाय राम!'

इस नगर में अनेक रूपवती स्त्रियाँ, युवक और चिर-शान्ति के अभिलाषी हिमवान् बूढ़े सुबह शाम घूमने निकलते है। उनके हृदय संतोष से भर जाते हैं। यह भव्य भवन, यह नए ढग का फर्नीचर, यह

रेशमी पर्दे, सगीत की मृदु गूंज, यौवन का उल्लास और अन्त मे बुढापे की बुझी ज्वाला! यह नर-नारी अपनी कल्पना के स्वर्ग मे थे। उन्हे निर्वाण मिल चुका था।

वह युवक टेढ़ा हैट लगाए, मुंह पर पाउडर का हलका 'कोटिंग' दिए, सिगरेट के कश खीचता हुआ, 'शार्क-स्किन' का सूट पहने...

वह युवती सुन्दर सिल्क की साडी पहने, शोखी भरी चाल से खट-खट कर पृथ्वी नापती, प्रकृति की ओर कटाक्ष करती, अपनी सुन्दरता से आप ही आतुर......

कितने सुन्दर है वे! कितने भाग्यवान है वे!

किन्तु इस स्वर्ग का धब्बा और कलक वह मेहतरो का मुहल्ला! कीडो से बिलबिलाते और बरसाती मक्खियो की तरह पटापट मरते वे अर्द्ध-मानव! कितने कुरूप है वे! कितने अभागे है वे!

उस नए नगर के आलोक मे छिपे वे दुर्गन्धिपूर्ण गॉव, वे अर्द्ध-पशु और पूर्ण-पशुओ की बस्तिया, मैदान मे खडी वह सरेशाम निकलने वाली मैले की गाडियॉ—हमारे इस नगर-उपवन मे स्वच्छन्द विचरने वाले बन-विलाव, वे की-की करते सुअर आखो के सामने एकबारगी आ जाते है।

इस नए सुन्दर नगर मे उनका क्यो स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर हमे नही मिलता।

(६)

कुत्ती

हमारे चारो ओर विशाल गगन-चुम्बी पर्वत चुपचाप खड़े थे। तलहटी मे एक नीरव सौन्दर्य विखरा था। तीव्र-गामी जल-धारा, घने वन, एकाध नर-नारी किसी धुन मे मस्त इधर-उधर आते-जाते! हमारा हृदय शान्ति से भर गया।

एक कुली पहाड़ी का सहारा लिए एक पल विश्राम कर रहा था। उसकी पीठ कोयलों से भरी एक भारी टोकरी के बोझ से ढक रही थी। उसका मुँह कोयले की धूल से ढका उसके रूप को छिपा रहा था, किन्तु उसका शरीर फिर भी लौह-शलाका के समान कठिन लोचपूर्ण दीख रहा था। उसने एक हाथ से मुँह का पसीना पोछ डाला, फिर लम्बी साँस खीच बोझ सँभाला और फुर्ती से आगे बढ़ा।

इसके पीछे कुलियों की एक लम्बी कतार आ रही थी। कुछ बूढ़े, श्रम-व्यस्त, कुछ सूखे ककाल मात्र; दो-एक निरे बच्चे। वे पहाड़ के सहारे क्षण भर विश्राम करते, फिर लम्बी साँस भर आगे बढ़ जाते।

वे मुँह-अँधेरे ही अपने मटमैले पहाड़ी गाँव से निकलते, पहाड की गोद से कोयला खोदते और धूप चढ़ते-चढ़ते नगर का रास्ता पकड़ते। मार्ग में चु गी का कर देते और जल्दी छूट जाने के लिए घूस; और दोपहर तक नगर मे पहुँच कोयला किसी व्यापारी के हाथ औने-पौने दाम लेकर बेच डालते। फिर खाने का कुछ सामान खरीद शाम को मद थके पैर और शरीर लेकर लौटते। यह उनकी दिनचर्या थी।

हमने सोचा वह, कोयला-मण्डित देव-स्वरूप कुली कोई बड़ा उल्लास मन मे ले घर पहुँचता होगा। कमल-सी पखुड़ियो से बडे पलक वाली कोई रूपवती नवयौवना उसके स्वागत को आकुल हो बैठी होगी। धूल-धूसरित तन लिये पुलकित बालक उसको उमंग से घेर लेते होगे!

हमारे एक पहाडी मित्र कल्पना का धागा तोड़ते बोले :

'तुमने उस कुली को देखा था न। कितना खूबसूरत शरीर है। लेकिन चार दिन का चाँद है यह। शराब पीकर नशे मे चूर वह अपनी औरत को मारता है; लडके भूखों मरते हैं। यह नीच जाति होती हैं ऐसी ही!'

इतने मे पहाड़ के वन मे आग लगी। शरीर गर्मी से झुलसा जा रहा था। हमको लगा—वह आग ही यह गर्मी बरसा रही थी।

हमारे मित्र ने कहा—कोयलेवाले कुली यह आग लगा रहे है। इस मौसम मे कोयला अच्छा बनता है!

(७)

नल

हमारी वस्ती मे एक ही नल था जिसका पानी रुक-रुक कर, यो कहिये, रो-रोकर निकलता था। सुबह-शाम इस नल के इर्द-गिर्द एक भारी भीड मक्खियो की भाँति टूट पड़ती थी, लेकिन नल की धार किसी दुर्लभ चीज़ की तरह मुश्किल से निकलती। दोपहर को पानी एकदम बन्द रहता, क्योकि पानी का सब खिचाव बेलन-गञ्ज के सेठो की हवेलियो की ओर रहता था और वही चुगी के मेम्बर थे। इस कारण टैक्स भी देना उनके लिए जरूरी न था। बस्ती के खुशहाल लोग तो नित नये कलशे खरीद सकते थे, लेकिन हम गरीबो का क्या होता? बस न पूछिये!

एक अजब भीडभाड नल के चारो ओर मँडराया करती। बड़े-बडे लँगोटबाज़ पहलवान—नगधड़ग, औरत-बच्चो को ठेलते, अलग हटाते, बूढे मैले-कुचैले, बदबूदार कपड़े लपेटते, सँभालते, छोटे-छोटे बच्चे, जिनके माँ-बाप मेहनत-मजूरी मे लगे थे, शर्मीली बहू बेटियाँ जिन्हें धक्के खाने की आदत अभी नही पडी थी—सभी चील-कौओं की तरह नल पर मँडराया करते।

जमुनी भी इस भीड़ मे एक ओर दुबकी खड़ी रहती। वह सहमी हुई हिरनी-सी आँखों से अपने डेढ गज घूँघट से बाहर देखने का प्रयत्न करती, लेकिन कदम भर भी आगे बढ़ने पर धक्के लगते और

वह पीछे हट जाती। दोपहर के लगभग भीड़ छँट जाती और तब नल भी किसी मरियल बुड्ढे की तरह अपने अन्तिम साँस लेता। आधा चौथाई घडा भरते-भरते वह अपना दम तोड़ सेठों के स्वर्ग मे विहार करने के लिये चला जाता।

यह नल लाल किले के पास के बड़े बिजली-घर से चलता था। वहाँ दानव के समान भारी-भारी इञ्जिन जमुना के क्षीण सूखते पाट से पानी खीचते, मशीने उसे साफ़-निर्मल बनाकर नलो द्वारा शहर भर मे पहुँचाती। लम्बे-लम्बे टेढे-मेढ़े रास्ते काटता वह हमारी बस्ती तक पहुँचता। तब कही पानी हमे नसीब होता, वह भी जाड़ो मे नही। कभी-कभी मन मे होता है कि इससे अच्छे तो अपने कुएँ ही थे, जब चाहा, पानी निकाल लिया, मीठा साफ, अमीर-गरीब सभी के लिए एक समान; लेकिन उस दिन बाबू जी कहते थे कि दोष मशीन का नही, समाज का है। खैर, होगा किसी का भी।

लेकिन जमुनी जब इतनी दुपहरी को बिना पानी लिये घर पहुँचती, तो उसका आदमी उसे पीटता। वह कहार था। वकील साहब के यहाँ से बारह-एक बजे चौका-बर्तन कर के लौटता, फिर कुछ उलटा-सीधा निगल प्रोफेसर साहब के यहाँ भागता। वहाँ से लौटने मे तीन बज जाते थे। घर पर उसे दाना-पानी न मिलता, तो झुँझलाहट होती। जमुनी दोपहर भर नल के पास काट कर भी कभी-कभी बिना पानी के ही लौटती थी, खाना बनाना तो दूर रहा।

पिटना तो जमुनी बरदाश्त कर लेती, लेकिन गाली वह न सह सकती थी। रामसुख कहता—'किसके पास जा बैठती है, कलमुँही? एक बूँद पानी भी नही ला सकती? तुझे इसीलिए घर लाकर बसाया है?'

जमुनी को पुराने दिन याद आते। बरात, मेला, भीड, ढोल-ताशे, गीत, जेवनार और रामसुख का प्यार। और अब गालियों पर आ बनी थी।

जमुनी ने एक दिन नल तक पहुँचने का सरतोड़ प्रयत्न किया।' चारो ओर से उसे धक्के और गालियाँ मिलने लगी। 'देखकर नही चलती', 'पैर कुचल दिया', 'यह आयी चलके मलका विक्टोरिया'! उसने कुछ परवाह न की, लेकिन मजिल अभी लम्बी थी, नल दूर था। अभी गज, दो गज... .घड़ो की भीड़ उमड़ पड़ी थी। एक धक्का लगा और—जमुनी का घड़ा फूट गया। वह वही बैठकर फफक-फफक कर रोने लगी।

(८)

अन्धी

यूनीवर्सिटी के गर्वोन्नत प्रासादो के सामने जो राजमार्ग दिन-रात फटे जूतो और मोटरों के आघात सहता है, उसके एक किनारे धूल मे वैठी अन्धी वुढ़िया भीख मागा करती है। वह वुढिया विना व्यतिक्रम के हर मौसम मे सुवह से दोपहर तक वहाँ गिड़गिड़ाया करती है।

एक मेला-सा उसके सामने से गुजरता रहता है—यूनीवर्सिटी के छात्र और शिक्षक, वडे सुघड, चिकने-चुपड़े, वडे शिष्ट, मधुर और सौम्य। यूनीवर्सिटी के सिंहद्वार के पास ही किसी हठयोगी के समान वह अपना कठिन आसन नित्य साधती है। उसकी अन्धी आँखे राह के पार शून्य ताकती है और उसके घिसे दाँत और फीके मसूडे बाहर निकले रहते है, किन्तु उसके सतर्क कान पदाघात खूब पहचानते है और याचना का कोई अवसर खोना नही चाहते।

एक क्षण के लिए इन वुद्धिजीवियो की योग-मुद्रा में व्याघात पहुँचता है, पल भर के लिए उनके सुन्दर स्वप्नलोक मे काली छाया पड़ती है, किन्तु पैसा देकर अथवा अपने मन को दर्शनशास्त्र से समझा कर वे आगे वढ़ जाते है—

'संगठित समाज मे भिखारियों का अस्तित्व मिट जायगा। प्लेटो के 'रिपब्लिक' मे कुरूप और पगु व्यक्ति को रहने का अधिकार भी न होगा। व्यक्ति के दान से समाज का रूप नही वदलता, सामूहिक प्रयास ही नये जीवन की सृष्टि करेगा!' आदि-आदि।

पल भर के लिए वुद्धिजीवी के मन को जो ठेस लगी थी, उसका समाधान हो जाता है। पलक मारते जो शका विचार की धारा मे रोड़े के समान अटकी थी, हट जाती है और विचार के सुन्दर वेल-वूटे वनाने में फिर से विचारकर्त्ता लग जाता है। 'इतिहास का क्रम वृत्त के समान है अथवा त्रिकोण के?' और ज्ञान की सीमाओ का विस्तार फिर से चल पडता है।

स्वच्छ नीला आकाश, कञ्चन के थाल-सा सूरज, वसन्ती वायु, पेड़ो का मृदु नर्त्तन, मनुष्य के वनाये ये भव्य मन्दिर और इस सौन्दर्य के शुभ्र पट पर धव्वे के समान यह भिखारिन! हम विचारो की तह मे उस धव्वे को छिपाकर रखने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन वूढ़ी की व्यथा भरी वाणी कान पर और स्मृति पर सुई की नोक की तरह चुभती रहती है।

(९)

इक्केवाला

उस दिन खूव लू चली थी। दिन भर वदन झुलसा था। शाम को हम लोग इक्के पर वैठकर कुछ सामान खरीदने और चाट खाने के लिए चौक चले गये। यूनिवर्सिटी वन्द थी, इसलिए मनमानी कर सकते थे। सोचा, किसी तरह तो गर्मी और लू को भूल सकें।

चौक गुलजार था। घण्टाघर साढ़े-सात वजा रहा था। हवा हल्की पड गई थी, लेकिन फिर भी गरमाहट से झुलसे वदन को सेक

जाती थी। दूकानों पर बत्तियाँ जगमगा उठी थीं। चारो ओर खासी भीड़-भाड थी। सड़को पर इक्के-ताँगो, साइकिलो और एकाध मोटरों का अविरल प्रवाह था। मानो कोई नदी पहाड से उतर कर मैदान की समतल भूमि मे धीर, मन्थर गति से, किन्तु अविराम बही जाती हो। यह भीड की सरिता बिना लक्ष्य के इधर-उधर भटकती थी और इसकी गति तीर की तरह सीधी न होकर मण्डलाकार थी, और आगे न बढ़कर फ़िर-फिर अपने उद्‌गम की दिशा पकड़ती थी। नदी अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढती है; वन उपवनो को सीचकर, अपने दोनो किनारो के देश को धन-धान्य से परिपूर्ण कर सागर से जा मिलती है और एक बार फिर बादल बन कर खेत-खलिहानो पर अपने श्रम-बिन्दु बरसाती है, और उन्हे सोने से लाद देती है। किन्तु यह मानवी सरिता लक्ष्य-भ्रष्ट होकर मरुभूमि में भटक रही थी। इस सरिता के एक किनारे खड़े होकर हम सोच रहे थे, इस प्रवाह पर लड़ाई, मँहगी और अकाल का कोई असर नही! लेकिन असलियत यह न थी।

मेरे एक वकील दोस्त चीनी खरीद रहे थे। सेर-सेर भर चीनी उन्होने दो दूकानो से ली। दूसरे मित्र बच्चो के लिए दवा खरीद रहे थे। 'ग्राइप वॉटर' की दो शीशियाँ चाहते थे, लेकिन एक ही मिली। दाम काफी बढ़ गये थे।

मैं चुपचाप इक्के पर बैठा दीन-दुनिया की बाते सोचने में लगा था। न जाने लड़ाई कब खत्म होगी! कब यूरोप मे दूसरा मोर्चा खुलेगा! कब जापान के खिलाफ कारंवाई शुरू होगी। गेहूँ ढाई सेर हो गया था। कपड़ा खरीदना जान पर खेलना था। छुट्टी थी, मगर कही बाहर निकलना असम्भव था। गाड़ियो मे न मालूम कहाँ की भीड़ उमड़ पड़ी थी। आदमी के ऊपर आदमी टूटता था। एक हफ्ते के लिए बम्बई जाने मे सब दुर्गति हो गई थी।

विचारो की लडी तोड़ते इक्केवाले ने पूछा : "बाबूजी, चीनी किस भाव ली?"

'साढ़े छै आना। और काफी गन्दी और मैली।"

"सभी चीज की मुसीवत है, वावूजी।"

"हाँ भई, मुसीवत पूरी है। इस बार आटे-दाल का भाव मालूम हो रहा है।"

"मुसीवत हम गरीवो की है वावूजी। खाना-पहनना मुश्किल है।"

"कितना कमा लेते हो?"

"कमा तो दो-ढाई लेता हू, लेकिन दो-डेढ़ तो जानवर ही खा लेता है। दाना भी मँहगा, घास भी मँहगी। लेकिन इसे तो पालना ही है, चाहे आप भूखे रह लें!"

"क्यों जी, वाज़ार में सरकारी कपड़ा आया है। क्यों नही उसमे से कुछ खरीदते?"

"कहाँ मारे-मारे फिरें, वावूजी? पेट की चिन्ता-फ़िकर करे या सरकारी दफ़्तरों मे जूतियाँ चटकाते फिरें?"

मैं सोचने लगा, हमारे देश मे नौकरशाही का कैसा रोव है! लोग भूखे मर जायँगे लेकिन सरकारी दफ्तर न जायँगे। सदियों की दुर्व्यवस्था का आज यह विपैला फल निकल रहा है।

इक्केवाला—"वावूजी, सव चीज मँहगी हो गई, लेकिन एक चीज वहुत सस्ती है—आदमी की जान। उसकी कोई कीमत नहीं। जिधर देखो उधर ही आदमी मक्खियो की तरह पटापट मर रहे है।

"हां भाई, हालत काफी नाजुक हो गई है। भूख और रोग लड़ाई से भी वढ़कर आदमी के दुश्मन हो रहे हैं। वगाल मे लोग हज़ारो की सख्या मे मर रहे है। कुछ दिन वाद हमारे यहां भी वही होगा, अगर हमने अपना फर्ज़ पूरा न किया!"

इक्के०—"यही चौक लीजिए, रात भर गुलजार रहता था। अव शाम से ही उजड़ जाता है..." उसने शहर के चकलो का वीभत्स वर्णन करते हुए कहा: "जहां पहले चवन्नी लगती थी, अव दोअन्नी से काम चल जाता है।"

ठीक ही था। सब चीज़ मँहगी हो रही थी; मनुष्य का मोल घट रहा था।

वकील दोस्त के आने पर मैंने उनसे कहा—'This is an old sinner. He talks of women the whole time!'

वकील साहब—"क्यो जी तुम कहा रहते हो?"

"कटरे में ही रहता हूँ, हुजूर।"

"कटरे मे तो हम भी रहते है! तब तो हम लोग पडोसी हुए।... क्यो जी, आज-कल कौन-कौन बाजार जाता है?"

इसके बाद बहुत-से रईसों की बातें हुईं। कौन सँभले, कौन बिगड़े, इक्केवाले ने बताया। वह भी इसी मर्ज मे बिगडा था। पहले तागा चलाता था तो अच्छी कमाई थी। किसी से इश्क हो गया, बस उसी मे वह बर्बाद हुआ। और आज भी लडाई और मँहगी के बावजूद वही रंग उसके दिमाग पर चढा था।

बड़ी दुनिया देख चुका था वह। बड़े घाटो का पानी पी चुका था। फ्रांस घूम आया था। पिछली लड़ाई में 'सप्लाई कोर' मे था' तीन-चार साल पहले बम्बई मे था। गांधी जी का आन्दोलन देख चुका था। दो-एक लाठियां भी खाई थी।

हमने पूछा : "क्या सन् ३० में तुम बम्बई थे?"

"जी, पण्डित मोतीलाल की स्पेशल बम्बई आई थी। मैं भी देखने गया था। बडी भीड़ें थी। गोरो ने भीड पर खूब लाठी चलाई। जिसे गांधी टोपी पहने देखते थे, उसी को पीटते थे। मैंने अपनी गान्धी टोपी उतार कर छिपाई, तब कहीं जान बची।"

कुछ देर बाद : "गान्धी जी ने क्या किया? फिजूल मे लोगो को कटवा दिया।"

हम "गान्धी जी के आन्दोलन ने मुल्क को जगा दिया। पहले तो मानो सोता पडा था।"

इक्के० : "गरीबो का कुछ भला नही हुआ। गरीबो को कौन

पूछता है? वह तो ठोकर ही खायँगे। उनका कोई भला नही करेगा।"

हम : "ठीक कहते हो। गरीबो को अपने पैरो पर खड़ा होना है। अपनी ताकत से दुनिया बदलनी है। दूसरो के मोहताज होकर कभी कुछ नही होता। आज भी अपनी एकता और सगठित शक्ति से तुम सब सकट काट सकते हो। जनता की ताकत के आगे बड़ी-से-बड़ी हुकूमत को झुकना पड़ता है।"

लेकिन इक्केवाले को राजनीति से कोई खास दिलचस्पी न थी। वह किसी पुराने युग का बिगड़ा, मनचला जवान रहा होगा। अब अधेड़ होकर गरीबी और मँहगाई से मजबूर अकाल की आशंका से वह चिन्तित था। पुरानी स्मृतियों को एक बार फिर सहेजते हुए उसने कहा—

"कांग्रेस के जुलूस मे भी बड़ी औरते जुड़ती थी। हम तो मेला समझ कर वहा गये थे। किसे मालूम था कि लाठिया बरसेगी?"

हमने उसे समझाया : "इन बातो को छोड़ो। जब तक सब मिल-जुल कर सगठन नही करते, हालत बिगड़ती ही जायगी।"

उसने सिर हिला कर सम्मति ज़ाहिर की : "ठीक है, बाबूजी।" फिर मानो इन बातों का अन्त करने के लिए घोडा बढ़ाया और स्वर खोलकर गाना शुरू किया : "हॉ-ऑ, पिया मिलन को जाना।"

(१०)

बङ्गाल का अकाल

बंगाल की 'शस्य-श्यामला', 'सुजला' और 'सुफला' भूमि; सोने की धरती, जहॉ इतिहास की श[illegible] का निरन्तर सघर्ष हुआ है; आर्य, मगोल [illegible] फिर प[illegible] मुगल, अन्त मे फिरगी और मराठे, सभी [illegible] भूति [illegible]। प्रकृति का रूप मानो

यहाँ पृथ्वी और आकाश फोड़कर निकला हो! धान के हरे खेत, ताल-तलैये, केले, ताड़ अनन्नास, नारियल, बाँस और कटहल के वन, अनेक नद, सरिता, पर्वतराज हिमालय और सागर की अनन्त जल-राशि। इस वैभव के इच्छुक इतिहास के अनेक डाकू, जगत-सेठ, अलीवर्दी खाँ, पेशवा बालाजी राव, राघोबा, मीर जाफर, अमीचन्द, क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स। इनके विरोध मे सघर्ष करती बगाल की अमर आत्माएँ; लौह शलाका समान उसकी सुदृढ़, चमकीली विद्रोह की शक्ति, सिराजुद्दौला, चित्तरञ्जन, कवि-गुरु रवि ठाकुर।

सदियो पर्यन्त उस सस्कृति का गुरुतर विकास हुआ है, जो आज इतिहास के फन्दे मे पड़कर काल का ग्रास बन रही है, जिसे आज मनुष्य का गढा अकाल और बर्बर फासिज्म मुँह बाए लीलने को आ रहे हैं, जिसकी रक्षा आज भारतीय जन-शक्ति का प्रमुख कर्त्तव्य है!

बगाल के आदिम निवासी जो प्रकृति की शक्तियो से भयभीत उन्हे पूजते थे, पश्चिम से बढते आर्य आक्रमणकारी जो नया उल्लास और नया आह्लाद मन मे लेकर आए थे; उत्तर और पूर्व से छनकर आते पीले रग और तिरछी आँखोवाले मगोल। अनेक जातियो और सस्कृतियो के मेल और सगम का इतिहास। इस विशाल नीव पर निर्मित बगाल की शालीन सामन्ती इमारत। अन्त मे आधुनिक युग का जागरण और अनन्त आलोक। रामभोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानन्द। विज्ञान, साहित्य, सगीत और अन्य ललित-कलाओ का अभूतपूर्व विकास। जगदीश बोस, पी० सी० राय, रवि ठाकुर, नजरुल इसलाम, दिलीप राय, नन्दलाल बोस। बगाल की सस्कृति की भारतीय जीवन पर अमिट छाप।

वह सस्कृति अकाल और बमो की मार से मानो अब काँच-सी टूटी, अब टूटी। लेकिन नही, वह टूट नहीं सकती! वह फौलाद है, अगर हम एक हैं; वह कच्चा धागा नही, मजबूत लोहे की रस्सी है।

उसके पीछे चालीस करोड़ का वल है; अगर चीन की तरह हम भी अपने झगड़ो को भूलकर एक हो जायँ।

वगाल आज डूव रहा है। हर हफ्ते वगाल मे एक लाख आदमी मरते है! आदमी और कुत्ते कूड़े के ढेर पर खाने की तलाश मे एक साथ टूटते है, कुत्ता जीतता है, आदमी हारता है, क्योकि उसके वदन मे नाम को भी जान नही। जीते आदमियो को स्यार गाँवो से घसीट ले जाते है और जीते-जी खा डालते है। मा वच्चो को मुट्ठी भर अन्न के लिए वेच डालती हैं और पुरुष स्त्रियो को। वगाल का अस्तित्व आज मिट रहा है, लेकिन आदमखोर व्यवसायी देश को मरघट वना कर मोटे हो रहे है। नौकरशाही के कान पर जूँ नहीं रेंगती; राष्ट्रीय नेता अव भी जेलो मे वन्द है और वगाल की दलवन्दियो मे कोई शिकन नही पड़ती।

भारत अकाल का देश है। हमने अपने इतिहास मे कितने अकाल देखे हैं! लेकिन हम आज भी उसी तरह खेत गोड़ते है और बीज वोते है, जैसे चार हजार वर्ष पूर्व हमारे पुरखे। विज्ञान के आविष्कारों का हमारी खेती-वारी पर कोई असर ही नही हुआ! लेकिन रेल, नहर और तारो के जाल ने अकाल की मार कुछ कम जरूर कर दी।

सूखा पड़ा, वाढ आई, लाखो मरे! इस वार न सूखा, न वाढ। आदमी का वनाया यह अकाल है। नफाखोरो के स्वार्थ का गढ़ा यह अकाल है! क्लाइव के सिपाहियो की तरह चावल का माड़ पीकर आदमी जीते है! मक्खियाँ अथवा टीड़ी-दल की भाति वह मरते है, किन्तु यह नरमेध करके अन्न के चक्रवर्ती दुनिया में अपना सिक्का चलाते है।

अव फिर वगाल के आकाश मे फासिस्टो के विमान मँडराने लगे। मुर्दे सूंघकर मरघट मे चील-कौए और गिद्ध उतरने लगे। उनके लिए यह स्वर्ण अवसर हे।

अगर चालीस करोड़ की संख्या मे कुछ वल है, तो उसकी आज जरूरत है। रवि ठाकुर का देश, कविता, संगीत और सभी ललित

कलाओं का देश बंगाल आज डूब रहा है! हमारा संयुक्त बल ही उसे उबार सकता है।

(११)

सीमान्त पूर्व

आसाम, भारत का पूर्वी सीमान्त देश! जहाँ इतिहास की अगणित जातियाँ छन-छन कर आईं, किन्तु किसी बरसाती नदी की बाढ़-सी, उन्माद-भरी ब्रह्मपुत्र-सी कोई आततायी विदेशी जाति कभी न आ सकी। भारत का पूर्वीय सिंहद्वार, जो कभी किसी आक्रमणकारी के लिए पश्चिमी सीमान्त की भाँति नहीं खुला। अटल हिमाचल का ध्रुव जागरण, जिसे कभी कोई चोर या डाकू न लाँघ सका। विश्वस्त प्रहरी, अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा में सदैव सजग, सदैव सचेत।

तुम्हारा सुन्दर वन-पर्वत देश मुझे याद आता है। तुम्हारे बाँस, कटहल और केले के वन, लघु-लघु पहाड़ियाँ जिन पर चाय के हरे-भरे बाग लहलहाते हैं, किन्तु जिनका शोषण मानव-कीटाणु निरन्तर करते है। पहाड़ी नद जो केहरि की भाँति गरजते, मस्त चाल से चले जाते हैं, किन्तु जिनके विशाल वक्ष पर भी विश्वकर्मा-से कुशल मानव ने लोहे के सेतु बाँध दिए हैं। निरन्तर बादलों का तुमुल रव, गड़गड़ाहट, वर्षा की रिमझिम, धूप और छाँह की आँख-मिचौनी, प्रलय के पारावार सी बाढ।

तुम्हारे रूप की अनेक स्मृतियाँ मन में उमड़ती हैं और उसे मथ डालती हैं।

तुम्हारे सरल-हृदय, श्याम-वर्ण निवासी, किसी परम आदिम जाति के वारिस, द्रविड़ अथवा मंगोल रक्त से पुष्ट और सशक्त, जिन्होंने विश्व-विजयी आर्यों की पताका भी एक बार झुका दी!

स्मृतियो से अभिषिक्त मणिपुर, नाग-कन्या उलूपी, चित्रांगदा और बभ्रुवाहन जिन्होंने धनञ्जय का गर्व भी एक बार धूल मे मिला दिया; जहाँ प्रचण्ड आर्यों के विरचित अश्वमेध का दिग्विजयी अश्व भी बन्दी हुआ।

आसाम का कला-कौशल भारत का गर्व है। मणिपुर का संगीत और नृत्य हमारी चिर-सचित थाती है। कथ्थक और कथाकाली के साथ मणिपुर की कला-परम्परा ने आधुनिक भारतीय नृत्य की सृष्टि की है।

प्राचीन स्मृतियों और कथाओ का देश आसाम आज संकट में है। भारत की प्राचीनतम जातियो के देश को खाने की लालसा से आज काल ने मुँह खोला है।

आज पूर्व और पश्चिम दिशाओ में वामन के विराट् आकार-सा फैलता बंगाल का अकाल उसे लीलने आ रहा है! आज सीमान्त लांघ कर उसी सुन्दर पुण्य-भूमि को रौंदने दूर द्वीप के बौने निकल पडे है।

अगणित सदियों से स्वाधीन मणिपुर, भारत का सीमान्त आसाम क्या आज आततायियों के सामने सिर झुकायेगा? क्या आज आसाम की धवल, शुभ्र स्वाधीन परम्परा एक वार फिर मलिन होकर धूल मे लोटेगी?

आसाम की वीर जातियाँ निरन्तर शत्रु से लड़ी है। आसाम की वीरागनाएँ अपने पराक्रम से पुरुषों को लज्जित कर चुकी है। चित्रागदा के समान ही अनन्य साहस से रानी गिडालो ने ब्रिटिश-साम्राज्य से मोर्चा लिया। आसाम के वीर हमारे स्वाधीनता-सग्राम मे सदा आगे रहे है और आज भी हमारा उत्साह वढाते है।

काग्रेस का तिरगा आसाम के आकाश मे गर्व से लहराता है। गोहाटी मे काग्रेस का अधिवेशन धूम-धाम से हुआ। पाण्डवो के पद-चिन्हो का अनुसरण करते हुए अनेक प्राचीन और अर्वाचीन महाश्रमण

यहाँ आए। इनमें ही महात्मा गाधी और प० जवाहर लाल नेहरू है, जिनके भावुक हृदय आसाम के प्राचीन वैभव और रूप-राशि और उसकी आधुनिक पीडा से द्रवित हुए। मुस्लिम जातियो के लिए आसाम की विशेष महत्ता है। इसी पूर्वी सिंहद्वार से बर्बर शत्रु हमारे सुन्दर देश मे घुसकर उसे कुचलने का इच्छुक है।

आज आसाम के वीर हमारे मोर्चे के अग्रणी हैं। भारत के अन्तिम आक्रमणकारियों का सिर वही नीचा करेंगे।

(१२)

अमलतास

मेरे घर के पास सेना का एक डिपो है, कँटीले तारो से घिरा, मटमैला, कुरूप। उसके अन्दर चारो ओर अनेक तरह का सामान भरा पड़ा है, नहाने के टब, लोहे के बर्त्तन, खाटें; तम्बू, बोरे, टोकरियाँ, बाल्टियाँ—आसमान तक चिने हुए, वर्षा, घाम और सर्दी के निरन्तर शिकार। फ़ाटक पर एक लाल तख्ती टँगी है जिस पर लिखा है: Stop (ठहरो), किन्तु किसी उद्दाम सरिता की गति से मोटर लॉरियाँ और 'वेलर' घोड़ों द्वारा खिंची गाड़ियाँ, हुँकार भरती, सड़क को कँपाती निरन्तर इस फाटक से गुजरती हैं। एक विचित्र हलचल इस सरकारी अड्डे पर रहती है। सुबह आठ बजे घंटी बजी, और कुलियो की एक भीड़ दौड़ती हुई फ़ाटक के अन्दर घुसती है। दोपहर को एक बजे छुट्टी होती है और उस समय, जो दो-एक खोमचेवाले यहाँ रहते हैं, उनकी खूब बिक्री होती है। शाम को पाँच-साढे पाँच बजे थके पैर यह लोग घर की ओर मुड़ते है।

हम सोचते है दूर किसी सेनास्थल पर यह सामान जायगा, लिबिया की मरुभूमि अथवा बर्मा के जंगलों मे। हमारे देश की सीमाओं

पर जो शत्रु घिरे हैं, उन्हें हटाने की यह तैयारी है। किन्तु मशीन के कल-पुर्जे जैसे काम करते हों; जिनमे प्राण नहीं, इच्छा-शक्ति नहीं! इस प्रयास में जान डालने के लिये यह आवश्यक है कि देश की संगठित शक्ति इसके पीछे हो; राष्ट्रीय नेता इसके संचालक हो! जिससे एक बिजली-सी इस प्रयास में भर जाय। और इसके लिए राष्ट्रीय एकता आवश्यक है।

किन्तु एक सरकारी रवैये से यह काम चलता है, चक्की की तरह, धीर, मंथर गति से, बिना किसी आकुलता और अधीरता के। मानो पिनें बन रही हो, तलवार नहीं। एक कुरूपता, मटमैलापन इस पूरे डिपो पर छाया है, मानो यह कोई रेगिस्तान हो, और यहाँ हरियाली का नाम-निशान भी न हो। यह सरकारी काम होते ही ऐसे है, अनाकर्षक और भद्दे।

एक दिन मैंने अनायास ही देखा कि फाटक से बिलकुल सटा ही एक अमलतास का पेड़ फूला है और मैं रुककर उसे देखने लगा। पूरा पेड़ पीले फूलों से लदा था, पत्तियाँ उसकी सब झर गई थी। इस वीरान में वह अग्नि-शिखा की तरह चमक उठा था। यह अमलतास इस दफ़्तर मे क्या कर रहा था? सरकारी दफ़्तर मे यह कैसी विडम्बना? ऊसर मे यह कैसी स्वाति की बूंद?

और मेरा मन उल्लास से भर गया। यह अमलतास इस वन-प्रदेश मे आशा का अंकुर फूटा है। जनता की शक्तियाँ बल पकड रही है। मानव स्वाधीनता के शत्रु हार रहे है। हमारे देश मे भी आलोक होगा, शव के चतुर्दिक् घिरे गिद्धो की टोली-से शत्रु भागेंगे और देश की जनता के हाथ मे शासन की बागडोर होगी! मानों हमारे देश की आत्मा ने यह केसरिया पहना है!

उस अमलतास के पेड़ को देख मेरा मन पुलकित हो उठा। वन-प्रान्त मे संगीत की लहर से, मरुभूमि में जल के कण-से, कुरूपता के पथरीले गढ़ मे ये अमलतास के फूल खिले थे!

(१३)

एक डायरी के पन्ने

४ अगस्त १९३९। पानी मूसलाधार बरस रहा है। बाहर चरवाहे गला खोलकर बिरहा गा रहे है। एक अजब सरूर मेरी आत्मा पर छा गया है। मैं झूम-झूमकर गुनगुनाता हू : 'एकाकिनी बरसातें'। मेरे मकान के बाहर ताल मे बटु-समुदाय वेद-पाठ करता है। वह जेठ की विकट गरमी; वह आषाढ का 'पके जामुन के रग-सा पाग'; और अब सावन-भादो की यह शीतल, कमल की पँखुडियो सी रिमझिम, और घन की चोट-सी मूसलाधार बरसात।

अनेक चित्र मेरे मन में बनते-बिगड़ते है। हिटलर की तानाशाही ...युरोप पर आतक एक के बाद दूसरे देश की स्वाधीनता का अन्त .चीन . स्पेन .अबीसीनिया. .आस्ट्रिया चकोस्लोवाकिया.. आलवेनिया. . .मानव की कुण्ठित आत्मा . .All Quiet on the Western Front की प्रतियो की होली .म्यूनिक की घूस। ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का प्रपञ्च और आज उनकी घबराहट... फिर भी रूस और समाजवाद के प्रति भय और संशय . . .अन्त मे शतरञ्जी चालों मे चेम्बरलेन की पूर्ण पराजय..

कॉलिज केदिन। फुटवाल के मैच। छात्रो का उत्साह। शिक्षको की परीक्षक बनने के लिये चाले। और बाकी वही बेमानी, बे-सर-पैर की बाते कौन किस लड़की अथवा लड़के के साथ बात कर रहा था? किसके कपड़े ज्यादा कीमती है? मानो ससार-व्यापी लोमहर्पण युद्ध के बादल आकाश मे घिरे ही न हो! मानो वेल्स की भविष्यवाणी The Shape of Things To Come से उनका कुछ सम्बन्ध ही न हो। और यह युद्ध इस पृथ्वी की सस्कृति नही ,वरन् शुक्र,

शनि अथवा मंगल आदि किसी दूरस्थ ग्रह-उपग्रह की संस्कृति को नष्ट करेगा !

४ सितम्बर १९४०। युद्ध को एक वर्ष हो गया। इस बीच बहुत-कुछ उथल-पुथल और विचारो मे रद्दोबदल हुआ है। फासिस्ट सेनाएँ युरोप पर हावी हैं, मानो उनकी गति मे कोई प्रतिरोध पड़ ही नही सकता। पुराने साम्राज्यवादो की जडें हिल रही है। दीवारो के पीछे छिपकर लड़ना असम्भव हो रहा है। यह युद्ध प्रगतिशील है। वायुयान और टैंक इसके वाहन है। पेट्रोल इसकी जीवन-शक्ति है। पुराने पढ़े तोते इस युद्ध मे ठीक नेतृत्व नही कर पाते। वे पुराने सबक ही नही भूल सकते।

इस भूकम्प सागर मे समाजवाद की दृढ़ नीति ही हमारा अवलम्ब है। शोषित मानव साम्राज्यवादो के सघर्ष से अलग रह कर ही जी सकेगा और पनप सकेगा।

भारत मे घोर दमन। कांग्रेस की अकर्मण्यता। व्यक्तिगत् सत्याग्रह का खेल। कम्यूनिस्ट पार्टी का गैरकानूनी जीवन। रात मे भाग-दौड़ और मीटिंग, पकड़-धकड़। देवली। सामाजवादियो की विराट नज़रबन्दी।

एक विरसता और ग्लानि का भाव मन में पैदा होता है। मानव की इस अभूतपूर्व बलि का क्या फल होगा? इतिहास की शक्तियाँ मनुष्य को किधर घसीट रही है? उनका स्वामी होने के बजाय आज वह उनका दास बन गया है।

२२ जून, १९४१। अल्मोड़े के गर्मी भरे दिन। नगे लाल पहाड़ो की घाटियो मे हवा टकराया करती है, किन्तु कोई स्निग्धता अथवा शीतलता उसमे नही। वही हवा गर्मी से झुलसे मैदानो में लू बन जाती है और दोपहर मे बाहर निकलने वालो को भून डालती है। हम बराडे मे बैठकर हवा की लहरो मे डूबना चाहते है, लेकिन

लहरें दूर-दूर से ही लौट जाती है। देवदार के पेड़ों मे हवा की सनसनाहट भरती है और उसे सुनकर हमारे कान शीतल होते है।

दोपहर के लगभग अखबार आया। उस दिन की खबर पढ़ कर हम सन्नाटे मे आ गये। जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी।

फासिज्म ने आखिरकार अपने जन्म को सार्थक किया! जिस कारण पूंजीवाद ने उसे लाड-प्यार से पाला-पोसा था, उसका फल आज मिला। लेकिन आज पूंजीवाद स्वयं दो दलो मे बँट रहा था और एक की हार दूसरे की जीत न होगी, क्योकि जनता का प्रभाव युद्ध की गति पर अधिकाधिक गहरा होता जायगा।

आज प्राण-पण से हम फासिज्म की पराजय चाहते है, क्योकि उसने समाजवाद के दुर्ग पर हथियार उठाने का दुस्साहस किया है।

७ मई १९४२। प्रयाग मे ऑल इण्डिया कॉग्रेस कमेटी की बैठके हो रही है। शाम होते-होते भीड़ का हजूम टैगोर-नगर मे एकत्रित होता है और खुले मैदान मे, कलापूर्ण वातावरण मे बैठकर राष्ट्रीय नेताओ के भाषण सुनता है। इन जोशीली स्पीचो की एक ही टेक है : ब्रिटिश साम्राज्यवाद बालू की कच्ची दीवार है। जापान के एक ही धक्के से वह हिल चुकी है। हमने एक धक्का दिया और वह गिरी। प० गोविन्दवल्लभ पन्त के भाषण मे यह बात खुले तौर से थी। प० जवाहरलाल नेहरू भी कहते थे कि यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद बड़ा खोखला निकला। एक अजब हैरत और अचम्भा हम इस छोटी कांग्रेस में देखते थे कि ताश के पत्तो की तरह अँग्रेजों के साम्राज्य का किला गिर रहा था।

क्रिप्स प्रस्ताव कांग्रेस ने नामंजूर कर दिया था। प० जवाहर लाल नेहरू ने 'ग्रोरिला' लड़ाई का जिक्र किया था और फिर गान्धी जी के कुछ वक्तव्यो के कारण अपने सीग अन्दर खीच लिए थे। जापान भारत की सरहद पर था। प्रगतिवादी नेता कहते थे, उनसे मोर्चा लेना

ज़रूरी है। वे जातियो को आत्म-निर्णय का अधिकार देने के पक्ष मे भी थे।

परिस्थिति बडी जटिल और उलझी थी। इस धुँआधार अँधेरे मे हाथ मारा न सूझता था। हम बहे चले जा रहे थे। शायद शीघ्र ही चट्टाने हमे चकनाचूर कर देगी। एक हल्की लौ जो दिल्ली मे चमकी थी, प्रयाग मे बुझ चली।

'२६ मई, १९४२। दिल्ली मे अखिल भारतीय फ़ासिस्ट-विरोधी लेखक कान्फ्रेन्स हो रही थी। इस कान्फ्रेन्स के नाम बडे, दर्शन छोटे थे। हाँ, हिन्दी और उर्दू के लेखको की यहाँ अच्छी भीड़ थी। कुछ लेखक प्रत्येक कान्फ्रेन्स मे पहुँचना अपना फर्ज भी समझते हैं। ऐसे लेखको ने छूटते ही पूछा—"हमे फासिज्म से क्या मतलब?" वे केवल कविता सुनाने आये थे। हरेन चट्टोपाध्याय अपना प्रारम्भिक भाषण देने के समय न जाने कहाँ थे। जो विभूतियाँ फासिज्म से टक्कर लेने के लिए आतुर थी, उनमे वात्स्यायन, कृष्णचन्द्र, सज्जाद जहीर, शिवदानसिंह चौहान, डा० अलीम, अली सरदार जाफरी, मजाज आदि प्रमुख थे। किन्तु हम इस विचार से सान्त्वना और सुख पाते थे कि छोटे आरम्भ से ही बडे फल निकलते है।

इस बीच हमे धूप, लू, गर्मी, पसीना, भाग-दौड़, बेवक्त खाना-पीना और काफी-हाउस में अगणित काफी के प्यालो की याद ही अधिक ताज़ी है।

रेडियोवालो ने हमारा मुशायरा अपने कब्जे मे कर लिया। उन्होने ही कविताओ का सकलन और सम्पादन किया और कवियो को खुश और नाराज किया। इस प्रहसन के लिए हमे रेडियो के कर्णधारो का आभारी होना चाहिए।

७ अगस्त १९४२। "एकाकिनी बरसात" फिर घिरी है। काले बादल अकाश मे घिरते आते है बरस पडते हैं और एक बार फिर घिर आते हैं। भारत के राजनैतिक आकाश मे भी काले बादल घिरे हैं।

वम्वई मे ऑल-इण्डिया-कांग्रेस-कमिटी की वैठक हो रही है। कांग्रेस जापानी फासिज्म के विरुद्ध देश की रक्षा करना चाहती है और इसके लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से ताकत छीनना चाहती है। बिना हथियारो के देश की रक्षा सम्भव नही। हथियार हमारे पास है नही। उन्ही के लिए हमे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ना होगा। यह कांग्रेस की दुविधा है। हम जिसके विरुद्ध देश की रक्षा का वीड़ा उठा रहे हैं, आज हमारा हर कदम मानो उसकी मदद करता है। देश की रक्षा के लिए जो आन्दोलन हम तैयार करते हैं, वह देश-रक्षा असम्भव कर देता है।

एक कच्चे धागे से तलवार हमारे सिर पर लटक रही थी। उसके वोझ से धागा कट रहा था। हमने मानो उस धागे को सहारा देने के लिए एक तलवार ऊपर उछाली।

२६ मई १९४३। परिस्थिति बिगडती ही जा रही है। हर चीज मँहगी। हमारे ऐसे मध्य वर्ग के लोगों की मुसीवत हो गई है, गरीवो की क्या कहे! अकसर वाजार मे गेहूँ नही मिलता, ज्वार और बाजरा खरीदना पडता है। हर चीज के दाम चौगुने-पँचगुने हो रहे है। घी-दूध नसीब ही नही होता। दूध कम-से-कम वच्चो के लिए तो जरूरी है। तेल के दाम वढ़कर घी के बरावर हो गये। दालदा पर जीवन-रथ चलता है अब तो। लेकिन वह भी आठ रुपए का टीन हो गया। दोस्त कहते है, दुवले हुए जा रहे हो! मैं जवाव देता हूँ : "दालदा!" फिर भी हम दालदा का आभार मानते हैं; कम-से-कम उसके कारण खाने मे कोई गन्दगी तो नही आती और स्निग्धता तो मिलती ही है।

इस युद्ध ने पहली वार हमारे देश को उन आपत्तियो से परिचित कराया है, जो साम्राज्यवाद दुनिया पर लादता है। यह भी एक तरह से अच्छा है, क्योंकि यह दुनिया की जनता के लिए हमेशा को चेतावनी होगी।

हमारे देश की हालत भी सचमुच दयनीय है। हमारी नाव की

पतवार दूसरो के हाथ में है और हम असहाय चट्टानो की ओर वहे चले जा रहे हैं।

४ अगस्त १९४३। आखिरकार नाव चट्टानो से टकरा ही गई। हमने उस शक्ति और सूझ का परिचय न दिया, जो परिस्थिति हमसे माँग रही थी।

वगाल मे अकाल। मनुष्य मक्खियो की तरह दिन-प्रति-दिन मर रहे हैं। और हम कुछ नही कर पाते! यह मनुप्य का गढ़ा हुआ अकाल है, सूखा-पानी से इसका कोई सम्बन्ध नही। देश मे अन्न है, लेकिन अन्न-पीड़ितो तक नही पहुँच रहा। अनाज-चोर से लडने के लिए हिन्दू-मुस्लिम जनता एकतावद्ध और सगठित नही है।

असल में वात यह है कि हम वहते ही जा रहे है, और चट्टानो से टकराकर भी हमे कोई समझ नही आती। अगर हमने दृढ़ सशक्त हाथो से नाव की पतवार सम्हाल नही ली, तो मलाया और वर्मा की अवस्था हमारी भी होगी।

हमारे सुन्दर देश मे प्रकृति का आज भी पट-परिवर्त्तन होता है। सुनहले वादल सुवह-शाम आकाश मे छा जाते है, रग की होली मचती है। लेकिन हमारे मन मे एक घना अवसाद भर गया है, एक घनघोर विरसता वरसात के वादलो की तरह आत्मा पर छा गई है। हमे आज 'एकाकिनी वरसात' नही सुहाती।

४ सितम्बर १९४३। युद्ध को छिड़े चार वर्प हो गये, किन्तु हमारी हालत उत्तरोत्तर विगड़ती ही गई है। वगाल का अकाल फैलता जा रहा है। इस तूफानी सागर मे नाव को हम अव विना लक्ष्य भटकने नही दे सकते। आखिर को हमे कम्यूनिस्टो की वात माननी ही होगी। आत्म-निर्णय के आधार पर जातियो में समझौता कर एकता के अस्त्र से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुर्ग पर हम हमला करेगे, तभी हमारा संकट मिटेगा। यही रास्ता राष्ट्रीय सरकार वनाने का है, और विना राष्ट्रीय सरकार के हमारा त्राण नही।

(१४)

नानी का घर

हमारी नानी का घर बादशाही-नाके पर काफी अन्दर गली मे था। इस गली में सड़न, बदबू और सील का बोल-बाला था। दूर बाजार से दबा-दबा कोलाहल दिन-रात उड़ कर हवा में छाया रहता—ट्रामो की टन्-टन् घन-घन, फेरी वालो की बोलियाँ और असख्य मनुष्य-कठो से निकली अनवरत भनभनाहट। गली मे लोहारो की दूकाने थी; इन दूकानो की ठन्-ठन् निरन्तर कानो मे भुकती और आधी-रात बीतने पर ही मानो घोर अनिच्छा से नगर निस्तब्ध होता।

हम अपने मध्य युग के छोटे कस्बे से इस पूंजीवादी वातावरण की हलचल मे आकर खो-से गए। घर से बाहर निकलते ही मनुष्यो का वियावान जगल जैसे खाने दौड़ता हो! कानपुर के कोलाहल से, सामन्ती नीरवता के अभ्यस्त, हमारे कान के पर्दे फटे जाते थे। नानी का घर शान्ति का एक द्वीप था, जिसके चारो ओर क्षुब्ध, अशान्त मानवी सागर हिलोर मार रहा था! किन्तु कुछ ही दिनो मे हम इस वन मे निरन्तर चक्कर काटती ट्रामों को 'बाँध-के' पुकार कर रोकना सीख गए। हमारे कान नगर के कोलाहल के धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गए। इस वन की पगदडियो को हम पहचानने लगे।

हमारे नाना जो किताबो का कारबार करते थे, अच्छे समृद्ध प्राणी थे। एक जमाने मे वे रेलवे मे कर्मचारी थे, किन्तु नौकरी से इस्तीफा देकर व्यवसाय मे लगे और जल्दी ही किताबों के धन्धे मे कानपुर के प्रमुख नागरिक बन गए। लेकिन नाना जी का स्वभाव शुरू से ही तग-दस्ती का आदी हो गया था और अब नई समृद्धि मे भी बदलने मे असमर्थ था। अतएव उनका पविार इस लौनी-खाए, सील-भरे, गलियो मे खोए मकान मे रह कर सतुष्ट था और किसी दूसरे

से मैं स्वयं इतना रुष्ट था, उनको देख कर इतना हृदय क्यो उमड़ता था, यह मैं समझने में आज भी असमर्थ हूँ।

उस अन्धकार-पूर्ण वातावरण मे कितनी सकीर्णता, अनुदारता और कठोरता वद पडी थी, किन्तु जीवन के किसी कोने मे, संघर्ष-आहत मातृ-स्नेह की स्मृति भी निहित थी और अनायास ही, अयाचित क्षणो मे वरबस ही बाहर निकल पड़ती थी।

(१५)

बुद्धिजीवी

मेरे मित्र लज्जा शकर यूनिवर्सिटी मे दर्शन के अध्यापक थे। साहित्य से उनको विशेष रुचि थी। वे स्वय कविता लिखते थे और नशीली-सी आँखो से साहित्य-सवन्धी वातें करते थे। जीवन के प्रति उनके उच्च आदर्श थे; छोटी बात वे मन मे लाते तक न थे। अतएव सभी उनके मीठे स्वभाव और हँसमुख व्यवहार से प्रसन्न थे।

मि० लज्जा शंकर यूनिवर्सिटी के शिक्षक का पद समाज मे वहुत समझते थे। वे आई सी० एस० वालो, हाई कोर्ट के जजों और बड़े राजनैतिक नेताओ से वरावरी के दर्जे मिलते थे; उनके घर जाते और उन्हे अपने यहा वुलाते थे। अच्छा खाने-पीने मे उनका विश्वास था। आए-दिन उनके घर दावतें हुआ करती थी।

किन्तु उनका वेतन कम था। अतएव उनके वजट में खीचा-तानी रहती। अकसर ही वे ऋण-ग्रस्त रहते। उनके लिए तो यह जरूरी था कि साफ कपड़े पहिने; वर्ना सभा-सोसाइटियो मे मुँह कैसे दिखाते? लेकिन घर के अन्दर हालत खराव थी। वीवी-वच्चे फटे-हाल रहते; मुश्किल से वाहर निकल पाते। लडका स्कूल भी सकोच से जाता। दावतो के लिए पत्नी को अकसर चूल्हा फूँकना पड़ता। वह खूव ही झल्लाती। जितनी ही प्रोफेसर साहव की घर के वाहर इज्जत थी उतनी

ही घर में हेटी होती। कभी-कभी श्रीमती जी झल्ला कर ज़ोर से बोल पड़तीं, और उनका कर्कश स्वर बैठके मे पहुँच जाता। तब प्रोफेसर साहब का मुँह लाल हो जाता और ऊचे सरकारी ओहदेदारो के साथ समानता का उनका स्वप्न भग हो जाता।

किस मुँह से वे सामाजिक नेतृत्व का ढोग भरते! इस विचित्र लड़ाई मे सैनिक तो खेत ही रहे थे, किन्तु मोर्चे के पीछे हालत और भी खराब थी। भूख से, रोग से, मक्खियो की तरह लोग पटापट मर रहे थे। कुछ लज्जावश आत्मघात कर लेते थे। यह हालत बगाल की ही न थी, अन्य सूबो की ओर भी कहत बढ रहा था।

प्रोफेसर साहब राजनैतिक प्राणी न थे। किन्तु वे इस दुर्व्यवस्था से बड़े असतुष्ट थे। अनेक बार अपने उच्च-पदाधीश मित्रो से वे लड़ पड़े थे। गोरे-काले के भेद से वे बहुत तिलमिलाते थे। वे यह तो न समझते थे कि पुरानी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था लड़ाई का भार सम्हालने मे असमर्थ थी और टूट रही थी। किन्तु वे इतना अवश्य समझते थे कि घूस का बाजार कभी राष्ट्रीय सरकार गर्म न होने देती; चोर बाज़ारी वद कर देती।

उनके पास न मोटर थी, न अर्दली-चपरासी। आज-कल नौकर चाकर रखना भी मुश्किल था। लड़ाई क्या थी, काल था। बाज़ार मे कोई चीज़ न मिलती थी। लकड़ी के दाम आसमान छू रहे थे; कोयला मिलता न था। कपड़ा बाज़ार से गायब हो गया था। सफेदपोशी तक का स्वाग वनाए रखना असम्भव था। हर चीज़ के दाम चौगुने-पँचगुने हो गए थे।

सरकारी मित्रों से मनमुटाव हो जाने पर प्रोफेसर साहव खिन्न-चित्त रहने लगे। न उनका मन पढ़ाने मे लगता, न पढ़ने मे। उन्होने कविता लिखना भी वद कर रक्खा था। कहते थे, न जाने आज-कल क्यो मन भारी सा रहता है! अव वे उच्च कोटि के न व्याख्यान देते, न निवंध लिखते।

जीवन की कल्पना भी न करता था। अनेक वर्ष बाद जब मामा जी ने किताबो का काम बन्द कर के फाउन्टेन पैन बनाने शुरू किए, दूसरा मकान किराए पर लिया और एक पुरानी मोटर बॉध ली, तो सभी ने उनके दुस्साहस पर दाँतो-तले उँगली दबाई।

नानी का घर किसी प्राय द्वीप के समान तीन ओर नालियो से घिरा था। घर कच्चा था, उसमे न नल था, न बिजली। नीचे के खड मे एक किराएदार रहता था और दूकान का सामान बन्द पड़ा था। पानी नीचे कुएँ से खीच कर ऊपर चढाया जाता। नानी के घर का नियम था कि जो भी ऊपर आता हो, एक कलशा पानी खीच कर अपने साथ ऊपर लेता आवे। इस साम्यवादी सहयोग से पानी की समस्या हल हो गई थी।

घर के सामने एक पाठशाला थी। यहाँ दिन भर लडके पढते, शोर-गुल करते, मुर्गा बनते और मार खाते। उनका स्वर लोहारो की ठन्-ठन् से प्रतिद्वन्द्विता करता और मोहल्ले मे कोहराम मचाए रखता। शाम को जब सूर्य की आभा फीकी पड़ जाती, लड़के इस कठिन कारागार से मुक्ति पाते और 'पडित जी चरण छुई, भैया जी राम-राम' के हर्ष-सूचक नाद से नगर की अन्ध-गलियो मे बिखर कर खो जाते।

नानी के घर मे हम एक वर्ष के लगभग रहे। ट्राम की पटरियो के सहारे-सहारे स्कूल जाते और उन्ही के सहारे शाम को लौटते। इस विशाल नगर के बियावान मे यही पगदडियाँ हमे पथ-भ्रष्ट होने से बचाती। दैनिक 'प्रताप' और 'वर्त्तमान' के नारे, मक्खन-गोली बेचने वालो की पुकार और रंग-बिरगे स्वर कानो मे भर जाते और रात-दिन गूंजते रहते।

नानी के घर का वायुमण्डल पूर्णतयः सामन्ती था। इस पारिवारिक जीवन का सब स्नेह, सब कोमलता सदियो के आघात से जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे। कोई रस या स्निग्धता इस सम्बन्ध-सूत्र मे न रह गए थे।

सुबह चार बजे से उठ कर लँगडी माँई चक्की पीसना शुरू कर

देती। यह माँई कभी अवश्य सुन्दर थीं, किन्तु मार-पीट कर उनकी कमर तोड़ दी गई थी। चक्की के कर्कश संगीत से सुबह हमारी आँख खुलती। नानी बूढ़ी हो चुकी थी, किन्तु स्वयं अपने हाथों खाना बनाती थी। उनका बदन ताड़ के समान सीधा और पुष्ट था। उनके स्वभाव का मीठापन जीवन के आघात बर्दाश्त न कर सका और उस पर यथार्थ के सघर्ष की क्रूर छाया पड़ गई थी।

अपने हम-उम्र मामा जी से हमारी खूब लड़ाई होती। इन मामा जी की एक आँख शीतला माँ की कृपा से खो चुकी थी, अतएव नाराज होकर सभी उन्हें "काना" कहते। शायद यह अपशब्द सुनते-सुनते उनके मन मे भी अनेक गाँठे पड़ चुकी थी। मामा जी के साथ लड़ाई होने पर एक तुमुल रव पूरे घर मे छा जाता, काफी मार-पीट होती, और नानी असहाय एक ओर वैठ कर रोने लगती।

फिर हम नानी का घर छोड़ कर होस्टल मे रहने चले गए। वहां अगणित अजनबियो के बीच हम घवरा गए-और मन इतना उद्विग्न हो गया कि होस्टल से भाग कर घर आ गए। होस्टल-जीवन के आदी होने पर हम फिर वर्षो होस्टल मे ही रहे और एक तरह से नानी के घर आना-जाना भी बन्द हो गया। किसी तीज-त्यौहार पर नानी बुलातीं तो हम वहां जाते।

अनेक वर्ष नानी से विना मिले वीत चुके थे। हम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इन्टर की शिक्षा पा रहे थे और कानपुर कांग्रेस मे वालटियर वन कर आए थे। कांग्रेस-नगर मे ही हम रहते और भीड़ का नियंत्रण और प्रवन्ध करते। स्वदेशी प्रदर्शनी के औरतो-वाले फाटक पर हमारी ड्यूटी लगी। अनायास ही यहा नानी से भेंट हो गई। इस बीच मे हमारे पिता जी और नानी के परिवार से बहुत मनमुटाव हो गया था। नानी मुझे देख कर फूट-फूटकर रोने लगी; मेरा मन भी भर आया और नानी की गोद में मैंने मुँह छिपाया। जिन नानी के व्यवहार

से मैं स्वयं इतना रुष्ट था, उनको देख कर इतना हृदय क्यों उमड़ता था, यह मैं समझने में आज भी असमर्थ हूँ।

उस अन्धकार-पूर्ण वातावरण मे कितनी सकीर्णता, अनुदारता और कठोरता वद पडी थी, किन्तु जीवन के किसी कोने में, सघर्ष-आहत मातृ-स्नेह की स्मृति भी निहित थी और अनायास ही, अयाचित क्षणो मे वरवस ही वाहर निकल पड़ती थी।

(१५)

'बुद्धिजीवी

मेरे मित्र लज्जा शकर यूनिवर्सिटी मे दर्शन के अध्यापक थे। साहित्य से उनको विशेष रुचि थी। वे स्वय कविता लिखते थे और नशीली-सी आँखो से साहित्य-सवन्धी वातें करते थे। जीवन के प्रति उनके उच्च आदर्श थे; छोटी वात वे मन मे लाते तक न थे। अतएव सभी उनके मीठे स्वभाव और हँसमुख व्यवहार से प्रसन्न थे।

मि० लज्जा शंकर यूनिवर्सिटी के शिक्षक का पद समाज मे वहुत समझते थे। वे आई सी० एस० वालों, हाई कोर्ट के जजो और वड़े राजनैतिक नेताओ से वरावरी के दर्जे मिलते थे, उनके घर जाते और उन्हे अपने यहां वुलाते थे। अच्छा खाने-पीने मे उनका विश्वास था। आए-दिन उनके घर दावतें हुआ करती थी।

किन्तु उनका वेतन कम था। अतएव उनके वजट मे खीचा-तानी रहती। अकसर ही वे ऋण-ग्रस्त रहते। उनके लिए तो यह जरूरी था कि साफ कपड़े पहिनें; वर्ना सभा-सोसाइटियो मे मुँह कैसे दिखाते? लेकिन घर के अन्दर हालत खराव थी। वीवी-वच्चे फटे-हाल रहते; मुश्किल से वाहर निकल पाते। लड़का स्कूल भी सकोच से जाता। दावतों के लिए पत्नी को अकसर चूल्हा फूंकना पड़ता। वह खूब ही झल्लाती। जितनी ही प्रोफेसर साहव की घर के वाहर इज्जत थी उतनी

ही घर में हेटी होती। कभी-कभी श्रीमती जी झल्ला कर जोर से बोल पड़ती, और उनका कर्कश स्वर बैठके मे पहुँच जाता। तब प्रोफेसर साहब का मुँह लाल हो जाता और ऊचे सरकारी ओहदेदारो के साथ समानता का उनका स्वप्न भग हो जाता।

किस मुँह से वे सामाजिक नेतृत्व का ढोग भरते! इस विचित्र लड़ाई मे सैनिक तो खेत ही रहे थे, किन्तु मोर्चे के पीछे हालत और भी खराब थी। भूख से, रोग से, मक्खियो की तरह लोग पटापट मर रहे थे। कुछ लज्जावश आत्मघात कर लेते थे। यह हालत बगाल की ही न थी, अन्य सूबो की ओर भी कहत बढ रहा था।

प्रोफेसर साहब राजनैतिक प्राणी न थे। किन्तु वे इस दुर्व्यवस्था से बड़े असतुष्ट थे। अनेक बार अपने उच्च-पदाधीश मित्रो से वे लड़ पड़े थे। गोरे-काले के भेद से वे बहुत तिलमिलाते थे। वे यह तो न समझते थे कि पुरानी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था लड़ाई का भार सम्हालने मे असमर्थ थी और टूट रही थी। किन्तु वे इतना अवश्य समझते थे कि घूस का बाजार कभी राष्ट्रीय सरकार गर्म न होने देती; चोर बाजारी बद कर देती।

उनके पास न मोटर थी, न अर्दली-चपरासी। आज-कल नौकर चाकर रखना भी मुश्किल था। लड़ाई क्या थी, काल था। बाजार मे कोई चीज न मिलती थी। लकड़ी के दाम आसमान छू रहे थे; कोयला मिलता न था। कपड़ा बाजार से गायब हो गया था। सफेदपोशी तक का स्वांग बनाए रखना असम्भव था। हर चीज के दाम चौगुने-पँचगुने हो गए थे।

सरकारी मित्रो से मनमुटाव हो जाने पर प्रोफेसर साहब खिन्न-चित्त रहने लगे। न उनका मन पढाने मे लगता, न पढ़ने मे। उन्होने कविता लिखना भी बद कर रक्खा था। कहते थे, न जाने आज-कल क्यों मन भारी सा रहता है! अब वे उच्च कोटि के न व्याख्यान देते, न निबंध लिखते।

उनका मन यूनिवर्सिटी से विरक्त हो उठा। वे कहने लगे, हमारे शिक्षण का लड़कों पर कोई प्रभाव नही पड़ता। यह सब बेकार की मेहनत है! अध्यवसायी और परिश्रमी शिक्षकों पर वे हँसते थे। कहते, मैं तो बुड्ढा हो गया, अब तुम लोग ही बोझा सम्हालो!

जब केन्द्रीय सरकार ने उन्हें अपनी युद्धोत्तर योजनाओं में मदद देने के लिए बुलाया, उन्होंने अनेक तर्क-वितर्क के उपरान्त निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। यूनिवर्सिटी छोड़ने का उनके मन में अपार दुःख था; किन्तु वे कहते, "भई, पेट भी तो भरना चाहिए!" वे भविष्य का स्वप्न मन-ही-मन देख रहे थे; मोटर अर्दली-चपरासी; हरे लॉन पर चाय-पार्टियां; गृह-कलह से सदा के लिए मुक्ति!

यद्यपि यूनिवर्सिटी छोड़ने का उनके मन मे सदमा था, किन्तु इस सुख-स्वप्न ने उनके मुँह को एक दिव्य दीप्ति से आलोकित कर दिया। भाग्य ने अनायास ही स्वर्ग का द्वार उनके लिए खोल दिया था।

(१६)

शेरशाह की सड़क

वह पक्की भारी सड़क जो शेरशाह ने उत्तर भारत में बनवायी थी, सीमान्त प्रदेश से चक्कर खाती हुई उत्तरापथ के बड़े-बड़े नगरों को एक शृंखला मे बांधती थी। उसके किनारे पेड़ लगे थे, जो राहगीरों को फल और छाया देते थे; प्याऊ थे, जो उनकी प्यास मिटाते थे। अनेक वन, नदी, ग्राम, नगर, पार करती हुई वह विशाल सड़क भारत के दो छोर जोड़ती थी। उत्तर पश्चिम की पर्वतमालाओं और उपत्यकाओं को पार करती वह पंचनद के नगरों से गुज़रती थी, अनेक ग्राम और नदी लांघती थी, गंगा और यमुना के प्रदेश में घुसती थी, मगध और मिथिला के भग्न विहारों की शान्ति भंग करती हुई वंग और अंग के वन-प्रान्त में खो जाती थी। इतिहास की कितनी कड़ियों

का यह सडक जोड़ती थी! कपिशा, वक्षु, गान्धार, तक्षशिला, वितस्ता, और शिप्रा, उदयन और कोशाम्बी, पाटलिपुत्र, वैशाली, लिच्छवि और शाक्य जातियॉ; उजड़े साम्राज्य; उत्तरापथ पर टीड़ी दल से वर्वर आक्रमणकारियो की भीड़; अशोक के शिलालेख और प्रशस्तियॉ, पठानो और मुगलो के साम्राज्य, भयकर सग्राम, लूटमार और फिर किसी गहरे गम्भीर प्रशान्त नद के समान भारतीय जीवन और सस्कृति का विकास-क्रम। पुरानी ऐतिहासिक स्मृतियो को पीछे छोड़कर वहते पानी के समान देश की सस्कृति आगे वढ़ती है। पानी वीच-वीच में रेत और बालू मे, भाड़-झखाड़ मे फँसकर बँध जाता है, थम जाता है, किन्तु फिर भी उसकी अविराम गति मे कोई अन्तर नही पड़ता।

मौर्य और गुप्त सम्राटो के पद-चिन्हो का यह सड़क अनुसरण करती है। प्राचीन मार्ग और पथ एक तार मे इसने बॉध दिये हैं। इसी रास्ते आर्य और यवन भारत मे घुसे थे, और दूरस्थ नगर और जातियो मे अपनी विजयपताका ले गये थे। अव किसी विशद, भीमकाय अजगर के समान यह भारी भरकम, बलखाती सड़क उत्तराखण्ड के हृदय पर लेटी है। इस रास्ते कितनी सेनाएँ, कितनी रथ, अश्व, हाथी, पदातिक गुजरे हैं। कितने यात्री, अर्थ और मोक्ष के भूखे प्राणी—मेगस्थनीज, युआनच्वॉग, इत्सिग, अल्बरूनी, इब्नबतूता, मार्को पोलो, सिकन्दर, सेल्यूकस, तैमूर, बाबर।

इस सड़क का हृदय वार वार उन असख्य पदाघातो से जर्जर हुआ है, किन्तु भारतीय सस्कृति के ही समान वह फिर-फिर मरकर भी जी उठती है। उसी के समान यह मृत्युञ्जय है, वीतराग और अशोक है।

वह खण्ड मे इसने ऋषियो के यज्ञ देखे, होम का धुआँ सूंघा, धन-धान्य से समृद्ध खेत और ग्राम देखे, चक्रवर्ती सम्राटो की विजय-यात्राएँ देखी, तपोवन और वैभवशाली नगर देखे, रक्तपिपासु आक्रमणकारी और जीवनमुक्त श्रमण देखे; अन्याय और क्रूर-शासन की कथाएँ सुनीं;

त्याग और वैराग्य के दृश्य देखें। अनेक सस्कृतियो का उत्थान और पतन देखा। मोहेंजोदड़ो की द्रविड़ सभ्यता, आर्यों का विजय-अभियान, उनकी महान् सस्कृति का विकास, वेद, उपनिषद् और ब्राह्मणों की सृष्टि, रामायण और महाभारत का काल, नन्द-मौर्य और शुंग वंशों का इतिहास, वर्ग-भेद के विरोध में बौद्ध-मत का प्रसार, कालिदास और भवभूति, बाण भट्ट कौटिल्य और भर्तृहरि, कुमारिल और शंकर, क्रमश. कृषि समाज के धरातल पर खड़े इन साम्राज्यों के पिरामिड का ध्वस और सामन्तो का उत्थान, जयचन्द और पृथ्वीराज, यवनो के आक्रमण, नये साम्राज्यों का उत्थान और पतन, असख्य बुभुक्षु जनता और राजसी विलास-वैभव, भुखमरी और सहसराम के मकबरे; न्याय का ढोंग, मद और आसव की सरिताएँ जो अभी तक साम्राज्यो के हिमाचल से निकलकर गगा और पचनद के प्रदेशो मे बहती हुई सागर से जा मिलती हैं।

अनेक साम्राज्यो का ठाट-बाट और जनता का दैन्यरोदन यह देख सुन चुकी है और अपने हृदय पर पत्थर रखकर अब बैठी है। शेरशाह का नाम सोने के अक्षरों मे लिखा जायगा। उसने शासन की बागडोर दृढ़ हाथो में ली और न्यायदन्ड को आत्म-विश्वास से घुमाया। उसकी सड़क पर पथिको, व्यापारियो, यात्रियो और सैनिको के हुजूम निकलते थे और उसे छाया, जल और फलों के वरदान के लिये मन ही मन धन्य कहते थे। किन्तु एक बार फिर मुगलो की भाग्य-लक्ष्मी चमकी; कृपालु-अफीमी दुर्बल हुमायूँ फिर कापते, डगमग पैरो से सिंहासन पर चढा। पठानो का भाग्य-नक्षत्र अस्ताचल पर डूबने लगा और मुगलो का सितारा सिन्ध की मरुभूमि मे उदित हुआ। मुगलो के वैभव की दुन्दुभी सात समुन्दर पार देशो में बज उठी। जवाहरात के प्यालों मे मुगल सम्राट् मदिरा पीते थे, काश्मीर और पंचनद में सुन्दर उद्यान और मकबरे बनवाते थे, ललित कलाओं को बढावा देते थे! तानसेन, अबुलफजल, फ़तहपुर सीकरी, मोती मस्जिद, ताजमहल, अनुपम चित्र-कला,

भव्य प्रासाद, हम्माम, लाल पत्थर के क़िले, साम्राज्य का मद, वैभव, क्रूर बर्बर पाशविक अनाचार। मानसिंह की सेनाएँ इसी सड़क के हृदय को रौंदती हुई गज़नी से बगाल तक बढ़ी और अकबर की विजय-पताका भारत की दो सीमाओं को लाँघकर दूर प्रान्तो मे गाड आयी। शेर अफगन और नूरजहाँ, सर टामस रो, खुसरो और खुर्रम, दाराशिकोह और शुजा, भारत का अन्तिम बडा सम्राट् औरगजेब, सभी के पदचिन्ह इतिहास के इस पथ पर अकित है। डूबते लाल सूर्य की आभा मे उनके उमरावो, भृत्य, हाथियों और छात्रो की परछाईं लम्बी होकर इसी धूल मे लोटी थी।

अन्त मे मुगलो की विजय-लक्ष्मी भी अन्तर्हित हुई। सामन्तो ने दूर प्रदेशो मे विद्रोही सिर उठाये। मराठों ने साम्राज्य की सीमाएँ अपने लोहे समान दातो से कुतरनी शुरू की और दिल्ली पहुँचकर ही रुके। नादिरशाह और फिर अहमद शाह अब्दाली; हिंसक लुटेरो का आतक और अनाचार इस सडक ने राजनगरो मे देखा। शासन और पराजय की अव्यवस्था देखी। जनता का अनन्त दुःख देखा और सहा। अनेक बार इस राजमार्ग का हृदय टूटा है, और द्रवित हुआ है, किन्तु फिर मन भर के पत्थर इसने छाती पर रखकर नि.श्वास लिया है। आदिम सभ्यताएँ, कृषि-युग, चक्रवर्ती सम्राटो के अश्वमेध, सामन्तो के गृह-युद्ध, अनेक विदेशी जातियो का भारत मे समागम, नयी दुर्व्यवस्था, नये साम्राज्य, युद्ध, शासन-सूत्र का पूर्ण रूप से टूटना, लुटेरो का स्वच्छन्द राज्य, सभी कुछ यह सड़क देख चुकी है। अन्त मे एक नयी शासन व्यवस्था का प्रवाह भी, जो दूर से देश आये श्वेत व्यापारियों ने यहाँ घोषित की।

पहले फिरगी आपस मे लडे, फिर उन्होने मराठो, सिक्खो, और पठानो से लडाई मोल ली और सम्पूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। फिर लूट-मार, नोच खसोट उन्होने शुरू की। कम्पनी के बाबू मोटे आसामी बनकर विलायत पहुँचने लगे। क्लाइव और

वारेन हेस्टिंग्ज, चेतसिंह और अवध की बेगमें, अमीचन्द और नन्द कुमार—क्या क्या इस राजमार्ग ने नही देखा ? लूट का इतना सामान देख कर वारेन हेस्टिंग्ज को स्वय अपनी नर्माई पर आश्चर्य होता था !

इस पृष्ठभूमि मे भारत का नव-जागरण शुरू हुआ। क्रमशः देश के मुख पर भाव-परिवर्तन हुआ। रेल और बिजली के तारो का जाल फैला; ज़ीवन मे नयी स्फूर्ति आयी। पुराने विचार-आचार काल के गाल मे खोने लगे। नये जीवन ने उनका स्थान लिया। उत्तरापथ के विशाल वक्ष पर सोयी इस सड़क ने अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से यह सब व्यापार देखा। किन्तु आज फिर अगणित सेनाओ की गति से उसका हृदय स्पन्दित है; आज फिर राष्ट्रो की युद्ध -यात्रा वह देख रही है।

इस सड़क की मरम्मत हुई। तारकोल से वह रँगी गयी। उसका कायाकल्प हुआ। वृद्धा से वह युवती बनी। अब अनेक मोटरे और लारियाँ भारी हुकार करके उस पर निकलते है। पूर्व से पश्चिम तक दिन रात इस सड़क पर कारवां चलते हैं, पश्चिम के पर्वत-देश से पूर्व की शस्य-श्यामला भूमि तक। फल और मेवों के बोझ लादकर वे पर्वत-मालाओं को पार करते है और पंचनद के ऐतिहासिक नगरो मे विश्राम लेते हैं। यहाँ का गेहूँ वे पूर्व-प्रदेशों मे ले जाते है, और वहाँ से चावल, सन और मिट्टी का तेल वापस लाते हैं। सीमा-प्रान्त से, नैपाल की तराई से, गगा के प्रदेश से सैनिको का ताँता ब्रह्मपुत्र और ब्रह्मप्रदेश तक लगा रहता है। युद्ध का अन्त हो गया है, किन्तु युद्ध के बादल आज भी आकाश में मँडरा रहे है।

नयी जाग्रति एशिया के देशो मे हुई है। चीन में, श्याम मे, सुदूर यव और स्वर्ण द्वीपो मे, फ्रान्स के चगुल से खिसकते इडोचीन मे जनता ने सिर उठाया है। भारतीय जागरण की हलचल इस सड़क ने खूब देखी और सुनी है। बुद्ध के समान पैरो ही देश की ध्रुव-यात्रा करते बापू, दिन और रात एक करने वाले नेहरू का दौरा, अनेक जुलूस, गोली, लाठियों की मार, किन्तु अडिग पैरो पर लक्ष्य की ओर

अनवरत बढ़ता भारतीय स्वाधीनता का जुलूस। किसानो और मज़दूरों मे, जातियो और राष्ट्रो में, पददलित मुस्लिम जनता मे स्वाधीनता का जयघोष गूंज उठा है। और यह ऐतिहासिक राज-मार्ग, जिसके अनेक कायाकल्प हुए हैं, जिसने अनेक युग-परिवर्तन देखे है अनेक जातियो और साम्राज्यो का उत्थान और पतन देखा है, स्वाधीन भारत के भविष्य का सुवर्ण स्वप्न देख रहा है, भारतीय स्वाधीनता के विशाल प्रासाद का, जहाँ कल की शोपित जातियाँ मिल-जुलकर स्वतत्र जीवन बितायेगी।

कितने बीते दृश्य उसकी स्मृति मे हरे हो उठते है। जातियो का आवागमन, परस्पर सघर्ष, अशोक और हर्ष के दान, सामन्तो की कलह, ग़ज़नी और गोरी की लूट, राजपूती जौहर, मुग़लो का वैभव, फि गियो का रक्तसंचय, स्वाधीनता का यज्ञ। अनेक भीड़ के हजूम इस सडक पर निकले हैं और निकल रहे हैं।

सुबह का झुटपुटा; पेड़ अभी निंदासे है। गुरुदेव शेरशाह की सड़क पर हवाई अड्डे की ओर जाते है। उनकी ईरान यात्रा शुरू हो गयी है। अनेक ऐतिहासिक स्मृतियाँ उनके मन मे हरी हो जाती हैं। इस प्रकार एक और श्रमण इतिहास के इस सजीव स्मारक से गुज़रता है, और अपने पद-चिन्ह इस पर छोड़ जाता है।

अनेक बार इस सड़क का हृदय खण्ड-खण्ड हुआ है, और फिर फिर उसकी मरहमपट्टी हुई है। अनेक बार वह मरकर जी उठी है। शताब्दियो पर्यन्त उसने विकट ग्रीष्म का ताप, वर्षा और तूफान, शीत के थपेड़े सहन किये है। सूर्योदय और सूर्यास्त की आकाश मे होली देखी है; तारो का नभ और अन्धकार का गहन सागर देखा है। प्रकृति का नित-नूतन साज देखा है। पुरानी स्मृतियाँ उसके हृदय को मथ डालती हैं, किन्तु आज भविष्य मे प्रभात का आलोक देखकर उसके हृदय मे नव आशा फिर अकुरित हुई है।

रेल और तारो के जाल ने उसकी महत्ता कम नही की। चील और गिद्धो के समान वायु मे मॅडराते अथवा चॉदी की मछलियो के समान

आकाश में तैरते हवाई जहाज भी इसके महत्त्व को नही घटा सकते। निरन्तर भारी 'ट्रक' और लारी हुँकार करते, धूल उड़ाते इसके ऊपर निकलते हैं; यात्रियों, व्यापारियो, सरकारी अफसरो, सैनिकों, राजनैतिक कार्य-कर्ताओ का तांता बँधा ही रहता है। सदियो से पलक मारने का अवकाश शेरशाह की सडक को नही मिला।

अब देश में जनता की विजय-दुन्दुभी बज उठी है; स्वाधीनता और समाजवाद की शक्ति सगठित हो रही है। और भी भारी बोझ इस सड़क को ढोना होगा, क्योंकि जनता की समृद्धि के साथ-साथ व्यापार के नये पथ खुलेगे, सस्कृतियो का परस्पर आदान-प्रदान बढ़ेगा; इस सड़क का सम्बन्ध मध्य एशिया के प्राचीन व्यापार-मार्गों से फिर जुड़ेगा। दूर साइबेरिया के नगरो, चीन के बहुसख्यक प्रान्तों और सागर पार के देशो से फिर भारत की सस्कृति का सम्बन्ध होगा। विश्व के कोने कोने मे भारत के प्रतिनिधि फैल जायँगे। दुनिया से फिर हमारा सजीव संपर्क बनेगा। इस भविष्य का भार यह प्राचीन मार्ग न उठायेगा, तो कौन उठायेगा ?

स्टीम, बिजली, रेडियो, ऐटम की शक्ति, विज्ञान के नित नये आविष्कार, मनुष्य की बढती गरिमा इस सडक के महत्त्व को कम नहीं करते, बढाते हैं। यूरोप और एशिया के भूखड को यह सड़क जोड़ती है। युगो और सस्कृतियो के काल-सागर पार उतरने का यह पुल है' इतिहास निरन्तर इस मार्ग पर अपने चरण-चिन्ह छोड रहा है।

रेखाचित्र

(१)

गांधी के प्रति

तुम्हारा शरीर तो छोटा सा और कुरूप है किंतु तुम अगणित विद्युत् के तारो की शक्ति रखते हो।

तुम्हारा शरीर तप से जला भस्मभूत है, किंतु तुम्हारे भ्रूपात से साम्राज्यवाद का शेपासन तक हिल उठता है।

तुमने देश को युग-युग की सम्मोहन निद्रा से जगा कर रणभेरी सुनाई है। आज नव जीवन के उल्लास से हमारे प्राण विह्वल है।

हे चतुर सेनानी, इस देश का रोम-रोम तुम्हारा ऋण-ग्रस्त है। तुम्हारा 'पाञ्चजन्य' सुनने को हमारा हृदय आकुल है।

आज अपमान भूल, रण-आतुर हम स्वतत्रता का गीत उठाते है। आज पृथ्वी पर हमारे पैर नही पड़ते। दूर हिम-मडित धवल गिरि-शृगो पर हमारी आँखें लगी है।

महायज्ञ के नायक, तुम किन विचारो में लीन हो? क्या सेना की हुकार तुम तक नही पहुँच रही?

तुमने वुद्ध की भाँति पैदल ही इस देश की ध्रुव यात्रा की है। तुम्हारी पदचाप सुनने को फिर कान व्याकुल हैं।

इस देश के विशाल चित्र-पट पर एक छोटे से आकार तुम हो, किंतु फिर भी चित्र-पट पर तुम ही तुम हो।

प्रलय की लहरे आज उमड़ पड़ी है। हे कर्णधार, उनकी ओर आँख उठाओ।

आज रण-मत्त देश बागडोर तुड़ाने को ज़ोर कर रहा है। क
तक तुम रास ढीली नहीं करोगे?

हे सन्यासी, अपनी समाधि तोड़ो। आज फिर अपना तीसरा नय
खोलो!

(२)

देहली दरवाज़ा

आगरे से जो विशाल काली सड़क दिल्ली की ओर जाती है उस
एक किनारे को अब कुछ सिकुडा सा वह लाल पत्थर का दरवाज़ा आका
की ओर देखता खड़ा है। रोज़ सुबह उसकी पीठ पीछे सूर्य उदय होत
है और किसी कलाकार के छाया-चित्र की तरह काले रंग मे उसे रग देत
है। तब भीड़ की भीड़ टहलने वालों की बिना उसकी ओर देखे निकल
जाती है। केवल वह जो पेड़ के पत्ते झर कर व्यथा से उसके ऊपर बरस
जाते हैं, शायद उसका इतिहास समझते हैं।

तब वह दिल्ली की सड़क इस प्रकार उपेक्षा से उसे एक ओर छोड़
कर न निकल जाती थी। न उसके ऊपर व्यवसायी जग के दूतों ने
अपमानजनक, भद्दे विज्ञापन लगाए थे। तब दिल्ली की सड़क ठीक
उसके बीच से होकर उन खेतों को पार करके, उस ग्राम्य-देश के पास
से टेढ़ी-मेढी स्वच्छन्द चली गई थी। अब भी कभी-कभी ऊँटों की
कतार उसी प्रकार घन्टी बजाती हुई अपनी कुरूपता का ऐलान करती हुई
निकल जाती है। यहीं से अनेक सुकुमार मुगल राजकुमार अपनी बेगमों
को साथ लिए विलास और वैभव की अतृप्त प्यास बुझाने निकलते
होंगे। दूर देशों से धन के लोलुप व्यापारी तब भी आते होंगे। और पल
भर यहाँ रुक कर उस सुविशाल आगरे की मन-ही-मन कल्पना करते होंगे।

वसन्त चला गया। पतझार आ गई। अब बार-बार मानो उसके

दुख से दुखी नीम का पुराना पेड़ आँसू की तरह दो-एक पत्ते टपका देता है।

कुछ ही दूर पर रेल की पटरी है, जहाँ से भयंकर हुँकार करती अनेक गाड़ी निकल जाती हैं। उसके बिल्कुल ही निकट वह तार के खंभे है जिन पर अकसर मरे चिमगादड़ लटके रहते है। वहाँ पुल के नीचे अनेक नए घर बन गए है। जैसे क्षणभगुर परिवर्तनशील जग मे मनुष्य कुछ स्थायी सुख खोज रहा हो!

पुल के नीचे एक कुँआ है जहाँ वर्षो से पानी भरने रेल की पटरी पार कर के अनेक नर-नारी आते हैं; भिश्ती अपने मशक लिए; गर्मी की भीषण ज्वाला मे ठेले वाले कलसे लिए; फटे वस्त्र पहिने पनिहारिन जो सिर पर दो-दो घड़े रक्खे अजीब मथर गति से चली जाती है।

कुएँ के चारों ओर खेतो मे वर्षा मे ताल बन जाते हैं, तब आँख बन्द करके भैंसे और लाल लँगोट पहिन कर अनेक चरवाहे लड़के घंटों वहाँ तैरा करते हैं।

बिल्कुल सटी हुई उस भग्न-सी मस्जिद से अब भी सुबह-शाम परमात्मा को खोजती मर्मभेदी अजाँ की ध्वनि उठती है और इस सराय के पथिक को जगा देती है। यही देर मे रात को आये हुये उत्तर प्रदेश के क़ाफिले पड़ रहते होंगे और अन्धकार मे रहस्य भरी इस नगरी का हृदय स्वप्न मे टटोलते होंगे।

अब तो उस मस्जिद मे एक मैली सी सुराही रक्खी रहती है और एक टीन का वर्तन, जिससे अनेक धूप के चलते बटोही अपनी पार्थिव प्यास बुझा जाते है। और दो-चार लडके पढने का बहाना करके अपना सिर जोर-ज़ोर से हिलाते है। यही उस वर्ष अनायास ही ख़ुदा के वाक्य से वह मुल्ला उत्तेजित हो उठा था और कुछ लोगो को मार ख़ुदा के घर जाने का मार्ग भी उसने ठीक किया था। तब इस दरवाज़े के पास कितना सन्नाटा हो गया था! तब मनुष्य के विचित्र व्यापार से थक कर कुछ आँख बन्द करने का अवसर उसे मिला था।

दरवाजे के पीछे वह वुढ़िया कितने मोह से अपनी गृहस्थी चलाती है! अपनी दो अंगुल ज़मीन की रक्षा के लिए उसने एक कुत्ता पाल रक्खा है जो बेबात ही बार-बार भूँक कर अपनी स्वामि-भक्ति दिखाता है। अपनी बकरी के लिए उसने एक छोटी सी झोपडी छा दी है, जो आँधी के ज़ोर मे बहुधा उड़ जाती है। राह चलते गधे वाले उसके लिए एक उपला डाल जाते है; और बैलगाड़ी वाले लकडी का टुकडा। तब वह हृदय से उन्हे आशीष देती है।

तुम्हारी विशाल छाया मे सुस्ताने अनेक पथिक बिना तुम्हारी ओर देखे निकल जाते हैं। तुम्हारी सीढ़ियो पर चढ़ कर उन्होने अपने मन की कुत्सित भावनाओ को पैंसिल और चाक से लेखबद्ध किया है। वर्षा मे वे तुम्हारी गोद मे मुँह छिपाते है।

मन्द गति से वृद्ध छडी के सहारे! यौवन के उन्माद मे तीव्र गति से युवा छात्र, धन के मतवाले भगवान के वे स-कार अवतार धूल के बादल उड़ाते—आते है, चले जाते है। किंतु तुम मन ही मन इस योगमुद्रा मे लीन क्या सोचते हो? जगत के नित्य नए परिवर्तन, अतीत के मीठे सपने, मनुष्य की क्षुद्रता और क्षणभगुरता?

अनियन्त्रित भाव से प्रकाश के कोण बनाती 'कार' निकल जाती है। ऊँचे स्वर से बहस करते कालिज के छात्र चले जाते है। सिकन्दरे मे स्थित अकबर की कब्र देखने भी कोई भूला भटका चला जाता है!

एक स्थिर चिरन्तन सत्य इस पल-पल के परिवर्तन मे तुम्ही दीखते हो। युग-युग के कौन से रहस्य अपने हृयद मे छिपा कर तुमने रख छोड़े हैं?

नगर के उदासीन प्रहरी, न जाने क्या-क्या भाव तुम्हारे मन मे उठते हैं!

(३)

पीपल

मैं अपने जीवन की पगडडी पर निरतर आता-जाता एक पीपल का पेड़ देखा करता हूँ।

उसकी ठीक चोटी पर कुछ बड़े-बड़े काले-कुरूप गिद्ध बैठे रहते है। साँझ के स्वर्णिम और रक्ताभ आकाश-पट पर वे किसी कुशल कलाकार के खिंचे छाया-चित्र से लगते है। दूर से ही जब वे रेल से कटे किसी शव को देखते है, तो भयकर शब्द कर हवा मे उठते हैं, और उनके पंखो की तुमुल ध्वनि से आकाश भर जाता है। फिर चुपचाप योगियो सी मुद्रा धारण कर वे शव के चतुर्दिक् मडलाकार बैठ जाते है—किसी प्रतीक्षा मे।

जिस ताल के किनारे यह पुराना पीपल खड़ा है, वहाँ चारो ओर अनेक नए घर बन गए है। परन्तु पीपल के नीचे कोई घर नही बनाता। लोग सोचते है कि पीपल भूतो का निवास-स्थान है।

इस पीपल की जड़े धरातल मे दूर तक फैल गई है। वर्षो लोग इस पर जल चढाते हैं और साँझ के समय कभी-कभी छोटा टिमटिमाता दिया जला जाते हैं। इसके पास ही एक छोटा सा मन्दिर भी है जो अब उजड़ा पड़ा है। चिलचिलाती दोपहरी मे कभी कोई चरवाहा वहा लेट कर अपना बेसुरा राग छेड़ता है।

इस निरंतर बदलते-बहते जीवन मे यह पीपल एक स्थायी चिन्ह है। अतीत का यह एक प्रहरी यहाँ अचल खड़ा है। जब भयानक आँधी मे अन्य पेड उखड जाते है और घर गिर जाते है, इस पीपल के पत्तो में केवल क्षुब्ध सागर की लहरो जैसी सनसनाहट भर जाती है।

कभी-कभी मैं सोचता हूं, क्या मैं भी इसी पीपल के समान हूँ? मेरी जड़ें दूर तक फैली, धरती का बन्दी, अतीत के भूतो का डेरा!

अपने जीवन को पगडंडी पर आता जाता मैं निरंतर एक पीपल का पेड़ देखता हूं, और अनेक विचार मेरे मन मे उमड़ते हैं।

(४)

पेट्रोल-पम्प

नई सभ्यता का प्रतीक वह 'सौकोनी' का पीला चमकदार पम्प आगरा से देहली जाती सड़क के किनारे गर्वोन्नत खड़ा है।

दिन मे दूर से ही उसका चटख रग आँख को अपनी ओर खीचता है। रात मे विजली से आलोकित सौंदर्य उसके ऊपर वरस जाता है। और पल भर नेत्र सतोप और विश्राम से वहां ठहरते है। कुरूप की मरुभूमि मे—काली सड़क, पुलिस की चौकी, मोटे दरोगा जी, अस्त-व्यस्त मकानो के खँडहर, हरे ंग का अकाल—एक रंग की बूंद यह पम्प 'ओसिस' के समान सुखप्रद है।

आगरा से दिल्ली जाते मोटर-आरोही इस पम्प से यान को तेल पिलाते है। फिर सड़क पर दूर नेत्र गड़ा कर 'ऐक्सैलरेटर' को पैर से दबाते हैं। दिल्ली से आते पथिक इस मोड़ पर रुक कर पुलिसमैन से 'सिसिल' अथवा 'लॉरीज़' होटल का रास्ता पूछते हैं। दिन भर इस मोड़ पर कार-वालों का ताँता लगा रहता है और दिन मे शायद ही कभी टूटता हो!

दूर स्थित सागर-लहरियो से क्रीड़ा करता वम्बई का द्वीप; अथवा भीड़ से आन्दोलित मारवाड़ी वनियो का 'मक्का' कलकत्ता; पठानों की पथरीली नगरी पेशावर, पर्वत-माला कण्ठ मे पहिने जहाँ निरन्तर उत्तर प्रदेश के फल और मेवो से लदे ऊँटो के काफिले निकलते है; चारो ओर वहती भारत की जीवन-सरिता पल भर इस पम्प से टकराती है, और लहरो मे भँवर वना फिर अपना रास्ता लेती है!

यह मोटर का युग पल भर अपने उपास्य-देव 'पैट्रौल' को रुपये-पैसो की भेंट चढ़ा आगे बढ़ता है।

यह 'पैट्रोल' ही नये समाज की जीवनी-शक्ति है। समाज के रग-रग मे रक्त के समान पहुँच यह सामाजिक जीवन सचालित करता है!

बिजली के 'स्पार्क' से तेल प्रज्वलित हो भयकर भैरव शक्ति कार की आँतो मे पैदा करता है। पहियो मे पहुँच कर वह शक्ति कार को आँधी के समान—अथवा बन्दूक से छुटी गोली के समान—ले भागती है। मशीन युग को यही शक्ति चलाती है। वायुयान को हवा में यही शक्ति लेकर उठती है।

व्यापार की अविरल सरिता, महासागर के क्षुब्ध बादल, विलास के राग-रग—सबका जीवन इस 'पेट्रोल' पर अवलम्बित है।

सड़क के मोड पर स्थित वह चमकदार पीला पम्प किसी नये रूपवान विजय-स्तम्भ की भाँति उन्नत माथा किए पृथ्वी और आकाश को विजयोल्लास से देखता खड़ा है।

मोटर आती है। क्षीण गति से रुकती है। 'पम्प-मैन' पम्प मे तेल चढ़ाता है—दो गैलन, चार गैलन? रुपये-पैसे सँभालता है। कार 'स्टार्ट' होती है। 'हॉर्न' बजता है। पहला 'गेयर'—भयंकर बवन्डर, दूसरा 'गेयर', फिर तीसरा; बवन्डर शान्त, स्निग्ध मलय पवन बन जाता है। फिर तीर के समान लक्ष्य की ओर कार द्रुत गति से बढ़ती है।

पम्प के आस-पास आंधी के बाद वाली शान्ति छा जाती है। पल भर के लिए।

(५)

लेटर बॉक्स

कॉलिज के मुख्यद्वार के सामने जो भारी, काली अजगर सी ड्रमन्ड रोड निकल गई है, उसके एक किनारे कुछ हट कर, सकुचित से तुम खड़े रहते हो।

उत्सुक प्रेमी, कॉलिज के छात्र, व्यवसायी और सरकारी दुनिया के दूत तुम्हारी अतृप्त क्षुधा निवारण करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु तुम्हारी क्षुधा का अन्त नही।

रोज सुबह शाम खाकी वर्दी पहने, समय से कुछ मिनिट पीछे डाकघर का चपरासी तुम्हारा गृहद्वार खोल पत्रादि वटोर ले जाता है। कहाँ जाते है वह ?

लौह शृखलाओ से जकड़ी धरती पर आँधी के वेग से जाती गाड़ी उन पत्रों को राजपूताना की मरुभूमि या बगाल के शस्य श्यामल खेत पार कर अथवा अनेक पथ, पर्वत लॉघ कर, दूर देश ले जाती होगी, जहाँ उत्सुक प्रेमी द्वार की ओर नेत्र लगाए प्रतीक्षा करते होगे। अथवा विचित्र ढँग से पगड़ी वॉधे मोटे मारवाड़ी वणिक रुई का मूल्य आँकने मे व्यस्त होगे। शायद सात समुद्र पार किसी एकाकी वन्धु या प्रेमी के पास स्नेह-सदेश भेजते होगे।

अनेक हाथ स्नेह और आकांक्षा से भरे दिन भर तुम्हारे छोटे से पतले मुख मे पत्र पहुँचाते है। छोटे छोटे हाथ किसी वालक के ! छोटे सुन्दर हाथ किन्ही तरुण युवतियो के, जो उदासीनता का नाट्य करती हुई धीमे धीमे अपना सदेश तुम्हें सौंप निकल जाती हैं ! कुरूप हाथ, सिगरेट जले हाथ, मेंहदी-रंजित हाथ, कठोर क्रूर हाथ, कोमल उदार हाथ---तुम्हारे समान हाथो की पहिचान किसे है ?

एक दिन अनायास सी तुम्हारा द्वार चौपट खुला देखा ! दीमक ने तुम्हारे पत्र खा डाले थे ! तब तुम्हारी थाती की कितने मनुष्यो ने उत्सुक

प्रतीक्षा की होगी! फिर तुम तारकोल से पोते गए और नया, चटख लाल रग तुम्हारे शरीर पर चढाया गया। यह चटख लाल रग हमें पसन्द नही, यद्यपि यह क्राति का रग है। अब इस घोर गर्मी और फिर सावन की मूसलाधार वर्षा मे तुम्हारा रग हल्का पड जायगा और फिर वही अनुभवी अलस भाव तुममे आ जावेगा।

तुम्हारे बरावर अनुभव है भी किसे? सब के हृदय का रहस्य तुम जानते हो—उस होस्टल के छात्रो की रुपए की कमी, प्रेमी की उन्मत्त कल्पना, वणिक की चाल रूई का भाव उठाने को। बड़े बड़े सरकारी रहस्य भी तुम्हे हृदयंगम हैं, और बड़े धर्मात्माओ की पोल।

ग्रीष्म के आतप और शिशिर के कठिन शीत में एकरस तुमने जगत का व्यापार इस सड़क के किनारे खडे होकर देखा है। यदि तुम एक बार भी वोल देते!

(६)

काश्मीरी दरवाजा

दिल्ली। तारकोल से पुती सडके और दूर तक जगमगाते बिजली के खम्भे।

कश्मीरी दरवाजे के पास वह पुलिसमैन बाढ-से आते हुए मोटर और ताँगो के सामने वांध के समान खड़ा था। वडे वेग से किसी भयंकर बिल्ली से नेत्रो की ज्योति लेकर कोई मोटर आती, और दूर तक प्रकाश की अँगुलिया अँधेरे को कुरेदती सी फैल जाती। धूल के कण पल भर के लिए चमक जाते। और प्रकाश मे किसी आते जाते आदमी, तागे अथवा पशु की सुन्दर 'सिलहुट' वन जाती। फिर गभीर गर्जन करती वह 'कार' विल्कुल उसके कान के पास से निकल जाती।

बड़ी ठढ थी। उसने अपने ओवरकोट के वटन कुछ और कस के

लगाए। छुरी की तरह बदन काटते हुए हवा के झोके निकल जाते थे।

अचानक उसे जँभाई आ गई। अब तो देर हो चली थी। खड़ा खड़ा वह रुक गया था। कुत्ते का सा यह जीवन, खड़े ही खड़े बीतता था। घर पर बीबी-बच्चे उसकी प्रतीक्षा करते होगे। आज तो शायद प्याज़ की पकौड़िया बनी होगी। प्याज की पकौड़िया उसे पसद थी।

उधर दूर दूकानो का आलोक कम हो चला था। 'डैविको' के रेस्ट्रां मे बैंड बज रहा था। धन का मद—मोटर, नाच, रूज़, लिपस्टिक और हीरे के ईअररिंग। इधर खड़े खड़े पैर टूट रहे थे।

दूकाने अब बन्द हो चली थी। उनके बन्द होते किवाड़ो और तालों का स्वर उसके पास पहुँच रहा था। एक पट-पट करती मोटर साइकिल आई और निकल गई। अब तो इधर भी सन्नाटा हो रहा था।

लबी सास लेकर उसने जेब से बीड़ी निकाली और उसे जलाने को दियासलाई ढूंढने लगा। दियासलाई उसे मिल ही न रही थी।

यह कश्मीरी दरवाज़ा मुगलो के जमाने मे बना था। आज यह उजाड़ और वीरान था। अँधेरे मे उसे शहर की पुरानी दीवार भी दीख रही थी। तब! तब लोग रहना जानते थे। अब तो बस खड़े-खड़े यह कुत्ते की सी जिंदगी!

दूर कही दस का घटा बजने लगा। उसकी ड्यूटी का अत निकट आया। फिर जेब मे वह दियासलाई ढूंढने लगा।

(७)

खँडहर

मैं पुराने साम्राज्यप्रासाद का खँडहर इस बीहड़ मे खड़ा निर्निमेष जीवन की गति देखता हूँ।

मैंने विलास और वैभव के खेल पल भर मे बालू के किले-से मिटते देखे हैं। जहाँ अट्टहास गूँजता था, वहां अब वायु सन्नाटे में चक्कर

काटती है। जहां नूपुर, किंकिणि और चूडियो की ध्वनि कान में गूंजती थी, वहा केवल कभी कभी उल्लू की हँसी सुनाई पडती है। यहां सुरा के नद वहते थे; यहां निरन्तर भैरवी और विहाग की करुण मीठी तान् उठती थी। यहां दु ख के नाम केवल वे दूर देशो के गुलाम थे जो कोड़ो की मार से व्यथित अपनी ताड़खचित मरुभूमि की याद मे कभी कभी आँसू टपकाते थे। यहाँ सुख ही सुख था। दूर गॉवो से दारिद्रय और पीड़ा की प्रतिध्वनि वायु कभी हमारे पास ले आती थी, किंतु दूसरे ही क्षण हम उसे भूल जाते थे।

आज खडे-खडे मेरे मन मे उद्गार उठे है। मै जगत की ओर आँख उठा कर देखता हूँ। कोई मुझे पहचानने वाला नही। सब विचित्र परदेसी है। अथवा मैं ही 'रिप वैन विंकिल' वर्षो की निद्रा से जाग कर अव उठा हूँ। अंधड़ की गति से धुआँधार गाड़ी निकल जाती है। पसीने और धूल से लथपथ जव-तव हूश-ऐसे आदमी यहाँ घुस पड़ते हैं। कभी कोई वेसुरा राग ही अलाप उठता है।

मैं अतीत का भूत यहा प्राचीन स्मारक बनकर खडा हूँ। ओ सपने-से पल-पल पर परिवर्त्तित जीवन। मैं एक पुरातन का अभिशाप यहां हूं! मैं काल-दड की गति का इगित हूँ। तुम अस्थिर हो; पीड़ा से मिट कर नूतन की सृष्टि करना—यही तुम्हारा धर्म है।

आँधी आती है। वर्षा होती है, ग्रीष्म की कठोर ज्वाला आती है। मैं सब सहता हूँ। युग-युग की व्यथा देख मुझमे अव सहन-शक्ति आई है।

ऊसर ऊजड़ प्रांत के कँटीले पेड, लाल पत्थर के अस्त-व्यस्त ढेर, यह ऊबड-खावड़ धरती, कुरूप टीले और भूले-भटके वकरी और भेड़ो के दल मेरे साथी हैं। इन्हे और अपने चिरप्रिय चिमगादड़ और उल्लुओं को अपनी करुण कथा कभी कभी सुना कर अपना हृदय हल्का करता हूँ।

मैं पुरातन का कंकाल, चिरकाल तक तुम्हे वताता रहूँगा—तुम क्षणभगुर हो, तुम मिट जाओगे। किंतु आकाश मे नवीन उपा का

आलोक है।' 'फीनिक्स' के समान यह जीवन मर मर कर जन्मता है और नई शक्ति और सौंदर्य लेकर आता है। वीहड़ से परे एक नए नगर का जन्म हुआ है। रात मे उसके आलोक से आकाश भर जाता है। और मुझे उसका रहस्य कुछ मालूम नही हुआ। केवल उधर जाते पथिक मैं देखता हूँ। यह नगर भी नष्ट हो जायगा और दूसरे को जन्म देगा। अनेक नगर मैंने वनते-विगडते देखे है।

मैं इतिहास का खँडहर जो हूँ।

(८)

राजा की मंडी

उसकी झोपड़ी राजा-मडी स्टेशन के पास थी—उस छोटे से गाव में जहाँ निरन्तर गाड़ियो का कोलाहल रहता था, सड़ती हड्डियो की वदबू उठती रहती थी और दो-चार कच्चे मकान और नीम के नीचे एक पुरानी भग्न-सी मस्जिद अपनी लज्जा ढकने का प्रयास-सा करते थे।

दिन-भर वह पास वाले मैदान से घास काटती थी और रात को जव आती-जाती गाड़ियो की धमक से उसकी झोपड़ी समूल हिल जाती, वह जाग-जाग पड़ती। पास की कच्ची, लिपी दीवारो की झोपड़ियो में उसी की तरह कुछ जीव रहते थे, उपला पाथ कर, मिट्टी खोद कर, लकड़ी वेच कर।

इस गांव के विल्कुल पास से ही रेल की पटरी निकली थी। रेलो का जाल, विजलियो से जगमगाती गाड़िया, दूर से चमकते सिगनल की लाल हरी वत्तियाँ रात मे यहा अनोखा सौदर्य पैदा कर देती, जैसे परियो का देश हो। यहाँ तीन लाइने अकर मिलती थी, एक दिल्ली की ओर जाती थी, दूसरी सिटी स्टेशन होती हुई टूंडला और कलकत्ता, तीसरी वम्वई और मद्रास। दिवाली-सी मनाती वे गाड़ियाँ एक-एक

कर हुंकार भरती आती और उसकी झोपड़ी को हिलाती निकल जाती। रात के ठीक दस वजे सिगनल कैबिन मे टेलीफोन की घटी बजती, तार खिचते, सिगनल की बत्ती लाल की जगह हरी होती। और भयंकर हुकार करती, माथे से शिवनयन-सी ज्वाला फैलाती, पृथ्वी मे भूकम्प की लहरे पैदा करती ग्रैण्ड-ट्रन्क-एक्सप्रेस निकल जाती। फर्स्ट और सेकण्ड क्लास का मधुर-सा धुंधला जीवन, इन्टर और थर्ड की विकट अगाध भीड़। दूर, दक्षिण के देशो को बहती जीवन-सरिता। ताड़ के पेड़, नीला समुद्र, बालू के पर्वत, आकाश चूमने वाले शिला-मन्दिर! रात के दो बजे पेशावर और बम्बई की गाडियाँ पजाबी, काबुली और मारवाड़ी सूदखोरो से ठसाठस भरी आती। फिर सुवह ही मद्रास से दिल्ली जाती एक्सप्रेस, और सुवह के आकाश में शुक्र तारा। वह उठकर बैठ जाती। तार के खम्भो पर बैठा उल्लू वोलता, या पास ही खेतो मे से स्यार, फिर मुर्ग वोलता, और परमात्मा को खोजती हुई मस्जिद की सीढी से अज़ाँ की काँपती, विफल, दर्द-भरी पुकार उठती।

दिन में यह दृश्य वदल जाता। बीहड़ में निरतर सड़ंन उठती थी—मरे पशु-पक्षियो से और मनुष्य की नित्य कर्म-प्रेरणा से। खाद का इतना प्रवन्ध होते हुए भी घास यहाँ मुश्किल से ही उगती थी। वरसात मे गढ़े लबालब भर जाते और यहाँ तैरने वालो का जमघठ-सा लग जाता, किंतु कुछ ही दिन मे पानी से भी सड़न की बदबू उठने लगती। दो एक गधे, टट्टू और पौहे वहा चरते दीख जाते थे। स्टेशन के पास मोटी तोदवाले सेठ कपड़ा और मिठाई का व्यवसाय करते। और सड़क पर सुराही फैलाये आगरे की प्रसिद्ध सुराहियो की बिक्री भी दो-एक फटे-हाल लोग करते।

घास छीलते-छीलते उसका हाथ अनायास ही रुक गया। किस युग की वात उठी थी उसके मन मे? वह किशोर अवस्था मे थी। उल्लास लिये यहा आई थी। इन दूकानो के सुन्दर वस्त्र देख उसका

जी ललच उठता था। लाल लहँगे और डोरिये की ओढ़नी। मिठाई देख उसके मुँह में पानी भर आता, पर वह आँख चुरा लेती। गाँव के हरे-पीले लहलहाते खेतो की भी उसे याद आती। किन्तु यह विशाल नगर, यहाँ की भीड़, यहाँ की दूकानें—सब सुन्दर थे। वह अपने पुरुष के पास प्रसन्न थी। वह सुन्दर सुगठित जवान। अनेक दिन, महीनें, वर्ष मस्ती मे निकल गये। रात को झोपड़ी के बाहर दो-एक लोग इकट्ठे हो जाते और ढोलक खड़क उठती और उसका पति सन्नाटे को तोड़ अलाप छेडता :

'उठै मोरे हियरा में हूक !'

अचानक विजली के समान उस पर आफत गिरी। उस दिन शहर मे दगा हो रहा था। वह भीड़ मे फँस गया और पुलिस की गोली लगी और उसका शरीर खून से लथपथ......

वह दिन स्वप्न हुए। अब वह जवानी मे ही अधेड़, किसी प्रकार जीवन के दिन काट रही थी। उसकी आँख से एक आँसू टपक कर मुँह तक बह आया था। चौंक कर उसने हाथ उठा कर मुँह पोछा।

फिर उसका हाथ मशीन की तरह चलने लगा।

(९)

तोता का ताल

आलमगंज से जो रास्ता चक्कर खाता हुआ सिकन्दरे की ओर चला गया है, उसके एक किनारे तोता का प्रसिद्ध ताल है। इस ताल की भी एक अजब जीवन कहानी है।

इस ताल के एक ओर मुसलमानो का और दूसरी ओर ईसाइयों का कब्रिस्तान है। कुछ दूर उत्तर को चल कर जेल और फाँसी-घर है। रात को यहाँ भयकर सन्नाटा छा जाता है और तार के खम्भों पर बैठ उल्लू हँसता है। कोई इक्का-दुक्का राहगीर स्वर ऊँचा कर बोलता

अथवा गाता निकलता है। कभी-कभी कोई इक्का खड़-खड़ करता यहाँ की नीरवता भगकर निकल जाता है। पागल-घर की रोशनी दूर मे दीखती है और पृथ्वी के हृदय को कँपाती रेलगाड़ी निकलती है।

ताल की जीवन-कथा मुगलों के युग से तो चल ही रही है। कौन जाने इसने अशोक और विक्रम का युग भी देखा हो!

हर वरसात को ताल वर्षा के पानी से लबालव भर जाता है और आस-पास के पेड़ उसमे तने तक डूव जाते है और बत्तखे प्रसन्न होकर यहाँ तैरती है। शाम को जब पतझड़ के दिनो मे सूखे कंकाल-से पेड़ो के पीछे तपे ताँवे-सा लाल सूर्य्य अस्त होता है और काले कुरूप गिद्ध पेडो की नगी डालों पर कापालिक की मुद्रा मे वैंठे रहते है, तो यहाँ का दृश्य श्मशान-सा वीभत्स हो जाता है। फिर चिड़ियों की तुमुल ध्वनि मे सूर्य क्षितिज से नीचे गिर अन्धकार के गढे मे लोप हो जाता है और अनायास ही यहाँ निस्तब्धता छा जाती है।

रात को तारो के अलस आलोक मे अथवा चाँदनी के मदिर विलास मे ताल की कुरूपता ढकी रहती है और स्वप्न-लोक की परियाँ मानो यहां पल-भर को विहार कर जाती है। किसी बड़े गभीर बरसाती नद-सा प्रसार पाकर ताल के वक्ष पर तारो से भरे आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है और चलते-फिरते राही यह रूप देख हठात् ही यहाँ रुक जाते हैं।

एक वार जेल से, दूसरी बार पागल-घर से, तीसरी बार पुलिस की चौकी से, फिर न जाने कहाँ-कहाँ से रात के सन्नाटे को तोड घण्टे वजते है और इस प्रकार रात कट जाती है। इस प्रकार ही इस ताल की अनेक रातें कटी है। कितनी अभी और वाकी है! रात के प्रहरी कुत्तों की कर्कश वाणी सुनते-सुनते वे भी कट जायँगी।

दिन होता है। ताँवे के तपे थाल-सा वह सूर्य अन्धकार के गर्त्त से निकलता है। दूर-दूर तक पेड़-पक्षी, खेत-घर, वन-मार्ग उसकी

आभा मे रँग जाते है और फिर रास्ता पथिकों से भर जाता है। पास ही वसे मेहतरो के घरो मे चुहल शुरू होती है और उनकी बतख और मुर्गियाँ जग के व्यापार को सगर्व-संतुष्ट दृष्टि से देखती है।

दिन भर ताल के इर्द-गिर्द गाय-भैंस वैठती हैं। ढेर के ढेर आदमी मस्त अपनी धुन मे वेसुरे राग अलापते निकलते है। तरकारी के ठेले, फेरीवाले, इक्के तागो का ताता लगा रहता है। गर्मी मे किसी विराट-रूप कुम्भकार की भट्ठी से निकले लू के झोके संसार को झुलसते चले जाते है और सर्दी मे ठण्ढी हवा के छुरी-से थपेडे। क्रमशः दुपहरी उसके ऊपर से ढल जाती है।

यही रेत का समुद्र, जिसे सडक कहा जाता है, एक जमाने में राजपथ था। आलमगीर की वस्ती से यह सिकन्दरे को जाता था। अँग्रेजो के जमाने मे भी, जव आगरा उत्तर-पश्चिम प्रदेश की राजधानी था, 'जयपुर हाउस' से यह सड़क 'सिविल कोर्टस' को गई थी। अनेक शाही ठाट-वाट इस धूल-धूसरित पथ ने देखे हैं!

अव भी इसकी अपनी ही शान है। हफ्ते मे दो बार यहाँ वाजार लगता है और वरसात मे बड़ा मेला । भीड़ की वाढ़ यहाँ उमड़ पड़ती है। पीपनी, गुव्वारे, खिलौनो की भरमार रहती है, रगीन उत्साह उमड़ पड़ता है। मन्दिर मे गीत होते हैं और धर्मशाला का आँगन भीड़ से पट जाता है।

रात होते-होते फिर वही सन्नाटा जिसकी थाह नही। इस ताल का यह जीवन, कभी दिवाली कभी मुहर्रम, टेढ़ा-मेढ़ा—कभी मद, कभी तीव्र गति से वहता जाता है। तटस्थ, दूर से उसने जगत के अनेक परिवर्त्तन देखे है। मेले की भीड़ के समान वे नज्जारे उसकी आँखों के सामने निकल जाते है । मन्दिर के शख-घड़ियाल; मस्जिद की अजाँ, गिरजे का घण्टा, मनुष्य की ईश्वर को विफल पुकार! आर्य शक्, कुशान्, मगोल, मराठा, फिरंगी जुलूसो का ज्वार-भाटा! और

हाल में इन्किलाब की पुकार जो आस पास की आवाज़ो को बरबस डुबा रही है!

क्या-क्या देख चुका है वह! और क्या-क्या देखेगा अभी! यह अवश्य है कि जीवन की इस सरिता की गति रुकती नही, और अपनी अजब रफ्तार से वह किसी लक्ष्य की ओर चली ही जा रही है!

(१०)

मिट्टी के पुतले

उनका जन्म अभागे देश के मध्य वर्ग में हुआ है। वे निरन्तर कल्पना के जग मे सपने देखा करते है। उनकी अभिलाषाएँ उच्च वर्गों की ओर उन्हे ठेलती है और जीवन का कठोर सत्य नीचे की ओर। इस प्रकार ढुल-मुल उनके जीवन का रथ खडखड़ करता लुढकता चला जाता है।

मैं उन्हे अकसर सड़क पर जाते देखता हूँ। बाहरी टीमटाम करके वे अपने अन्तर का दैन्य छिपाना चाहते हैं। वे विलास और वैभव के मतवाले मानो निरन्तर सोने की मछली के समान कॉच के 'केस' मे रहते है! वे त्रिशकु अधर मे लटके न देवो के स्वर्ग मे पहुँच पाते है और न पृथ्वी पर ही उनके पाँव पड़ते है! उनकी सजधज उनके अन्तर का खोखलापन नही छिपा सकती।

निरन्तर धन का मद उनके सिर पर सवार है। धन के बदले वे अपनी आत्मा तक बेच चुके है। किन्तु हाथ उनके कुछ भी नही लगता! दोनों ससार उनके बिगड चुके है! 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम'!

सडक पर जाते वे दूसरे पुरुषो की 'कार', स्त्रिया, और उनके कपड़े तक घूरते चलते हैं। वे अपनी परछाईं की ही प्रशसा मन-मन करते चलते हैं। जीवन ही उनके लिए नाट्य बन गया है।

किन्तु मृगतृष्णा के समान दूर से ही उन्हे स्वर्ण के यह चित्र दीखते

हैं। उनका जीवन मरुभूमि के समान बालू से पटा पड़ा है, जहां उनकी तृषा बुझाने को पानी का नाम-निशान नही।

वे कविता पढ कर भावोन्मेष मे झूमने लगते हैं। गीत और वाद्य की ध्वनि उनके अन्तर को हिला देती है किन्तु लोलुप नेत्रों से दूर ही रह कर वे इस सुन्दर जग को देख रहे हैं।

अब क्रान्ति के भूकम्प ने उनके खँडहर को हिला दिया है, किन्तु फिर भी उन गिरती दीवारो का मोह उन्हे वदी वनाए हुए है। किस आशा और प्रतीक्षा से उनके वदी प्राण उस खँडहर मे अटके हैं?

(११)

लाला जी

हमारे मकान के ठीक सामने लाला जी की दूकान थी। दिन में तड़के सुवह से आधी रात तक वह—वीच मे कुछ ही देर के लिए बन्द होकर —खुली रहती थी। मुहल्ले भर के वुड्ढे वातून और राहगीर वहाँ देर-देर तक आकर वैठते थे। लाला जी की दूकान मानो भानमती का पिटारा थी। पान, चीनी, तेल, आटा, नमक, वरफ, आलू, कोयला, सिग्रेट, जो कुछ भी माँग होती, इस रहस्यमय पिटारे में से पूरी हो जाती।

लाला जी सवसे मैत्री रख कर काम करते थे। राह चलने वालो को जोर से राम-राम कहते। किसी से वच्चो का हाल पूछते। इन्जिनियर साहव के होनहार वालको से देर तक चुहल भी करते। आसपास के दो-एक वडे घर के नौकरो से आपकी विशेष घनिष्टता थी। जव उनका घर मे पता न लगता, तो वे लाला जी की दूकान पर वैठे वीड़ी पीते मिलते। लाला जी की दूकान एक वड़ी साम्यवादी सस्था थी। जव पिछले दगे मे चौराहे पर एक पुलिसमैन रक्खा गया था, उसकी वैठक भी यही रहती थी!

लाला जी गोरे-चिट्टे खूबसूरत से आदमी थे, किन्तु आपकी खूबसूरती पक मे छिपे कमल के समान थी। महीने मे किसी एक इतवार को नाई आप के दूकान के पत्थर पर बैठ कर आपके सिर पर उस्तरा चलाता था, और तब आपकी चाँद झकाझक चमक उठती थी। कहीं आते-जाते समय आप एक सस्ती-सी काली टोपी पहनते थे, जो पिछले आठ-नौ वर्षों से तो बदली न गई थी।

सुबह तडके ही आकर लाला जी अपनी दूकान खोलते। आसपास के लोगों से राम-राम जी की झड़ी लग जाती। फिर आप खर-खर कर एक छोटी सी झाडू से अपनी दूकान झाड डालते। फिर एक छोटी सी अँगीठी पर हलुआ बनाना आरम्भ करते। मक्खियो के साथ-साथ छोटे-छोटे लड़कों की भीड़ आपकी दूकान पर लग जाती।

गर्मियों मे आप दूकान के सामने एक टाट डाल कर धूल, धूप और लू से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करते। किन्तु किसी विराट रूप भट्ठी से निकले वे लू के गरम झोके दूकान मे घुस कर मानो लाला जी की देह को भून डालते। फिर भी किसी भूले पथारोही की आशा मे नेत्र लगाए लाला जी आसन से न डिगते। जाडे मे धूप की मद-स्मित हँसी से लाला जी अपनी देह सेंकने का विफल प्रयास करते।

किस आशा और मनोरथ से लाला जी यह विकट तपस्या कर रहे थे? और क्यो अभी तक देवताओ का आसन इस कठिन तप से नही डिगा?

कुछ दिन के लिए एक दूसरे लाला जी ने भी यहाँ अड्डा जमाया था। अनेक नए प्रलोभन आपकी दूकान से मिले—भुनी मूँगफली, काबुली चने और गुड़, चूरन चटनी। छोटे बच्चो के मन डिग भी गए, किन्तु जीत हमारे लाला जी की ही रही! इतनी बडी साख आपकी मुहल्ले वालो मे थी।

अब आपके एक बाजू मे एक साइकिल मरम्मत करने वाले की दूकान है जहाँ रास्ता चलते लोग 'पंकचर' ठीक कराते है; और दूसरी

ओर एक टाल है जहाँ से निरन्तर गाली-गलौज और लड़ाई-झगड़े की कर्कश ध्वनि उठती रहती है। किन्तु लाला जी निश्चिंत हैं। अब उनकी नींद मे व्याघात पहुँचाने वाला कोई प्रतिद्वद्वी आसपास भी नही फटकटा।

लाला जी बूढ़े होने लगे हैं। अनेक सफेद बाल आपकी मूछो में झलक आए है। फिर भी कठिन श्रम से सधी आपकी देह अब भी ताड़-सी सीधी है। दिन भर आप दूकान के भीतर-बाहर दौड़ते है। हफ्ते मे एक बार पास के बाज़ार से कुछ सामान अपनी पीठ पर लाद कर ही ले आते है। महीने मे एक बार बड़े बाज़ार जाते है और इक्के पर वापस लौटते हैं, तब वह अनेक छोटे-मोटे बोरी-बोरे सँभाल-सँभाल कर इक्के से उतारते है।

लाला जी के कोई लड़का नही है। एक लड़की दूकान मे उनकी सहायता करती थी। क्रमश. उसका रूप दूज के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा और उस छोटी सी दूकान मे जैसे समाए न समाता हो। फिर वह नवयौवना ससुराल चली गई और लाला जी की दूकान पर भयंकर सन्नाटा सा छा गया।

अब दशरथ के समान अधेड़पन मे पदार्पण कर लाला जी अपना परलोक बनाने की चिन्ता मे है, किन्तु उनकी गद्दी का कोई उत्तराधिकारी नही।

बड़े यत्न से वह अपनी इस धरोहर को सहेज-सहेज कर रखते हैं दिन भर वह इस थाती की देख-रेख में लीन शरीर तपाते हैं, रात को इसी की चिन्ता उन्हे खाए डालती है। जल्दी-जल्दी उलटा-सीधा खाना खाकर वे दूकान को भागते है। किन्तु इस तप का अन्त कहाँ है, क्या है?

एक दिन आश्चर्य-चकित हमने देखा कि लाला जी के सिर से वह चिरपरिचित काली टोपी गायब है, और उसका स्थान खद्दर की गांधी टोपी ने ले लिया है। इस टोपी ने लाला जी का रग विचित्र रूप

के चमका दिया था। उनकी हँसी मुँह से बाहर निकली पड़ रही थी। इस परिवर्त्तन के अनेक कारण सोचे गए। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। एक बिगड़े-दिल सज्जन बोले, 'कांग्रेसी सरकार का राज है न!'

किन्तु अब प्रलयकर हुकार करती 'ग्रैन्ड ट्रन्क एक्सप्रेस' की ध्वनि अथवा रात के ठीक 'नौ' बजे मार्च करने वाले खाकसार दल की आवाज़ से लाला जी का हृदय कांप नही उठता! क्या सचमुच ही लाला जी ने अपने विफल जीवन का रहस्य इस अस्तप्राय आयु मे आकर ढूंढ लिया है?

(१२)

कलाकार

मसूरी के एक गदे से भाग मे जहाँ पहाड़ी कुली और गरीबो की ही बस्ती है, उस नवयुवक कलाकार की छोटी सी दूकान थी। ऊपर के खड मे वह अकेला रहता था और रात को उसकी खिड़की के फूटे कांच से हवा सर-सर निकल कर उसे कँपा देती थी। दूकान मे दिन को बैठा-बैठा एकाकी वह अपने चित्र बनाया करता था, और कभी-कभी नाक पर नीचे खिसक आए चश्मे के ऊपर से आँख उठा कर सड़क की ओर देख लेता था।

इस तग गली मे बरसात के बाद कीचड-ही-कीचड़ हो जाती थी और सड़क के गड्ढो मे पानी भर जाता था। तब कोई भूले भटके सफेदपोश नाक-भौं सिकोड़ते कपड़े ऊँचे करके मन-ही-मन मसूरी की म्यूनिसिपैलिटी को कोसते हुए निकलते। यहा दो-एक आटे-दाल और घी की दूकानें भी थी। न जाने क्यो आयु से पूर्व ही बुड्ढे उस युवक मुस्लिम कलाकार ने अपनी छोटी सी प्रदर्शिनी यहां जमाई थी! उसका

रंग गोरा था और मूँछें हल्की और भूरी थी; उसके चश्मे के पीछे झांकते हुए नेत्रो मे दूर कुछ खोजते हुए का सा भाव था। फिर भी उसके माथे और मुँह पर झुर्रियां पड रही थी और उसके भाव मे एक अकथनीय अवसाद, थकन और पराजय थी।

जव रात को असख्य दीपराशि से मसूरी जगमग कर उठती, तव उस दूकान का टिमटिमाता दस मोमबत्ती की शक्ति का 'वल्व' वहाँ के अधकार को मानो और भी प्रगाढ कर देता।

वह कलाकार 'सिलहुट' का विशेपज्ञ था। वह काले कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर उनको सफेद 'ग्राउन्ड' पर चिपका कर अपने चित्र वनाता था, कभी कभी काले 'ग्राउन्ड' पर सफेद टुकड़े चिपका कर। उसके चित्र अधिकतर जंगल के दृश्य थे। एक चित्र विशेष भावमय ग्राम-दृश्य था। हुक्का पीता ग्रामीण, कुएँ से जल भर कर लौटती हुई ग्राम-वधू, खेलते हुए बालक, एक ओर एक आवारा कुत्ता, पीछे कुछ ताड़ और केले के पेड़—ग्राम्य-जीवन का पूरा-पूरा नक्शा छोटे से कागज़ पर खिच आया था।

हमने पूछा : "क्या तुम इन तसवीरो को कही से नकल करते हो ?"

वह : "यह हुज़ूर दिमाग से निकली हैं। इनके लिए वक़्त और मौका देखना पड़ता है।"

कीमत एक रुपया थी। हमने सोचा, शायद साप्ताहिक 'टाइम्स आफ इडिया' से यह चित्र काट लिए हों! शायद कीमत कुछ और कम हो सके। चार आना तो फ्रेम और कॉच की ही कीमत होगी, परिश्रम अलग। कुछ कहने का साहस न हुआ।

वह वोला : "पिछले वर्प पडित जवाहरलाल नेहरू २५) की तसवीर ले गए थे। वड़े-वडे राजे-महाराजे इन तसवीरों को ले जाते है। मसूरी की यह नायाव चीज़ है।"

हम आश्चर्य से उसे देखने लगे। उसके फटे से कपड़े, परिश्रम से ध्यस्त मुख, उसके भावो की दीनता। केवल उसकी आँखे, जिनके चारों

ओर गढे पड़ गए थे, मानो किसी अलक्ष्य जगत मे कोई अनहोना सौदर्य खोज रही थीं। यदि यह चित्र सचमुच ही उसकी कल्पना की उपज हैं, तो उनका मूल्य आकना भी कठिन है। कनु देसाई के निकट ही उसका आसन होना चाहिए।

हमने कहा—"फिर आवेगे।" हम सोच रहे थे, चित्र मौलिक है या नही। रुपया खर्च करे या न करे।

मसूरी मे शाम को लाइब्रेरी रोड पर बड़ी भीड़-भाड रहती है। सब भूले-भटको का वहा मिलन हो जाता है। वर्षा के बिछुडे मित्र मिल जाते है। यही शाम का मेला मसूरी के अकर्मण्य जीवन मे जागृति का काल है। धीरे-धीरे असख्य दीपराशि जगमग कर उठती है और एक असीम, अनिर्वचनीय स्फूर्ति यहा के जीवन मे आ जाती है। पहाड़ के नीचे दूर देहरादून की बत्तिया साफ दीखती है और बीच मे वह परेड की खुली सी जगह, जहाँ मध्य वर्ग के हवाखोरो का जमघट लगता है। 'हैकमैन' के यहाँ चाय और नाच के शौकीनो का ताता बँधा था। लिपस्टिक आदि की भरमार थी, मानो प्रवास से दुखी मनुष्य के हृदय ने एक छोटे से विलायत की सृष्टि की हो।

फैशन के इस ज्वार-भाटे मे बहते हम आक्सफर्ड बुक डिपो आ पहुँचे। यहाँ भीड की एक पतली, बारीक सी धार फूट कर आ गई थी। सोचा, दो-एक नई किताबो के नाम ही याद कर लें।।

अन्दर कोई आधे दर्जन का गुट कुछ चित्रो के सामने डटा था। वही मसूरी के 'स्लम्स' मे बने छाया चित्र थे। उनका मूल्य यहा ५) था। सबसे अधिक तारीफ उस ग्रामीण जीवन के चित्र की हो रही थी! हेमारे देखते-देखते ही एक अँग्रेज पादरी उसे खरीद कर बगल मे दबा चलते बने। कुछ लोग बात करने मे लगे थे।

"किस कारीगर का यह काम है?"

"कौन जाने! इस देश के कारीगर अपना नाम बढाना जानते ही नही।"

"अजता के भिक्षु कलाकारो को ही कौन जानता है!"

"पाच रुपए मे तसवीर रही सस्ती।"

"इसमे क्या शक है! आगे चल कर न जाने इसकी कीमत कितनी बढ़ जावे!"

"कोई बड़ा प्रगतिशील कलाकार है। गॉव के जीवन का यहाँ कितना दुख-दर्द भरा पड़ा है!"

क्षण भर के लिए उस कलाकार का उदासीन, अवसाद-भरा-श्रम-व्यस्त मुख हमारी कल्पना मे घूम गया।

(१३)

जागते रहो!

जाडे की अँधेरी रात मे सन्नाटे को चीरता हुआ प्रहरी का स्वर वायु मे चक्कर काटता रहा, 'जागते रहो!'

जब उसके स्वर की लहर वायु मे फैल कर कुछ हल्की पड गई, पल भर रुक कर फर उसने अपनी चेतावनी को दुहराया—जागते रहो!

वह अमावस्या की रात थी। सर्दी बढ गई थी। कम्बल ओढने की जरूरत पडने लगी थी। अधिक रात हो गई थी, तभी सन्नाटे के उस प्रशान्त गहरे विस्तार में पत्थर के टुकडे की तरह गिर कर उस पुकार ने खलबली मचा दी।

बाहर रात मे ठिठुरन आ गई थी। सड़क पर निस्तब्धता का

साम्राज्य था। आकाश मे सप्तर्षि तारे ऊँचे पहुँच चुके थे। कभी कोई देर का पथिक जोर जोर से गाता या इक्का खडखडाता निकलता और कुत्ते भूँकते। फिर वही शान्ति का साम्राज्य।

इतने ही मे सम्पत्ति के रक्षक उस पहरुए की आवाज हवा को कँपाती हुई उठी और विफल शून्य मे चक्कर काट कर विलीन हो गई। वह मध्य वर्ग की सस्कृति का रखवाला किसी बडे स्वामिभक्त कुत्ते की तरह वार-वार भूँक कर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा था!

उसने वदन पर फटा कम्वल लपेट रखा था। चौराहे पर उसने कुछ कूडा वटोर कर आग जला रखी थी क्योंकि कम्बल हवा के तेज छुरी-से झोको से उसका वचाव न कर सकता था। आग से सट कर वह अपने शरीर को वीच-बीच मे सेक लेता था।

उसे खयाल आया—घर पर वीवी-बच्चे एक ही खाट पर पडे सोते होंगे। शरीर गरम रखने के लिए। यदि उसी के घर चोर आ जाय! किन्तु ले भी क्या जायगा? दो-चार टूटे-फूटे बर्तन-भाँड़े! वे तो अपाहिज हो जायँगे इतने मे ही!

आग के लाल प्रकाश ने पल-भर उसके व्यथित, रेखाकित मुख पर एक लौ डाली, जो फिर धीमी पड गई। पल-भर के लिए उसके मुख पर किसी कुशल चित्रकार की तूलिका ने जैसे अनहोना रूप बिखरा दिया।

हवा का फिर एक प्रबल तीखा झोका आया और उसकी हड्डियो तक को काटता हुआ उसे कँपा गया। उसने कम्वल को और भी कस कर लपेट लिया।

वची आग से उसने चिलम भरते हुए अपनी आवाज़ उठाई और सन्नाटे के उस गम्भीर विस्तार मे पत्थर के टुकडे की तरह गिर कर खलवली मचाते स्वर मे कहा—

"जागते रहो!"

(१४)

मसूरी

मैं रोज पहाड़ पर रूपे उन छोटे-छोटे गुड़ियों के-से घरो को देखता हूँ। रात मे उस नगर की वत्तियाँ जगमग-जगमग कर उठती है, जैसे पहाड दिवाली मना रहा हो। वीच-वीच मे हरी वत्तियाँ उस नगर की मुख्य सड़क का आकाश-पट पर नक़्शा सा खीच देती है। इस दूरी से वह सड़क तीर की तरह सीधी मालूम होती है, किन्तु मै जानता हूं वह टेढी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, वल खाती हुई साँप की तरह पहाड़ की छाती पर लेटी है।

मैं उस नगर के जीवन की कल्पना करता हूँ। वहाँ के विलास और वैभव, धन और मद की। मेरी कल्पना के चित्र सजग हो उठते है, उस सर्प-सी चक्कर खाती सडक पर हवाखोरो का जमघट—सुवह और शाम; उनके कपड़ो की तडक-भडक; उनकी ऐंठ और शेखी। दूसरे चित्र भी कल्पना के पट पर खिंचते है · वहाँ की रिक्शा जिनको मनुष्य-रूपी वाहन खीचते है. पहाड़ी मज़दूर जो धूल, पसीने और मैल से लथपथ सड़क कूटते है, अथवा वोझा ढोते है, कुली वाज़ार की कीचड़ और गन्दगी।

उस नगर से दूर आकाश मे हिम-मडित धवल गिरि शृग दीखते हैं—अथक योग-मुद्रा मे लीन अजर-अमर तपस्वी—पाप, दुःख और दारिद्रय, मनुष्य-जीवन के रग-विरगे धागो से अछूते। सुवह और शाम उन हिम-शृगो को सूर्य की रश्मियाँ सोने मे रँग देती है। दोपहर को वादल की काली चादर मे वे आँख मीच छिप जाते हैं।

युग-युग से निर्मित मानव की सस्कृति। क्या कभी वह उनकी ममता करने वाले विशाल, निस्पृह नगरो की सृप्टि करेगी!

वहाँ रिमझिम-रिमझिम वर्पा होती है। कुली भीगते-भीगते रिक्शा खींचते हैं। रिक्शा के अन्दर उस नगर के अतिथि छाता-वरसाती सँभाले

बैठते हैं। मूसलाधार वर्षा होती है। कड़ाके की ठड हो जाती है, जिसमे हम लू के झुलसे मैदानो के नगरो की कल्पना भी नही कर पाते। नगर के मेहमान आग जला कर घरो मे बैठते है या ओवरकोट पहन कर घूमने निकलते है।

इस प्रकार जीवन का चक्र उस सुन्दर जादू के नगर मे घूमा करता है। मै उस रूप-कलश मे छिपे विष की कल्पना कर उद्विग्न हो उठता हूँ।

उस नगर की विजली आकाश-पट पर जगमग-जगमग करती है। क्या उनका रहस्य है? जीवन का कौन व्यापार वहाँ छिपा है? अनेक चित्र मेरी कल्पना मे बनते-बिगड़ते है!

फैशन का मेला, रूपवानो का जमघट, पल भर की दिवाली। धन का मद। विजातीय सस्कृति की दासत्व-भरी नकल। गरीबी, कुरूपता, दैन्य! सब के पीछे प्रकृति की वह मुद्रा जो मनुष्य के इन खेलो को उदासीनतापूर्वक देखती है—एक पट-वस्त्र की भाँति जिस पर मनुष्य अपने चित्र बनाता बिगाडता है।

मैं विफल ही उस रूपवती नगरी का रहस्य समझने का प्रयत्न करता हूँ।

(१५)

अपराजित

उस दिन साँझ को जब अस्त होते सूर्य ने आकाश मे अनेक रग-विरगे चित्र खीच दिए थे और उन सरसो से भरे पीले खेतो में ज्योति की वर्षा हो गई थी, अनायास ही हमने अनेक युद्ध-भूमियो के विजेता और घायल उस बूढे साँड को देखा। उदासीन भाव से उसने एक बार हमारी ओर मुड़ कर देखा, फिर अपने नेत्र मूँद लिए। कितनी व्यथा और पीडा उसकी दृष्टि मे छिपी थी!

वह खेत की पगडडी के बीचोबीच बैठा हुआ था। उसके मुख से झाग गिर रहे थे। उसके सिर का एक सीग आधा टूट गया था, उसकी बॉई ऑख की कोर से रक्त की एक हल्की सी लकीर बह कर नीचे तक आ गई थी। जीवन की किस हल्दीघाटी से परास्त होकर वह वीर यहाँ विश्राम कर रहा था ?

ससार के प्रति उस उपेक्षा-भाव मे क्या-क्या बातें हमने सोच ली। जीवन के सुख-दुःख, राग-विराग और झझट से कितनी उदासीनता !

सध्या के उस सौंदर्य से मन मे हलकी-सी पीडा होती थी। दूर किसी पथिक ने अपना राग छेड़ रक्खा था जिसकी गूँज वायु मे देर तक चक्कर काटती थी। खेतो मे छाया लम्बी होकर फैल रही थी। किन्तु उस बूढे सन्यासी ने जग की इस वैभव-श्री से ऑखे मोड ली थी। अपने ही ध्यान मे लीन वह किसी पीडाहीन जगत की सृष्टि कर रहा था, जहाँ यौवन का अत नही, भोजन के लिए धक्का-मुक्की नही, और क्षत-विक्षत का अपमान नही।

इन खेतो पर शायद कभी उसका एकाधिपत्य था। यौवन के उद्दाम गर्व में चूर उसने अनेक बलिष्ट योद्धाओं का अनादर किया था। दूर-दूर तक उसके बल-वैभव की धाक थी। अनेक बार उसके कण्ठ मे जयमाला पडी थी; किन्तु आज अचानक ही अपनी शक्ति से उन्मत्त उस युवा वीर ने उसके ऊपर आक्रमण किया। वह वार उपेक्षा से झेलते हुए भी उसे आज पहली-बार मालूम हुआ कि उसकी शक्तियाँ ढीली पड गई हैं। आज उसके घुटने काप उठे, बड़ी कठिनता से वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा कर सका था, यद्यपि आज के समर मे उसका सीग स्वाहा हो गया और ऑख फूटते-फूटते बची।

अब वह इस राज्य मे एकक्षत्र होकर न रह सकेगा। यह उसके जीवन का कुरुक्षेत्र हुआ। उपेक्षा से उसकी ओर देखते हुए नए-नए आक्रमणकारी तैमूर उसके खेत से निकल जायँगे।

कौन जाने वह क्या सोच रहा था। इतने मे हमारी मडली के

एक सदस्य ने एक छोटा सा पत्थर उसके ऊपर खींच मारा। एक बार अर्द्धमीलित आँखो से उसने हमारी ओर देखा, फिर आँखे मूंद ली। कुछ सकुचित से होकर हम लोग आगे बढ गए।

मै आज भी सोचता हू, उस बूढे सैनिक की आँखो मे किस वेदना का रहस्य छिपा था।

(१६)

उस पार

बचपन से ही वह बगाल मे रहती थी। यहाँ उसके पिता रेलवे मे कर्मचारी थे। उसके बाग मे आम और लीची के इतने पेड थे कि वह उनकी सघन छाया मे दिन भर बिता देती थी। बाड के उस पार भी दूर तक पेड ही फैले थे। उनके नीचे बसे घर किसी स्वप्न-जगत् के प्रासादो के समान मधुर थे।

सन्ध्या को सूर्य की रक्तिम आभा से जब आकाश रँग जाता और बाग के पेडो पर बैठ कर पक्षी कोलाहल मचा देते, तो वह माँ के पुकारने पर उठ कर धीरे-धीरे अदर चली जाती।

जीवन मे, बाड़ के परे क्या है—वह न जानती थी। उसने अनेक उपन्यास पढे थे। स्वप्न के सुखद पात्रो के समान क्या उसे लेने भी कोई आवेगा ?

धूप मे रेल की पटरी शीशे के समान चमकती थी। शाम को उसके घर को भूडोल की तरह चचल कर बडे भारी हुंकार से गाडी आती, और अनेक यात्री उतर कर चारो ओर फैले जाते।

रात को चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योति मे आम और लीची के पेड भूतों के समान देख पड़ते। वह अपने हृदय से कहती, नदी के पार रात के अचल मे छिपा मेरा प्रियतम है। क्या वह राजकुमार माँ से की गयी प्रतिज्ञा को भूल कर इस वर्जित दिशा मे मुझे खोजने आवेगा ?

किंतु वृक्षो के उस शून्य वन से कभी कोई न आया। केवल पास के

किसी खेत या पोखर से कोई स्यार चीख कर उसकी कल्पना के महल ढहा देता।

एक दिन जब वह अपनी छोटी बहन के साथ गुडिया का स्वयवर रच रही थी, उसे पता चला कि उसका विवाह ठीक हो गया है।

उसने सोचा, सुदूर मरुभूमि का बी० ए० पास एक युवक उसे लेने आ रहा है। एकात मे कापते हुए हृदय से उसका चित्र देखा। जादू के महल के समान देखते-देखते उसकी सब अभिलापाएँ न जाने कहा गायब हो गयी।

यह कैसी विडम्बना है! यह जीवन है या स्वप्न!

बड़ी धूमधाम से व्याह सम्पन्न हुआ। घर के अंधकार मे बैठे-बैठे बाजो की गम्भीर ध्वनि से उसका हृदय कांप उठता।

जब विदा का समय आया और मा उसका सिर गूँथने बैठी, तब उसने शीशफूल उठा कर दूर फेंक दिया—

'क्यो मुझे इस तरह जकड़ती हो?' और, वह फूट-फूट कर रोने लगी।

मा हक्की-बक्की हो उसकी ओर ताकने लगी। ऐसा तो पहले कभी न हुआ था।

—:०:—